समर्पण

सवैया

कोटिन काव्य कवीस्वर हू किय
दीठ दयामयि मातु! तिहारिय।
भूमि-मरुद्भव मूरख मो हिय
काव्य-सुधा वरस्यौ वलिहारिय॥
दीन्ह सुवर्न तुही तिहिँ तें विर-
च्यौं यह सोधि सुधारि निहारिय।
'भारती-भूषन' भेंट करौं करि
भारती! भूषन याहि विहारिय॥

समर्पणकर्ता—
अर्जुनदास केडिया

विषयानुक्रमणिका

विषय • पृष्ठ

भूमिका

अलंकार-शास्त्र

आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व क्षेमेंद्र नाम के उद्भट विद्वान् ने 'कवि-कंठाभरण' नाम का एक ग्रंथ लिखा। इसमें कवित्व-शिक्षा प्राप्त करने के उपाय बताए गए हैं। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा ने हाल ही में 'कवि-रहस्य' नाम की एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में आपने केवल हिंदी जाननेवालों के लिये क्षेमेंद्रजी के विचारों का स्पष्टीकरण कर दिया है। उक्त पुस्तक के पृष्ठ ६० पर झा महोदय लिखते हैं—

"कवि-कंठाभरण के अनुसार शिक्षा की पाँच कक्षाएँ होती हैं-

(१) "अकवे कवित्वाप्ति' कवित्व-शक्ति का यत्किंचित् संपादन।

(२) 'शिक्षाप्राप्त गिर कवे' पद-रचना-शक्ति संपादन करने के बाद उसकी पुष्टि करना।

(३) 'चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ' कविता-चमत्कार।

(४) 'गुणदोषोद्गति' काव्य के गुण-दोष का परिज्ञान।

(५) 'परिचयप्राप्ति' शास्त्रों का परिचय।"

इसके आगे झा महोदय ने कवित्व-शिक्षा की इन पाँचो कक्षाओं का विस्तार-पूर्वक उदाहरण-समेत वर्णन किया है। तीसरी कक्षा अर्थात् 'कविता-चत्मकार' के विषय में आपका कथन है—

"इस तरह जो कवि शिक्षित हो चुका उसके काव्य में चमत्कार या रमणीयता परम आवश्यक है। विना रमणीयता के

अधिक लोक-प्रिय है और मुझे भी अत्यंत उपयुक्त जान पड़ता है। वह लक्षण इस प्रकार है—

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥"

शब्दार्थ के ये शोभातिशायी धर्म—अलंकार—कृत्रिम नहीं हैं। कवि की उक्तियों में इनकी आवृत्ति सहज में ही हो जाया करती है। मामूली बोलचाल में भी अलंकारों का प्रयोग आप से आप होता रहता है। प्राचीन आचार्यों ने इन शोभातिशायी धर्मों का विश्लेषण कर डाला है, फिर उनको शृंखलाबद्ध करके उनका वैज्ञानिक विभाजन संपादित करके प्रत्येक विशेष धर्म का नाम कल्पित कर लिया है। इन नामों के अलग-अलग लक्षण निर्धारित किए गए हैं। इन लक्षणों के बनाने में अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया गया है। लक्षणों के अनुसार उदाहरणों का संकलन किया गया है जिनमें लक्षण-लक्ष्य का सुंदर समन्वय है। अनेक अलंकार स्थूल बुद्धि से देखने पर एक से जान पड़ते हैं; पर जब सूक्ष्म दृष्टि से उनपर विचार किया जाता है तो उनका पार्थक्य स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। आचार्यों ने इन भिन्नता की बारीकियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अलंकार-शास्त्र में इन्हीं सब बातों की चर्चा है। इस शास्त्र के बन जाने के बाद बहुत से नीचे दर्जे के कवियों ने सचमुच अपने काव्यों में ज़बर्दस्ती ला-ला कर अलंकार ठूँसे हैं। ऐसे काव्य कृत्रिम और भद्दे जान पड़ते हैं। पर जिन सत्कवियों ने अलंकारों को अपने काव्य में स्वाभाविक रीति से आने दिया है उनका काव्य उज्वल मणि की तरह जगमगाता है। भारतीय काव्य में अलंकारों का जो प्रमुख स्थान है वह पाश्चात्य काव्य में नहीं है। हमारे यहाँ के सर्व-श्रेष्ठ कवि कालिदास की जब प्रशंसा की जाती है

तब सबसे पहले उनकी उपमालंकार के प्रयोग की सफलता का उल्लेख होता है—उपमा कालिदासस्य—पाश्चात्य समालोचकों को इस प्रकार की प्रशंसा कुछ अखरती है; परंतु अलंकारों की महत्ता मानने को वे विवश हैं। देखिए ऐसे प्रसंग के संबंध में प्रसिद्ध अँगरेज समालोचक 'कीथ' क्या कहता है—

"Kalidasa's forte is declared to lie in similes and the praise is well deserved True, the world of India is a different one from the west, the divine mythology and the belief of every day life are far other, but even so the beauty and force of the similes and metaphors must be recognised by any one who appreciates poetry."

हिंदी में आजकल जो दल अलंकारों का विरोधी है वह भी यदि देखेगा तो उसे ज्ञान पड़ेगा कि आधुनिक रहस्यवादी अथवा छायावादी कवियों की रचनाओं में भी आप से आप अलंकारों की छाप बैठती रहती है। सर्वथा अलंकार हीन कविता बना सकना कठिन काम है। कविवर केशवदास ने 'कविप्रिया' में एक छंद दिया है जिसकी बाबत उनका कथन है कि इसमें अलंकार नहीं है, परंतु ध्यान से देखने पर उसमें कई अलंकार साफ दिखलाई पड़ते हैं। केशवदासजी ने अलंकार न लाने का उद्योग किया; पर सफल न हो सके। प्राचीन आचार्यों ने अलंकार-शास्त्र की रचना करने में बड़ा परिश्रम किया है। इस परिश्रम का अनुभव वही लोग कर सकते हैं जो अध्यवसाय के साथ इस शास्त्र का अध्ययन करेंगे। जो लोग पहले से ही इसकी अनुपयोगिता मानकर इसकी ओर निगाह भी उठाना नहीं चाहते, मुझे खेद है कि वे इस शास्त्र की व्यापकता और महत्ता का अनुमान नहीं कर सकते हैं। प्राचीन आचार्यों ने जिन अलंकारों के नाम कल्पित किए हैं उनके अतिरिक्त भी नये अलंकारों की सृष्टि की जा सकती है। समय-समय पर होनेवाले परवर्ती

आचार्यों ने ऐसा किया भी है। उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों के माने अलंकार-भेदों और उनके लक्षणों का खंडन ही नहीं किया है, वरन् कभी-कभी नये अलंकारों की कल्पना भी की है। आज भी यदि कोई सूक्ष्मदर्शी विद्वान् ऐसा करे तो उसका यह प्रयत्न उपहास्य नहीं माना जा सकता है। यद्यपि ऐसा करने के लिये अत्यंत गंभीर अध्ययन और व्यापक विद्वत्ता की आवश्यकता है। निदान कवित्व-शिक्षा के लिये अलंकार-रमणीयता का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों के अध्ययन से भली भाँति समझ में आता है। इसलिये अलंकार-शास्त्र कवि के लिये उपयोगी विद्या है। 'कवि-रहस्य' में झा महोदय ने पृष्ठ ५२ पर शायद 'काव्य-मीमांसा' के आधार पर लिखा है—

"काव्य करने के पहले कवि का कर्त्तव्य है, उपयोगी विद्या तथा उपविद्याओं का पढ़ना और अनुशीलन करना। नाम-पारायण, धातु-पारायण, कोश, छंदः शास्त्र, अलंकार-शास्त्र—ये काव्य की उपयोगी विद्याएँ हैं। गीत-वाद्य इत्यादि ६४ कलाएँ 'उपविद्या' हैं। इसके अतिरिक्त सुजनों से सत्कृत कवि की सन्निधि (पास बैठना) देशवार्ता का ज्ञान, विदग्धवाद (चतुर लोगों के साथ बातचीत), लोक-व्यवहार का ज्ञान, विद्वानों की गोष्ठी और प्राचीन काव्य-निबंध—ये काव्य की 'माताएँ' हैं।"

मेरी तुच्छ सम्मति में केवल कवि के ही लिये नहीं; वरन् जो कोई भी काव्य का मर्म समझना चाहता हो उसके लिये भी अलंकार-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है।

संस्कृत में अलंकार-शास्त्र का विशद विवेचन देखकर देशी भाषाओं में भी इस शास्त्र की चर्चा फैली और समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में अलंकार-शास्त्र समझानेवाले ग्रंथ लिखे गए। इनके मूलाधार प्राय संस्कृत-ग्रंथ ही रहे और इनके द्वारा

तब सबसे पहले उनकी उपमालंकार के प्रयोग की सफलता का उल्लेख होता है–उपमा कालिदासस्य–पाश्चात्य समालोचकों को इस प्रकार की प्रशंसा कुछ अखरती है; परंतु अलंकारों की महत्ता मानने को वे विवश हैं। देखिए ऐसे प्रसंग के संबंध में प्रसिद्ध अँगरेज़ समालोचक 'कीथ' क्या कहता है—

"Kalidas's forte is declared to lie in similes and the praise is well deserved True, the world of India is a different one from the west, the divine mythology and the belief of every day life are far other, but even so the beauty and force of the similes and metaphors must be recognised by any one who appreciates poetry."

हिंदी में आजकल जो दल अलंकारों का विरोधी है वह भी यदि देखेगा तो उसे जान पड़ेगा कि आधुनिक रहस्यवादी अथवा छायावादी कवियों की रचनाओं में भी आप से आप अलंकारो की छाप बैठती रहती है। सर्वथा अलकार-हीन कविता बना सकना कठिन काम है। कविवर केशवदास ने 'कविप्रिया' में एक छंद दिया है जिसकी बाबत उनका कथन है कि इसमें अलंकार नहीं है; परंतु ध्यान से देखने पर उसमें कई अलंकार साफ़ दिखलाई पड़ते हैं। केशवदासजी ने अलंकार न लाने का उद्योग किया; पर सफल न हो सके। प्राचीन आचार्यों ने अलंकार-शास्त्र की रचना करने में बड़ा परिश्रम किया है। इस परिश्रम का अनुभव वही लोग कर सकते हैं जो अध्यवसाय के साथ इस शास्त्र का अध्ययन करेंगे। जो लोग पहले से ही इसकी अनुपयोगिता मानकर इसकी ओर निगाह भी उठाना नहीं चाहते, मुझे खेद है कि वे इस शास्त्र की व्यापकता और महत्ता का अनुमान नहीं कर सकते हैं। प्राचीन आचार्यों ने जिन अलंकारों के नाम कल्पित किए हैं उनके अतिरिक्त भी नये अलंकारों की सृष्टि की जा सकती है। समय-समय पर होनेवाले परवर्ती

आचार्यों ने ऐसा किया भी है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के माने अलंकार-भेदों और उनके लक्षणों का खंडन ही नहीं किया है; वरन् कभी-कभी नये अलंकारों की कल्पना भी की है। आज भी यदि कोई सूक्ष्मदर्शी विद्वान् ऐसा करे तो उसका यह प्रयत्न उपहास्य नहीं माना जा सकता है। यद्यपि ऐसा करने के लिये अत्यंत गंभीर अध्ययन और व्यापक विद्वत्ता की आवश्यकता है। निदान कवित्व-शिक्षा के लिये अलंकार-स्वरूपता का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों के अध्ययन से भली भाँति समझ में आता है। इसलिये अलंकार-शास्त्र कवि के लिये उपयोगी विद्या है। 'कवि-रहस्य' में झा महोदय ने पृष्ठ ५२ पर शायद 'काव्य-मीमांसा' के आधार पर लिखा है—

"काव्य करने के पहले कवि का कर्तव्य है, उपयोगी विद्या तथा उपविद्याओं का पढ़ना और अनुशीलन करना। नाम-पारायण, धातु-पारायण, कोश, छंद, शास्त्र, अलंकार-शास्त्र—ये काव्य की उपयोगी विद्याएँ हैं। गीत-वाद्य इत्यादि ६४ कलाएँ 'उपविद्या' हैं। इसके अतिरिक्त सुजनों से सत्कृत कवि की सन्निधि (पास बैठना) देशवार्ता का ज्ञान, विदग्धवाद (चतुर लोगों के साथ बातचीत), लोक-व्यवहार का ज्ञान, विद्वानों की गोष्ठी और प्राचीन काव्य-निबंध—ये काव्य की 'माताएँ' हैं।"

मेरी तुच्छ सम्मति में केवल कवि के ही लिये नहीं, वरन् जो कोई भी काव्य का मर्म समझना चाहता हो उसके लिये भी अलंकार-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है।

संस्कृत में अलंकार-शास्त्र का विशद विवेचन देखकर देशी भाषाओं में भी इस शास्त्र की चर्चा फैली और समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में अलंकार-शास्त्र समझानेवाले ग्रंथ लिखे गए। इनके मूलाधार प्राय संस्कृत-ग्रंथ ही रहे और इनके द्वारा

अलंकार-शास्त्र के ज्ञान की वृद्धि यद्यपि संस्कृत न जाननेवाली जनता में हुई फिर भी देशी भाषाओं में इस शास्त्र के लिखने-वालों में कोई ऐसा विद्वान् नहीं हुआ जो संस्कृत के अलंकार-शास्त्रज्ञों की विवेचना की अपेक्षा कोई विशेष बात लिख सके, इसलिये अलंकार-शास्त्र का गंभीर अध्ययन संस्कृत के पंडितों के ही आधिपत्य में रहा। 'रस-गंगाधर' के रचयिता पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य-शास्त्र की जैसी गहन विवेचना की वैसी उनके बाद संस्कृत के अन्य किसी पंडित से भी नहीं बन पड़ी। कहते हैं हिंदी कविता के प्रसिद्ध आचार्य और 'रस-रहस्य' ग्रंथ के रचयिता कविवर कुलपति मिश्रजी पंडितराज जगन्नाथ के शिष्य थे। ऐसे उद्भट विद्वान के शिष्य होकर भी कुलपतिजी ने हिंदी में अलंकार-शास्त्र पर कोई परम गंभीर विवेचनापूर्ण ग्रंथ नहीं लिखा। यह हिंदी-साहित्य का दुर्भाग्य ही था। फिर भी उनका 'रस-रहस्य' ग्रंथ हिंदी के अन्य बहुत से काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों से अच्छा है।

हिंदी में अलंकार-शास्त्र के ग्रंथ

हिंदी के पुराने कवियों ने अलंकार-शास्त्र से संबंध रखने-वाले ग्रंथों की रचना प्रचुर परिमाण में की है। इनमें से कुछ ग्रंथ तो प्रकाशित हो गए हैं, पर अधिकांश अब तक अप्रकाशित हैं। यदि अलंकार-शास्त्र संबंधी सभी ग्रंथ एकत्रित किए जायँ तो उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचेगी। हिंदी-साहित्य के इति-हास में ऐसे ग्रंथों का एक विशेष स्थान है। जो लोग हिंदी के पुराने काव्य-साहित्य के संरक्षण के पक्षपाती हैं उनका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि इन ग्रंथों के नष्ट हो जाने अथवा विस्मृति के गर्भ में विलीन होने के पूर्व ही कम से कम एक सूची बनालें और

ज्ञात ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों को एक स्थान पर एकत्रित करलें एवं महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य आरंभ कर दें। अनुमान तो यह किया जाता है कि इस समय जितने ग्रंथों का पता है उसके दुगुने ग्रंथ उपेक्षा और असावधानी के कारण नष्ट हो चुके हैं। इस समय के कुछ काव्य-शास्त्र के विद्वानों का कहना है कि इन ग्रंथों के एकत्रित करने में जो परिश्रम और व्यय होगा उससे हिंदी-साहित्य का उपेक्षाकृत उपकार कम होगा क्योंकि एक तो इन ग्रंथों में मौलिकता बहुत कम है दूसरे विषय के प्रतिपादन में कवियो ने सामाजिक सदाचार को उन्नति की ओर अग्रसर न करके उसकी निर्दयता-पूर्वक हत्या की है। यह आक्षेप अलंकारों के उदाहरणों को प्रकट करनेवाले छंदों के प्रति है। लक्षणों के संबंध में भी इन विद्वानों का कहना है कि लक्षण निर्धारित करने में सूक्ष्मदर्शिता का परिचय बहुत कम दिया गया है और अधिकतर लक्षण अपूर्ण, भ्रामक और अशुद्ध हैं, यह भी कहा गया है कि यदि इन ग्रंथों के सहारे कोई अलंकारों का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो उसे सर्वथा निराश होना पड़ेगा। यदि ये सभी आक्षेप ठीक हों—यद्यपि इनके ठीक माने जाने में बहुत कुछ संदेह है—तो भी काव्य के इतिहास में हमारे आचार्यों का मानसिक विकास कैसा था, इसका पता तो ये ग्रंथ देंगे ही। ऐसी दशा में इनका संरक्षण अनुपयुक्त नहीं कहा जासकता है। हिंदी कविता के पुराने आचार्य विद्वान् थे अथवा मूर्ख इसका निश्चय तभी हो सकता है जब उनके ग्रंथ उपलब्ध हों। इतिहास का काम तो तथ्य का समय के अनुसार वर्णन करना है, फिर चाहे वह हमारे आजकल के विचारों के अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल। हिंदी के जो पुराने अलंकार-संबंधी ग्रंथ मेरे देखने में आए हैं उनके पाठ से तो मेरा

यह विचार है कि आचार्य के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले हिन्दी के अधिकांश पुराने विद्वान् प्रधान रूप से कवि थे और गौण रूप से आचार्य। तत्कालीन साहित्य-समाज अथवा अपने आश्रयदाता राजा के सम्मुख उनका प्रधान लक्ष्य अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने का था। उनको यशस्वी कवि होने में जो आनंद आता था वह अत्यंत सूक्ष्मदर्शी आचार्य होने में नहीं। उन्होंने यह मान सा लिया था कि आचार्यता के ग्रंथ तो संस्कृत में हैं ही उनसे अधिक अब और क्या विवेचन किया जाय। उनके लक्षणों में वहीं संस्कृत लक्षणों की धुंधली छाया पड़कर रह जाती थी, इन लक्षणों की विवेचना करने की प्रवृत्ति उनमें न थी। यही कारण है कि उनके लक्षणों में वह चमत्कार नहीं है जो उनके उदाहरणों में। कई आचार्यों के लक्षणों को देखने से तो ऐसा ज्ञात पड़ता है कि वे उनकी रचना हृदय की सच्ची लगन के साथ नहीं कर रहे हैं, वरन एक बेगार सी भुगत रहे हैं। उनका हृदय तो [illegible] में अपनी कवित्व प्रतिभा प्रदर्शित करने को छटपटा रहा है पर लक्षण गढ़ देना आवश्यक है, इसलिये किसी प्रकार [illegible] लिख कर आगे चलते हैं। पर यह बात सभी [illegible] नहीं [illegible] आ सकती। कुछ ऐसे भी [illegible] इस बात [illegible] कोई भी [illegible] न [illegible] कि जैसे [illegible] पुराने [illegible] आचार्य [illegible] हुए थे यदि वैसे ही [illegible] अलंकार शास्त्र की [illegible] से बिलकुल [illegible] अलंकार शास्त्र का अपूर्व विवेचना की [illegible] का भी [illegible] जिन पुराने आचार्यों ने अलंकार [illegible] और [illegible] के साथ [illegible] एक बात और

है। हिंदी-काव्य-शास्त्र का विकास जिस समय प्रारंभ हुआ उस समय शास्त्रीय विवेचना का काम संस्कृत के प्रकांड पंडितों के हाथ में था। क्या दर्शन, क्या वेदांत, क्या साहित्य सभी शास्त्रों का विवेचन संस्कृत के पंडित लोग करते थे। हिंदी भाषा में लिखना विद्वान् कहला सकने का साधन न था। फिर उसी हिंदी में शास्त्रीय विवेचना तो असंगत बात सी मानी जाती थी। हिंदी के आचार्य संस्कृत के पंडितो के वातावरण में ही पनपे थे। वह वातावरण उनको हिंदी में अलंकार-शास्त्र की विवेचना करने के लिये प्रोत्साहन नहीं प्रदान कर रहा था। उनको साहस न होता था कि संस्कृत के विशाल राजमार्ग को छोड़कर अलंकार-शास्त्र की विवेचना की गाड़ी हिंदी के किसी निर्जन गलियारे में चलाई जाय। संस्कृत के पंडितो के इस आतंक के कारण भी हिंदी में काव्य-शास्त्र की आलोचना संकुचित दशा में रही। यह ठीक है कि बाद में यह आतंक बहुत कुछ कम हो गया, परंतु फिर तो जो बात चल पड़ी वही बनी रही। उसमें फेर-फार नहीं हुआ।

हिंदी में जिन विद्वानों ने अलंकार-शास्त्र-संबंधी लक्षण-लक्ष्य-समन्वित ग्रथ बनाए हैं, उनका कुछ परिचय यहाँ पर दिया जाता है। इस परिचय में उन्हीं विद्वानो के ग्रथ का उल्लेख किया जायगा जिनका उक्त शास्त्र के अध्ययन करनेवालो में विशेष प्रचार रहा है। इन विद्वानो में कुछ तो ऐसे है, जिन्होने सपूर्ण काव्य शास्त्र पर ग्रथ लिखे है और उन्हीं में अलकार-शास्त्र भी आ गया है। कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने केवल अलकार-शास्त्र का निरूपण किया है तथा कुछ ऐसे भी है जिन्होंने सपूर्ण काव्य-शास्त्र पर भी लक्ष्य लक्षण ग्रथ लिखे हैं और अकेले अलकार शास्त्र पर भी। कहा जाता है कि पुष्प या पुण्य नाम के एक कवि ने पहले-पहल विक्रम

सरोज' अथवा 'श्रीपति-सरोज' में अलंकारो का अलग 'दल' है तथैव 'अलंकार-गंगा' में केवल अलंकारों का ही निरूपण है।

महाराज जसवंतसिंह, मतिराम, भूपण, रसिकसुमति, राजा गुरुदत्तसिंह, दलपतिराय, वंसीधर, रघुनाथ, दूलह, शंभुनाथ, ऋषिनाथ, वैरीसाल, दत्त, नाथ, चंदन, रामसिंह, मान, वेनी, वेनीप्रवीन, पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसाहि, रामसहाय, द्विव, कलानिधि, गोकुलनाथ, सूरति, हरिराम निरंजनी, लेखराज तथा उत्तमचंद भंडारी आदि अनेक आचार्यों ने अलग-अलग ग्रंथ बनाकर उनमें केवल अलंकारों ही का वर्णन किया है। इनमें मैंने जिन ग्रंथो को देखा है उनमें भापा-भूपण, ललित-ललाम, अलंकार-चंद्रोदय, अलंकार-रत्नाकर, काव्याभरण, टिकैतराय-प्रकाश, भापाभरण, पद्माभरण, गंगाभरण तथा कंठाभरण मुख्य हैं। रघुनाथ कवि का 'रसिक-मोहन' ग्रंथ बड़ा सुंदर है। 'अलंकार-रत्नाकर' भापा-भूपण की एक प्रकार की टीका है। दूलह का 'कंठाभरण' सचमुच कंठ करने योग्य ग्रंथ है। 'गंगाभरण' ग्रंथ मेरे पितामह लेखराजजी का बनाया हुआ है। इसमें सभी उदाहरण गंगाजी पर घटाए गए हैं। गोकुलदास कायस्थ-कृत 'दिग्विजय-भूपण' बड़ा ग्रंथ है। इसमें पुराने आचार्यों के उदाहरण भी संकलित किए गए हैं और व्रज-भापा-गद्य में उनपर कुछ विवेचना भी की गई है। 'जसवंत-जसोभूपण' के रचयिता कविराजा मुरारिदानजी हैं। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है। मुरारिदानजी ने अलंकारो के नामों को ही उनका लक्षण माना है। यही इस ग्रथ की विशेषता है। नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से खींचातानी का बहुत कुछ आश्रय लेना पड़ा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है। 'जसवत-जसोभूपण' अलंकार-शास्त्र का आधुनिक ग्रथ है और इसके रचयिता की इसके द्वारा

ख्याति भी हुई है और द्रव्य-लाभ भी। सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार का 'अलंकार-प्रकाश' ग्रंथ विलक्षणपूर्ण है। हिंदी में संस्कृत-आचार्यों की विवेचना को भलीभाँति समझाने का सबसे पहले सेठजी ने ही प्रयत्न किया है। हाल में सेठजी ने 'काव्य-कल्पद्रुम' नाम का एक ग्रंथ लिखा है और 'अलंकार-प्रकाश' को उसी का अंग बना दिया है। जगन्नाथप्रसाद भानु ने अपने 'काव्य प्रभाकर' ग्रंथ में अलंकारों के समझाने का अच्छा उद्योग किया है यद्यपि इनका अलंकार-विवेचना का ढंग 'अलंकार-प्रकाश' से बहुत कुछ मिलता है। श्रीयुत लाला भगवानदीन-रचित 'अलंकार-मंजूषा' भी अच्छा ग्रंथ है। पं० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' ने 'अलंकार-पीयूष' नामक एक ग्रंथ गत वर्ष प्रकाशित किया है। अलंकार-शास्त्र पर अँगरेज़ी ढंग से जैसी समालोचनाएँ लिखी जाती हैं 'अलंकार-पीयूष' उसी का एक नमूना है हिंदी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है। कुछ विद्वानों ने इसमें प्रकट की गई बातों का खंडन भी किया है, पर इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रंथ में जितने विस्तार के साथ अलंकार शास्त्र के ऐतिहासिक विकास पर विचार किया गया है, उतना हिंदी के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं है।

जहाँ हिंदी के पुराने आचार्यों का प्रधान लक्ष्य अलंकारों के उदाहरणों में अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने का था, वहाँ आजकल अलंकारों के लक्षणों को विस्तार के साथ समझाने और उनकी बारीकियों को दिखलाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह काम अधिकतर अलंकार-शास्त्र पर लिखे गए संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर हो रहा है। अलंकार-शास्त्र की ऐतिहासिक विवेचना का मूलाधार उक्त शास्त्र पर लिखी गई अँगरेज़ी की आलोचनाएँ हैं। हमको इस बात के मानने में कुछ

भी संकोच नहीं है कि इस समय पहले की अपेक्षा हिंदी में अलंकार-शास्त्र का अध्ययन गंभीरता के साथ हो रहा है। संस्कृत के अलंकार-शास्त्र के कई ग्रंथों के हिंदी अनुवाद भी हो गए हैं इससे केवल हिंदी जाननेवाले विद्यार्थियों को बड़ा सुभीता हो गया है। पं० शालग्रामजी शास्त्री ने 'साहित्य-दर्पण' पर हिंदी में 'विमला' टीका लिखी है। 'दर्पण' में अलंकार-शास्त्र का अच्छा विवेचन है। जयदेवजी के 'चंद्रालोक' का श्रीव्रजजीवन-दासजी ने अच्छा अनुवाद किया है। 'काव्य-कल्पद्रुम' में 'काव्य-प्रकाश' से बहुत कुछ सहायता ली गई है। हिंदी के पुराने कवि ऋषिनाथ ने 'काव्य-प्रकाश' का अनुवाद किया था। उनका वह ग्रंथ अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। यदि भली भाँति संपादन कराके उसका प्रकाशन किया जाय तो उससे हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार हो।

इस प्रकार जहाँ एक ओर हिंदी के काव्य-संसार में अलंकार-शास्त्र के गंभीरता-पूर्वक अध्ययन का प्रयत्न हो रहा है वहाँ दूसरी ओर हिंदी के कवि-समाज में एक दल अलंकार-शास्त्र के सर्वथा विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। वह काव्य में अलंकार-शास्त्र के महत्त्व को मानने से इनकार करता है। अलंकार-प्रधान कविता को वह अत्यंत निम्न कोटि की कविता मानता है। यद्यपि प्राचीन समय में भी रस-प्रधान और अलंकार-प्रधान कविता को लेकर वाद-विवाद होते थे, पर अलंकार-प्रधान कविता की सार-हीनता उस समय इतने जोरों के साथ नहीं घोषित की जाती थी। पर आज तो कवियों का एक समुदाय अलंकारों के नाम से भी चिढ़ता है। इस दल के कुछ कवि तो सचमुच विद्वान हैं और अलंकारों को हृदय-स्पर्शिनी कविता का घातक समझकर उनका विरोध करते हैं, पर कुछ कवि ऐसे हैं

जो अविद्वान् हैं और शास्त्र के अध्ययन में अपने को असमर्थ पाकर उक्त शास्त्र की महत्ता ही अस्वीकार करते हैं।

हिंदी के अलंकार-शास्त्र-संबंधी ग्रंथों का ऊपर जो संक्षि परिचय दिया गया है उससे यह बात प्रकट है कि हमारी हिं भाषा में इस विषय के ग्रंथों की कमी नहीं है, फिर भी शास्त्रो ढंग से अलंकारों के लक्षण देनेवाले एवं उन लक्षणों का उदा हरणों में स्पष्ट समन्वय दिखलानेवाले अलंकार-ग्रंथ हिंदी में अब भी बहुत थोड़े हैं। पुराने अलंकार-ग्रंथों में लक्षण प्राय पद्य में दिए गए हैं, जिससे उनमें स्पष्टता का अभाव है। जि दो-एक आधुनिक ग्रंथों में लक्षण गद्य में दिए गए हैं उनमें लक्ष के साथ उदाहरणों का समन्वय भली भाँति नहीं दिखाय गया। उदाहरणों में यह त्रुटि दृष्टगत होती है कि एक तो उनकी संख्या कम है। दूसरे वे प्राय. संस्कृत-पद्यों के अनुवा हैं। अनुवाद होने के कारण ऐसे बहुत से पद्यों में मूल की सरसता न्यून मात्रा में दिखलाई पड़ती है। इसी कमी को पूर् करने के लिये श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया ने इस 'भारती भूषण' ग्रंथ की रचना की है। मेरे ख़याल से केडियाजी को इ ग्रंथ के बनाने में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। मेरा विश्वा है हिंदी-अलंकार-शास्त्र के जिज्ञासु इस ग्रंथ से बहुत ला उठावेंगे।

ग्रंथकर्ता का परिचय

यहाँ पर 'भारती-भूषण' के रचयिता श्रीअर्जुनदासजी केडि का भी संक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

राजपूताना की प्रसिद्ध रियासत जयपुर में 'महनसर' नाम एक गाँव है। इसी गाँव में संवत् १९१४ में श्रीअर्जुनदास

-रंजन' है इसमें शृंगार रस की कविताएँ हैं। दूसरे भाग का नाम 'नीति-नवनीत' है इसमें नीति-संबंधी पद्य हैं। तीसरे भाग का नाम 'वैराग्य-वैभव' है इसमें भक्ति-वैराग्य-संबंधी रचना है। केडियाजी सत्कवि हैं, इनका यह ग्रंथ भी शीघ्र प्रकाशित होगा। प्रस्तुत 'भारती-भूषण' ग्रंथ में अलंकार-शास्त्र का विवेचन है। इसके देखने से केडियाजी की अलंकार-मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। केडियाजी सुखी गृहस्थ हैं। इनके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र का नाम शिवकुमारजी है। आप बड़े ही मिलनसार और कविता-प्रेमी हैं। आप भी कवि हैं। आप ही के आग्रह और स्नेह से प्रेरित होकर मुझे 'भारती-भूषण' की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भारती-भूषण

'भारती-भूषण' ३८२ पृष्ठों का एक बड़ा ग्रंथ है। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ इसमें अलंकार-विषय का प्रतिपादन बड़े अच्छे ढंग से हुआ है। इसकी शैली प्राचीनता की परिपाटी में बँधी हुई है। आजकल अंगरेज़ी ढंग से पुस्तकों को आकर्षक बनाने का जो उद्योग किया जाता है, वह इसमें बहुत कम है। अलंकार-शास्त्र में विवाद की बहुत बड़ी गुंजाइश है। एक साधारण से लक्षण को लेकर अलंकार-शास्त्र के विद्वान् गंभीर शास्त्रार्थ उपस्थित कर सकते हैं। उदाहरणों में तो इस विवाद का अवसर पद-पद पर है। जिस उदाहरण में एक शास्त्रज्ञ एक अलंकार बतलाता है उसी में दूसरे को दूसरे अलंकार की सत्ता प्रतीत हो सकती है। इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक है और ऐसे मतभेदों को लेकर विवेचन-कार्य होने से ही अलंकार-शास्त्र प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ है। केडियाजी के इस ग्रंथ में ऐसे बीसों स्थल

[illegible] हो सकते हैं, जहाँ पर [illegible] का पूर्ण बोध है, पर
भी [illegible] नहीं है कि [illegible] [illegible] को [illegible] पर
[illegible] का मत और [illegible] करने में [illegible] भी प्राप्त
हो। अलंकार-शास्त्र ही ऐसा है जिसमें इस शास्त्र के विशेषज्ञों
को लेकर सर्वथा मतभेद मिल सकता है, पर इतना ध्यान में
निस्संकोच कह सकता हूँ कि परिभाषाओं के स्पष्टीकरण और
उनके लक्षणों को सरल, स्पष्ट और अधिकाधिक [illegible] बनाने में
कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'भारती-भूषण' में इस विषय की अन्य पुस्तकों की अपेक्षा कौन-कौनसी विशेषताएँ हैं यह जान लेना भी आवश्यक है। स्वयं लेखक महोदय ने इस संबंध में मुझे अपने विचार दिए हैं। पुस्तक को ध्यान-पूर्वक देखने से लेखक के निम्न लिखित विचार यथार्थ जान पड़ते हैं—

(१) जिन अलंकारों के कई भेद हैं उन अलंकारों में से बहुत कम ऐसे हैं जिनके मूल लक्षण अन्य ग्रंथों में मिलते हों। वहाँ पर भेदों के ही भिन्न-भिन्न लक्षण लिखे हुए हैं; किंतु इस ग्रंथ में ऐसे सभी अलंकारों के मूल लक्षण इस ढंग से अनुस्यूत करके लिखे गए हैं कि उनके जितने भेद हैं उन सबमें वे घटित हो जायँ। नमूने के तौर पर निदर्शना, पर्यायोक्ति, विभावना, विशेष, पर्याय उदात्त, हेतु आदि देखे जा सकते हैं।

(२) अधिकांश भाषा अलंकार-ग्रंथों के उदाहरण चंद्रालोक, कुवलयानंद आदि के संस्कृत-उदाहरणों के अनुवादित रूप ही पाए जाते हैं, किंतु प्रस्तुत पुस्तक के उदाहरणों में न तो अन्य कवियों द्वारा अनुवादित पद्यों को स्थान दिया गया है और न स्वयं ग्रंथकार ने किसी का अनुवाद किया है।

(३) इस समय के प्रचलित दो ग्रंथ अलंकार-प्रकाश और

१६ पृष्ठ ३८० सूचना
१७ " ३८२ अलंकारों के विषय *

अंत में मुझे यही कहना है कि 'भारती-भूषण' अलंकार-शास्त्र का हिंदी में एक अनूठा ग्रंथ है। मेरा विश्वास है कि हिंदी-जगत्

---

* 'भारती भूषण' की जिन १० विशेषताओं का उल्लेख पंडितवर श्रीकृष्णबिहारीजी मिश्र महोदय ने ऊपर किया है, उनमें जो जो नियम बतलाए गए हैं, वे सब यथार्थ हैं। उनके पालन की ओर हमने पूरा ध्यान रखा है। फिर भी विशेषता नंबर २ और ३ (जो भूमिका के पृष्ठ १० में दी गई हैं) के विषय में हम यह निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि यदि उनमें लिखे हुए नियमों का पालन करने में कहीं भूल हो गई हो तो पाठकगण हमें इसकी सूचना देकर उपकृत करेंगे और इसके लिये क्षमा करेंगे।

"अलंकारों के विषय" के संबंध में भी हम एक निवेदन कर देना चाहते हैं। पृष्ठ ३८२ और ३८३ में २७ अलंकारों के विषय लिखे गए हैं। इनमें से अधिकांश 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ के आधार पर लिखे गए हैं। इस ग्रंथ को श्रीउत्तमचंद भंडारी नामक उत्कृष्ट विद्वान् ने बहुत ही परिश्रम-पूर्वक लिखा है। इसमें देश का नाम मुरधर (मरुस्थल), राजा का नाम भीमसिंह और ग्रंथ-निर्माण-समय विक्रमीय संवत् १८५७ विजयादशमी दिया हुआ है। इसमें १२८ अलंकारों का निरूपण है और सुंदर-सुंदर उदाहरणों का संग्रह अत्यंत ध्यान पूर्वक किया गया है। मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नताएँ भी प्रचुर परिमाण में लिखी हुई हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हमारे पास है। हमारी यह धारणा है कि यदि यह ग्रंथ सुचारु रूप से प्रकाशित किया जाय तो साहित्य संसार के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

—प्रकाशक।

इन कविताओं की सूची पुस्तक के अंत में दी गई है। वर्तमान कवियों के नये उदाहरण ढूँढ़कर दिए गए हैं। इन ७५० उदाहरणों में प्रायः सभी विषयों की कविताएँ आ गई हैं। इसके अतिरिक्त लक्षण, मिलान, सूचनाओं और टिप्पणियों में प्रमाण-स्वरूप दिए हुए और भी बहुत से पद्य हैं।

(१०) बहुत सी खोजपूर्ण नई बातें इस ग्रंथ में बड़े परिश्रम से लिखी गई हैं और उनके संबंध में काशी के बड़े-बड़े विद्वानों से भी परामर्श किया गया है। ये बातें बहुत उपयोगी हैं। ये प्रायः टिप्पणियों और सूचनाओं में लिखी गई हैं। इनका कुछ ब्यौरा इस प्रकार है—

१ पृष्ठ ८ टिप्पणी नंबर १
२ " १४ सूचना
३ " १५ विशेष सूचना
४ " २१ सूचना
५ " ६४ सूचना
६ " १२४ टिप्पणी नं० १
७ " १३५ सूचना
८ " १३७ सूचना
९ " १३७ विशेष सूचना
१० " १५५ सूचना नं० २
११ " १८९ विशेष सूचना
१२ " २०२ सूचना नं० १
१३ " २१२ टिप्पणी नं० २
१४ " २९६ सूचना नं० १
१५ " ३२२ सूचना नं० १

अंत में मुझे यही कहना है कि 'भारती-भूषण' अलंकार-शास्त्र का हिंदी में एक अनूठा ग्रंथ है। मेरा विश्वास है कि हिंदी-जगत्

---

* 'भारती भूषण' की जिन १० विशेषताओं का उल्लेख पंडितवर श्रीकृष्णविहारीजी मिश्र महोदय ने ऊपर किया है, उनमें जो जो नियम बतलाए गए हैं, वे सब यथार्थ हैं। उनके पालन की ओर हमने पूरा ध्यान रखा है। फिर भी विशेषता नंबर २ और ३ (जो भूमिका के पृष्ठ १७ में दी गई हैं) के विषय में हम यह निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि यदि उनमें लिखे हुए नियमों का पालन करने में कहीं भूल हो गई हो तो पाठकगण हमें इसकी सूचना देकर उपकृत करेंगे और इसके लिये क्षमा करेंगे।

"अलंकारों के विषय" के संबंध में भी हम एक निवेदन कर देना चाहते हैं। पृष्ठ ३८२ और ३८३ में २७ अलंकारों के विषय लिखे गए हैं। इनमें से अधिकांश 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ के आधार पर लिखे गए हैं। इस ग्रंथ को श्रीउत्तमचंद भंडारी नामक उत्कृष्ट विद्वान् ने बहुत ही परिश्रम-पूर्वक लिखा है। इसमें देश का नाम मुरधर (मरुस्थल), राजा का नाम भीमसिंह और ग्रंथ-निर्माण-समय विक्रमीय संवत् १८५७ विजयादशमी दिया हुआ है। इसमें १२८ अलंकारों का निरूपण है और सुंदर-सुंदर उदाहरणों का संग्रह अत्यंत ध्यान पूर्वक किया गया है। मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नताएँ भी प्रचुर परिमाण में लिखी हुई हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हमारे पास है। हमारी यह धारणा है कि यदि यह ग्रंथ सुचारु रूप से प्रकाशित किया जाय तो साहित्य संसार के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

—ग्रंथकर्ता।

में इसका यथेष्ट आदर होगा। केडियाजी की यह इच्छा थी कि मैं इसकी एक बृहत् भूमिका लिखूँ। एक तो अलंकार-शास्त्र का मैं विशेषज्ञ नहीं हूँ; दूसरे मेरे पास समय का अभाव भी था; इस कारण केडियाजी की इस इच्छा का पूर्ण रूप से पालन करने में मैं असमर्थ रहा; इसका मुझे बड़ा खेद है। यदि ईश्वर की कृपा से 'भारती-भूषण' का यह प्रथम संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया, जिसकी मुझे दृढ़ आशा है, तो इसके दूसरे संस्करण में मैं अपने विचार अधिक विस्तार के साथ लिखने की चेष्टा करूँगा।

लखनऊ
वैशाख कृष्णा सोमवती अमावस्या
संवत् १९८७

कृष्णविहारी मिश्र।
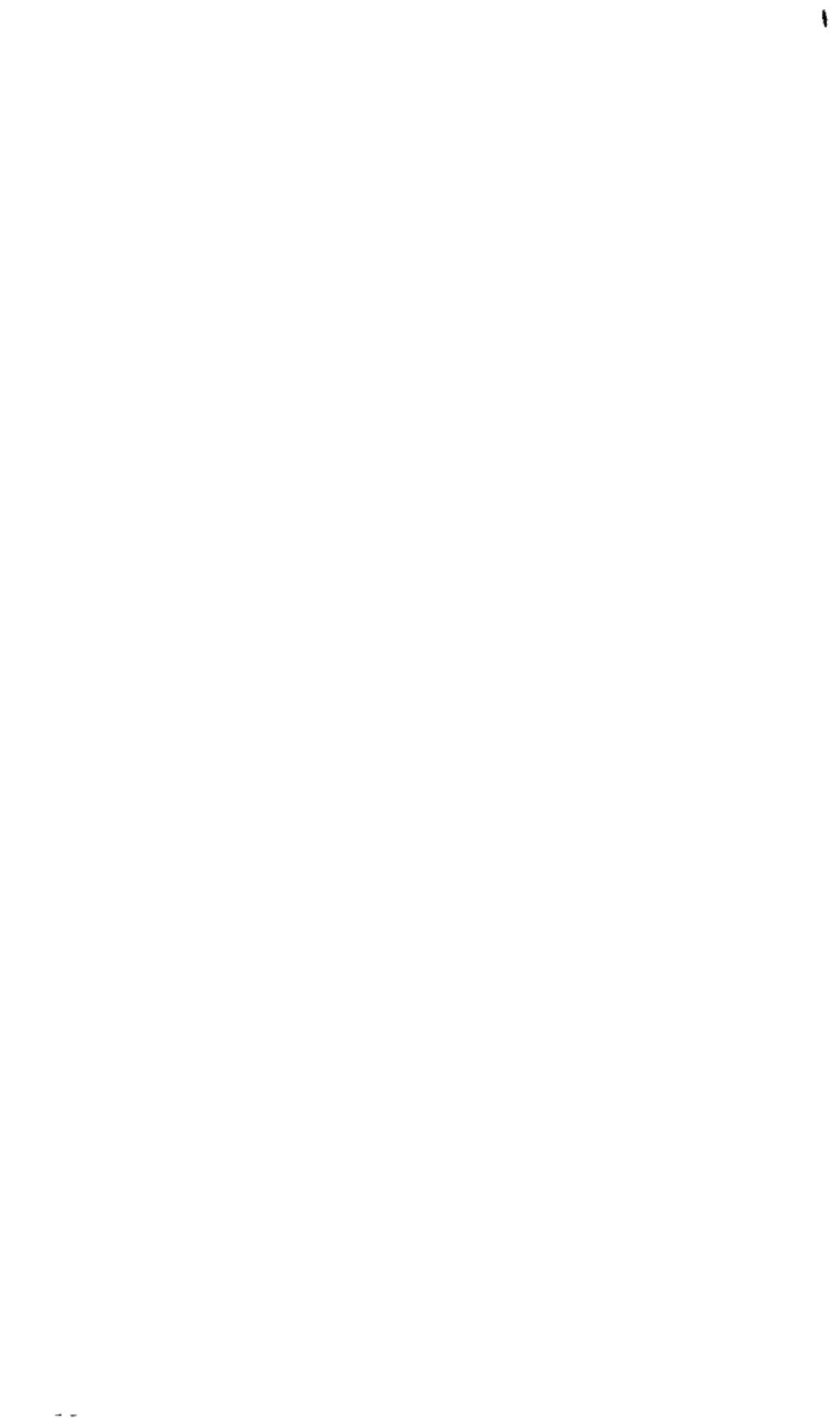
जो साधारण तुकबंदी करनेवाले लोग यह भी नहीं जानते कि अलंकार किसे कहते हैं, उनकी रचनाओं को भी अलंकार स्वयमेव अलंकृत करते चले आते हैं। अलंकार-शास्त्र से अनभिज्ञ, पर शिक्षित लोगों के वार्तालाप * और पत्र-व्यवहार में भी अलंकार अपना चमत्कार बहुधा आप से आप और अनजान में दिखला जाते हैं; और इसका कारण मनुष्य की वही सौंदर्योपासनावाली वृत्ति है। साधारण से साधारण और अपढ़ से अपढ़ व्यक्तियों की बोलचाल में भी अलंकार बरबस आ जाते हैं। यथा—

"जल में रहे मगर से बैर"

यहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार तो है ही; 'विशेष-निबंधना (अप्रस्तुत-प्रशंसा)' भी है।

"उसकी बातों के जाल में मत फँस जाना"

यहाँ 'बातो के जाल' में 'निरंग रूपक' है।

कहने का तात्पर्य यही है कि अलंकार सर्वव्यापी हैं। जो लोग अलंकारों के विरोधी हैं, उनकी बातो में, उनकी कृतियों

---

* एक बार की बात है। मैं फीरोजपुर में एक मजिस्ट्रेट मित्र से मिलने गया था; किंतु वे घर पर नहीं मिले, एक उच्च पदाधिकारी के यहाँ गए हुए थे। मैं भी वहीं चला गया। बातों ही बातों में प्रसग-वश उक्त पदाधिकारी महाशय ने (जो ढलती अवस्था के थे) मजिस्ट्रेट से कहा—"मेरी आँख लग गई थी"। इसपर उन्होंने तुरंत ही मुस्कराते हुए कहा—"क्या अब भी आपकी आँख लगती है?" इस वार्तालाप में उन दोनों सज्जनों ने आनंद का जो कुछ अनुभव किया, वह तो किया ही किंतु उसमें 'वक्रोक्ति' की चमत्कृति देखकर मेरे हृदय में जो आनंद का उद्रेक हुआ, उसका अनुमान तो अलंकार के रसिक ही कर सकते हैं।

में और उनके अलंकार-विरोधी लेखों तथा निबंधों तक में अलं-
कार स्वयमेव अपना अधिकार जमा लेते हैं; और जबतक उनमें
आलंकारिक शब्दावली नहीं होती या यों कहिए कि भाषा को
अलंकार का सहारा नहीं मिलता, तबतक उनमें रोचकता तथा
ओजस्विता आ ही नहीं सकती।

ग्रंथ-निर्माण-कारण

अलंकार-शास्त्र-संबंधी गंभीर गवेषणा-पूर्ण और मार्मिक
विवेचना-संयुक्त ग्रंथों से जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य का भंडार
भरा हुआ है, उस प्रकार के उच्च कोटि के ग्रंथों का हिंदी-साहित्य
में प्राय: अभाव ही है। प्राचीन हिंदी में गद्य का एक प्रकार से
विकास ही नहीं हुआ था; इसलिये 'कविप्रिया' आदि जितने
लक्षण-ग्रंथ बने, उनमें लक्षणों का निरूपण करने के लिये भी
पद्य का ही व्यवहार हुआ। लक्षणों का जैसा विश्लेषण और
स्पष्टीकरण गद्य में हो सकता है, वैसा पद्य में नहीं हो सकता,
क्योंकि पद्य लिखते समय लेखक को अपना विचार-विहंगम
पिंगल के पिंजड़े में बंद करके रखना पड़ता है। इससे वह
स्वच्छंद उड़ान लेने में असमर्थ होता है। उसका ठीक-ठीक
अभिप्राय समझना लोगों के लिये बहुत कठिन होता है; और
जिस उद्देश्य से उस पद्य की रचना की जाती है, वह उद्देश्य
प्राय: अपूर्ण ही रह जाता है।* यद्यपि 'अलंकार-आशय'

* हिंदी ही में नहीं वरन् संस्कृत-साहित्य में भी जहाँ कहीं अलं-
कारों के लक्षण संकुचित पद्य में लिखे गए हैं, वहाँ अपूर्णता रह गई है,
प्रत्युत कहीं-कहीं तो दो लक्षण एक ही हो गए हैं। यथा—

"मीलितं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते"
"सामान्यं यदि सादृश्याद्विशेषो नोपलक्ष्यते"

साथ रखा गया है। परंतु इतने पर भी वह आपत्ति ज्यों की त्यों बनी रही जो पहले केवल 'निपुण' विशेषण रखने पर हो सकती थी। अर्थात् अतिव्याप्ति बनी ही रही, जो इतिहासादि में भी हो जाती है। अत: उक्त वर्णना के साथ 'लोकोत्तर' विशेषण का सयोग किया गया है। यहाँ लोकोत्तर वर्णना रूपी निपुण कवि-कर्म का संबंध विवक्षित है। 'साहित्य' शब्द का शक्यतावच्छेदक धर्म 'तादृश-काव्य-परिष्कारकत्व' होता है। इस धर्म में आए हुए 'तादृश-काव्य' का विवरण तो ऊपर दिया जा चुका है, अब रहा उसका 'परिष्कारकत्व'। यदि इसका तात्पर्य केवल दोषों का दूरीकरण हो तो कवि-संप्रदाय से विरोध होता है; यदि 'गुणों का दिग्दर्शन कराना' कहा जाय तो आलंकारिक सिद्धांत के विरुद्ध होगा, और यदि 'रस का प्रतिपादन करना' अभीष्ट हो तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकारांतर से 'काव्य' में ही यह बात आ गई है। सुतरां यहाँ 'उक्त काव्य के संपूर्ण लक्षणों का प्रतिपादन करना' अभिप्रेत है। इस प्रकार 'काव्य' और 'साहित्य' के स्वरूपों का स्पष्टीकरण हो गया; और सिद्ध हो गया कि 'काव्य' तथा 'साहित्य' दोनों एक नहीं हो सकते।

काव्य का महत्व

काव्य वास्तव में मानव-जीवन, मानव-अनुभूतियों और मानव-अंतर्वृत्तियों का विशद चित्र है। यही कारण है कि काव्य अजर और अमर है। काव्य का प्रकाश मानव-जीवन के प्राय साथ ही साथ हुआ है और वह तबतक देदीप्यमान रहेगा जब-तक इस विशाल ब्रह्मांड में मनुष्य का अस्तित्व है। केवल मानव-जीवन के साथ ही नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के साथ काव्य का इतना घनिष्ट संबध है कि उसका स्रष्टा ईश्वर तक 'कवि' कहा

गया है; श्रुतियों एवं शास्त्रों ने एक स्वर से ईश्वर को 'कवि' की उपाधि से उद्घोषित एवं विभूषित किया है। यथा—

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः"

—यजुःसंहिता (अध्याय ४०)।

"कविम्पुराणमनुशासितारम्"

—श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ८)।

"वेदाङ्गो वेदवित्कविः"

—महाभारत (अनुशासन पर्व)।

जब स्वयं परब्रह्म परमात्मा के लिये 'कवि' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इससे स्पष्ट सिद्ध है कि 'कवि' एक असाधारण तथा अत्युत्कृष्ट उपाधि है, और इसी लिये उसकी कृति 'काव्य' भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। जिस प्रकार ईश्वर को 'कवि' कहा गया है, उसी प्रकार उसकी रची यह सृष्टि भी 'काव्य' कही जा सकती है। यदि हम 'काव्य' को उसके परम व्यापक अर्थ में लें तो कह सकते हैं कि मनुष्य को काव्य के ही द्वारा समस्त जड़ और चेतन पदार्थों का ज्ञान हुआ है, होता है और होगा। पृथ्वी आदि प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थों का परिज्ञान भी पहले-पहल इसी के द्वारा हुआ है। इसके अभाव में संसार के संपूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय और गुण, कर्म, स्वभावों का वास्तविक स्वरूप समझना असंभव ही था।

काव्य का मुख्य विषय जीवन तथा सृष्टि की व्याख्या करना है। काव्य जैसा रमणीय एवं अलौकिक आह्लादकारक है, वैसा ही जटिल एवं क्लिष्ट भी है। यही कारण है कि प्राचीन से प्राचीन दिव्यदर्शी काव्याचार्यों ने भी अपने को इसका सांगोपांग मर्मज्ञ तथा यथार्थवेत्ता नहीं माना। काव्य का रसास्वादन भी अनिर्व-

"अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥"

अर्थात् जो विद्वान् अलंकाररहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को उष्णता-हीन क्यों नहीं मानता ?

अग्निपुराण में भगवान् वेदव्यास ने भी कहा ही है—

"अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते ।
तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥
अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती ।"

अर्थात् अर्थों में जो अलंकारात्मक (धर्म) है, वही अर्थालंकार है। उसके बिना शब्द का सौन्दर्य भी मनोहर नहीं होता, और उससे रहित सरस्वती (वाणी) विधवा तुल्य है।

इसी प्रकार आचार्य दण्डी ने भी लिखा है—

"काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते ।"

अर्थात् काव्य में सौन्दर्यकारक धर्म ही अलंकार कहे जाते हैं।

'अलंकार' शब्द का अर्थ 'आभूषण' है। अलंकारों का मुख्य कार्य भावों तथा कल्पनाओं को सुंदर और मनोहर रूप प्रदान करना है। अलकारों के अभाव में सुंदर से सुंदर भावों और विचारों का सौंदर्य अपेक्षाकृत कम जचता है, और अलकारों के योग से साधारण भाव तथा विचार भी परम चित्ताकर्षक हो जाते हैं। जैसे कोई रमणी स्वतः सुंदरी होने पर भी जब भूषणों द्वारा भूषित की जाती है, तब उसका वह सौंदर्य बहुत अधिक बढ़ जाता है। वैसे ही कविता व्याकरण, पिंगल आदि से शुद्ध होने पर भी जब अलकारों द्वारा सुसज्जित होती है, तभी

यहाँ 'प्रथम कारणमाला' और 'आप्नोति' क्रिया की आवृत्ति से 'पदार्थावृत्ति-दीपक' अलंकार है।

इसी प्रकार अन्य संहिताओं और ब्राह्मणों में भी अलंकारों का प्रयोग बहुत अधिकता से देखने में आता है। यहाँ इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। उपनिषदों में तो अलंकार और भी प्रचुर परिमाण में देखे जाते हैं।

इनके अतिरिक्त स्मृतियों और इतिहास-ग्रंथों में भी अलंकारों की भरमार है। यथा—

"यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥"
—मनुस्मृति।

यहाँ 'दृष्टांत' अलंकार का प्रयोग है।

"रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥"
—श्रीमद्भगवद्गीता (अ० ७ श्लोक ८)।

यहाँ 'द्वितीय उल्लेख' अलकार है। *

केवल संस्कृत के धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक ग्रंथों में ही नहीं, प्रत्युत् संसार के सभी प्रसिद्ध मतों के धार्मिक पुस्तकों आदि में भी अलकारो की छटा पर्याप्त मात्रा में देखी जाती है। बाइबिल और कुरान में भी कितने ही अलंकार स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

होता है। दक्षिणा द्वारा श्रद्धा को और श्रद्धा द्वारा सत्य (परमात्मा) को प्राप्त होता है।

* इसके अतिरिक्त महाभारत का एक श्लोक हमने पृष्ठ ७३ पर 'समुच्चयोपमा' के उदाहरण में दिया है।

गया है। अन्य ग्रंथों में लक्षणों के लिये प्राचीन हिंदी-पद्यों का व्यवहार किया गया है, जो प्रायः संस्कृत के श्लोकों का उल्था मात्र हैं। हमारे विचार से जिज्ञासु पाठकों और विशेषत. नव युवक विद्यार्थियों की ज्ञान-पिपासा तबतक नहीं बुझ सकती जबतक हिंदी भाषा की प्रकृति का ध्यान रखते हुए लक्षणों का सरल और स्पष्ट गद्य में निरूपण न किया जाय। लक्षणों के संबंध में एक और बात बड़े मार्के की है। संस्कृत के प्राय ग्रंथो में* एवं हिंदी के जितने अलंकार-ग्रंथ हमारे . में आए, उन सबमें भेदोवाले अलंकारो में से कुछ प्रधान अलंकारो के मूल लक्षण तो लिखे हैं; किंतु अधिकांश के मूल स्वरूप नहीं समझाए गए हैं, उनमें केवल भेदों के ही भिन्न-भिन्न लक्षण लिखे हैं। हमारे विचार से यह एक भारी त्रुटि रह गई है; क्योंकि ऐसा न होने से इस बात का पता नहीं चलता कि

---

* संस्कृत के 'साहित्य-दर्पण' में तो भेदोंवाले सब अलंकारों के मूल लक्षण बनाए गए हैं; किंतु अन्य कुछ प्रचलित लक्षण-ग्रंथों के इन अलंकारों का विवरण उद्धृत किया जाता है, जिनमें मूल लक्षण आवश्यक होते हुए भी नहीं दिया गया है—

'काव्य-प्रकाश' में—निदर्शना, समुच्चय, पर्याय, उत्तर, विशेष।

'चंद्रालोक' में—उल्लेख, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, निदर्शना, पर्यायोक्ति, आक्षेप, विभावना, असंगति, विषम, सम, अधिक, विशेष, व्याघात, पर्याय, समुच्चय, प्रहर्षण, पूर्वरूप, उत्तर, हेतु।

'रस-गंगाधर' में—विशेष, पर्याय, प्रतीप।

['काव्य-प्रकाश' एवं 'रस-गंगाधर' में अल्पसंख्यक अलंकारों के ही भेद दिए गए हैं; इसीसे वहाँ बहुत से अलंकारों के मूल लक्षण की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।]

ठीक-ठीक न समझकर कहीं-कहीं कुछ का कुछ कर दिया है। जहाँ तक हमारी अल्प बुद्धि में आया है हमने इस प्रकार की भूलों से बचने का यथा-साध्य प्रयत्न किया है; पर एक बात और है वह यह कि व्याकरण तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत-भाषा की प्रकृति से हमारी हिंदी की प्रकृति बहुत कुछ भिन्न है; इसलिये हमें कुछ स्थलों पर विवश होकर संस्कृत का अनुकरण छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरण के लिये 'लाटानुप्रास' अलंकार को ही लीजिए। संस्कृत में 'पद' और 'नाम' की आवृत्ति के विचार से इसके दो भेद किए गए हैं; परंतु जैसा कि हमने 'लाटानुप्रास' के अंत की सूचना में बतलाया है, संस्कृत-व्याकरण में जिन्हें 'पद' और 'नाम' कहते हैं, उनका हमारे हिंदी-व्याकरण में कोई स्थान ही नहीं है। अतः हमारे लिये उसका ज्यों का त्यों अनुकरण करना असंभव है। हमारे यहाँ तो शब्द और वाक्य का ही भेद है; और इन्हीं दोनों के अनुसार हमने 'लाटानुप्रास' के दो भेद रखे हैं। इसी प्रकार 'यथासंख्य' अलंकार को लीजिए। संस्कृत में इसके 'शाब्द' और 'आर्थ' ये दो भेद किए गए हैं। संस्कृत में ये भेद इसलिये उपयुक्त हैं कि उसमें समास और उसके परिणाम-स्वरूप अन्वय आदि की विस्तृत और जटिल परिपाटी है; पर हमारी हिंदी में वह प्राय नहीं के समान है। हमारे यहाँ समासों का अपेक्षाकृत बहुत कम व्यवहार होता है और शब्दों का परस्पर वह दूरान्वय नहीं होता जो संस्कृत में होता है। इसीलिये हमने 'यथासंख्य' अलकार का कोई भेद नहीं माना है। जिन लोगों ने संस्कृत के अनुकरण पर ऐसे स्थलों पर अलकारों के भेद माने हैं, वे अपने उदाहरणों में ऐसे भेदों का पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं कर सके हैं।

ठीक-ठीक न समझकर कहीं-कहीं कुछ का कुछ कर दिया है। जहाँ तक हमारी अल्प बुद्धि में आया है हमने इस प्रकार की भूलों से बचने का यथा-साध्य प्रयत्न किया है; पर एक बात और है वह यह कि व्याकरण तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत-भाषा की प्रकृति से हमारी हिंदी की प्रकृति बहुत कुछ भिन्न है; इसलिये हमें कुछ स्थलों पर विवश होकर संस्कृत का अनुकरण छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरण के लिये 'लाटानुप्रास' अलंकार को ही लीजिए। संस्कृत में 'पद' और 'नाम' की आवृत्ति के विचार से इसके दो भेद किए गए हैं; परंतु जैसा कि हमने 'लाटानुप्रास' के अंत की सूचना में बतलाया है, संस्कृत-व्याकरण में जिन्हें 'पद' और 'नाम' कहते हैं, उनका हमारे हिंदी-व्याकरण में कोई स्थान ही नहीं है। अतः हमारे लिये उसका ज्यों का त्यों अनुकरण करना असंभव है। हमारे यहाँ तो शब्द और वाक्य का ही भेद है; और इन्हीं दोनों के अनुसार हमने 'लाटानुप्रास' के दो भेद रखे हैं। इसी प्रकार 'यथासंख्य' अलंकार को लीजिए। संस्कृत में इसके 'शाब्द' और 'आर्थ' ये दो भेद किए गए हैं। संस्कृत में ये भेद इसलिये उपयुक्त हैं कि उसमें समास और उसके परिणाम-स्वरूप अन्वय आदि की विस्तृत और जटिल परिपाटी है; पर हमारी हिंदी में वह प्राय नहीं के समान है। हमारे यहाँ समासों का अपेक्षाकृत बहुत कम व्यवहार होता है और शब्दों का परस्पर वह दूरान्वय नहीं होता जो संस्कृत में होता है। इसीलिये हमने 'यथासंख्य' अलकार का कोई भेद नहीं माना है। जिन लोगों ने संस्कृत के अनुकरण पर ऐसे स्थलों पर अलंकारों के भेद माने हैं, वे अपने उदाहरणों में ऐसे भेदों का पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं कर सके हैं।

आधुनिक काल में जब कि हिंदी-साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है, हम बहुत दिनों से इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई न कोई उद्भट एवं अनुभवी विद्वान् इस विषय पर अपनी लेखनी उठावेंगे; और उपर्युक्त त्रुटियों से रहित कोई अलंकार-ग्रंथ प्रस्तुत करके अलंकार-शास्त्र के अध्येताओं एवं रसिकों की मनस्तुष्टि करेंगे। किंतु ऐसा होता न देखकर हमने वृद्धावस्था में भी अपनी दुर्बलताओं की उपेक्षा करते हुए केवल उत्साह के बल पर कमर कसकर इस साहित्यिक अखाड़े में उतरने का दुस्साहस किया है, और ऊपर बतलाए हुए अभावों की पूर्ति करने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया है।

ऊपर हमें अपने पूर्ववर्ती लेखक महानुभावों के ग्रंथों में दिखाई पड़नेवाले कतिपय अभावों का उल्लेख करना पड़ा जिसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं; और हम निस्संकोच भाव से कहते हैं कि यदि उन ग्रंथों की महती सहायता न मिलती हम अपना यह ग्रंथ प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। इसमें जो कुछ है, वह उन्हीं के खजानों से लिया गया है। तो केवल उसका परिष्कार करके अर्थात् उसमें अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन तथा परिवर्द्धन उसे साहित्य-संसार के समक्ष रख दिया है। अलंकार-शास्त्र में नवीन अन्वेषण होने पर आगे चलकर हमारी इस पुस्तक में भावी रचयिताओं को अनेक त्रुटियाँ दृग्गोचर होंगी; क्योंकि परंपरा ही है।

हमने 'नभःपतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः' के अनुसार पुस्तक को परिपूर्ण एवं उपादेय बनाने का यथा-साध्य प्रयत्न किया है और इसमें बहुत सी विशेषताएँ या नवीनताएँ
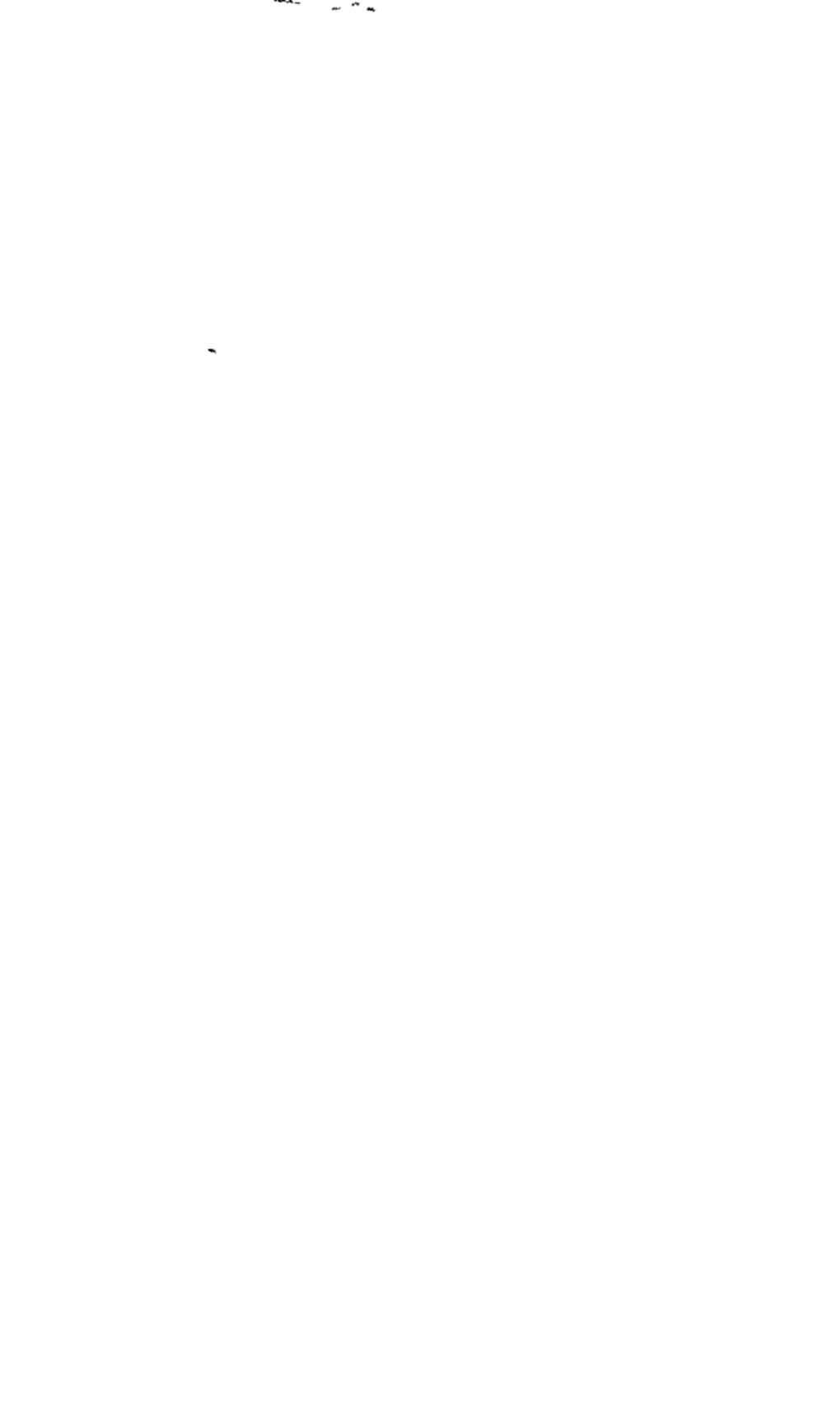
इनके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अलंकारों का निरूपण किया है। कितने ही आचार्यों ने पुराने अलंकारों को विकसित किया, कितनों ने नये-नये आभूषण गढ़े और कितनों ने आगे चलकर उनकी काट-छाँट भी की। यही बात हिंदीवालों की है। हिंदी के आदि आचार्य महाकवि केशवदास ने 'कविप्रिया' में अलंकारों के 'सामान्य' और 'विशिष्ट' दो मुख्य विभाग करके 'सामान्य' के अंतर्गत ४ और 'विशिष्ट' के अंतर्गत ३६, इस प्रकार कुल चालीस अलंकारों का निरूपण किया है; और उनके परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार संख्या रखी है। जिसकी उन्नति होते-होते सौ के ऊपर संख्या पहुँच गई है।

वर्तमान समय में भी प्राचीन अलंकारों के परिष्कार के साथ ही साथ नवीन आभूषणों का आविष्कार भी हो सकता है; किंतु आविष्करण तो कला-कुशल आचार्यों का कार्य है। हमने तो आज तक के बने हुए समस्त आभूषणों को एकत्र करके केवल जाँचा है। अपूर्ण एवं टूटे-फूटे गहनों को गलाकर ग्राह्य अलंकारों का संस्कार किया है। उन्हें सर्वांग-सुंदर बनाया है, माँजकर चमकाया है और आवश्यकतानुसार उनमें नये-नये रत्न भी अपनी ओर से जड़े हैं। हमने माता भारती को उन्हीं प्राचीन रोचक एवं मनोहर भूषणों से अपनी शक्ति भर सुसज्जित एवं प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है। हमने (कल्पना से प्रेरित होने पर भी) नये ढंग के भूषणों के निर्माण का साहस इसलिये नहीं किया कि कदाचित् भगवती भारती को नये फैशन के अलंकार अरुचिकर हों। यदि भारती के भक्त उसे नवीन अलंकारों से अलंकृत करना चाहें तो वे प्रसन्नता पूर्वक ऐसा कर सकते हैं परंतु वे नये अलंकार ऐसे होने चाहिएँ जो सर्व प्रिय

हों। तभी उनका प्रचलन हो सकता है।* हम द्विवेदीजी महोदय का प्रश्न विद्वद्वरों के समक्ष ज्यों का त्यों इस आशा से उपस्थित करते हैं कि वे लोग इसपर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करेंगे।

आवश्यक सूचनाएँ

प्रस्तुत पुस्तक के विषय में हम अपने प्रिय पाठकों निम्नांकित बातों की सूचना दे देना आवश्यक समझते हैं—

(१) उदाहरणों में अन्य कवियों के सभी पद्य, एक आध को छोड़कर, पूरे-पूरे दिए गए हैं, और एक पद्य एक ही स्थल पर दिया गया है। स्वयं हमारे पद्य प्रायः पूरे लिखे गए हैं, किंतु जो थोड़े से पद्य दो अलंकारों में दिए गए हैं, वे एक

---

* कुछ धुरधर आचार्यों के बनाए हुए भी नये-नये अलंकार प्रचलित नहीं हो सके। यथा—

(१) रुद्रट का उभयन्यास, पूर्व और मत।

(२) भोज का अहेतु, भाव और वितर्क।

(३) दंडी का आशी।

(४) भानुदत्त के अनध्यवसाय और भंगि।

(५) शोभाकर के अचिन्त्य, अतिशय, अनादर, अनुकृति, अशक्य, असम्भव, आदर, आपत्ति, उद्भेद, उद्रेक, क्रियातिपत्ति, गूढ़, तंत्र, तुल्य, विनिमय, प्रतिप्रसव, प्रतिभा, प्रतिमा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसंग, वर्धमानक, विनोद, विरोध, संसर्ग, व्यत्यास, व्याप्ति, व्यासंग और समता।

(६) विश्वनाथ का अनुकूल।

(७) यशस्क के अंग, अनंग, अप्रत्यनीक, अभीष्ट, [illegible] [illegible], आवर्त, प्रतिनव और सत्कार।

(८) [illegible] के अनुगामिता, अनवसर और अपरिहार।

(१०) हिंदी-गद्य-लेखन की कोई निश्चित प्रणाली नहीं है। प्राय: उसमें मनमानी ही देखने में आती है। शब्दों, प्रत्ययों एवं क्रियाओं को कोई किसी रूप में लिखता है और कोई किसी रूप में। जैसे—अलंकार, अलङ्कार; लिये (वास्ते के अर्थ में), लिए; गई, गयी; दिए, दिये, आदि। हमने इस विषय में 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' की नीति को समीचीन जानकर समस्त ग्रंथ में उसी का अनुसरण किया है। मुख्य-मुख्य नियमों का ब्यौरा यहाँ दिया जाता है—

शब्दों को पंचम वर्ण से न लिखकर अनुस्वार से लिखा है। यथा—शंकर, पंचम, तांडव, आनंद, जगदंबा। वास्ते के अर्थ में आनेवाले 'लिये' को हमने 'लिये' ही लिखा है 'लिए' नहीं लिखा है। क्रियाओं के अंत में 'ई' और 'ए' रूप ग्रहण किए हैं। यथा—आई, किए। विभक्तियों को शब्दों से अलग रखा है। जैसे—गंगा को, किंतु सर्वनाम के साथ विभक्तियाँ मिलाकर लिखी गई हैं। जैसे—उसको, सबको इत्यादि।

उपसंहार

कुछ ग्रंथों में अलंकार-दोषों का निरूपण भी पाया जाता है, पर उन्हें विशेष प्रयोजनीय न समझकर हमने उनको लिखकर विस्तार नहीं किया।

कई प्राचीन ग्रंथों में 'रसवत्' आदि सात या आठ अलंकार और भी माने गए हैं, परंतु उनका संबंध रसों और भावों से है। जबतक रसों और भावों का निरूपण न किया जाय, तब तक उनका यथार्थ स्वरूप समझाना कठिन ही नहीं, असंभव है। हमने इस ग्रंथ में रस-भावों का वर्णन नहीं किया है, अत: उनकी विवेचना भी नहीं की गई है।

"दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वं यतो दोषान् विवृणुध्वं यतो गुणान् ॥"

अतः आशा है कि विद्वद्वृंद एवं प्रवीण पाठक-गण भूलों के लिये केवल क्षमा ही नहीं करेंगे, अपितु हमें सूचना देकर भविष्य में इस पुस्तक के सुधार करने में होते हुए अनुगृहीत भी करेंगे।

अंत में हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि विद्वद्वरों के समक्ष चाहे कैसा ही क्यों न सिद्ध हो; किंतु धार का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिये तो न कुछ उपयोगी होगा। यदि ईश्वर की कृपा से धारणा सत्य हुई तो हम इतने से ही अपने परिश्रम को और अपने-आपको कृतकृत्य समझेंगे।

विनम्र निवेदक—
अर्जुनदास केडिया
रतननगर (बीकानेर)
संप्रति काशीस्थ।

सुकुमारी सुंदरी कृसोदरी सिवा[1] पै सृज्यौ ,
थूल बिकराल लंबउदर कुमार है।
पूजि पाद, पूजा-पद-आदि दै अजादि[2] कह्यौ ,
"जय हो गनेस जै गनेस" बार-बार है॥ *

दोहा ।

गिरा कला-सकलार्थमय करि[3] मोहि करिय कृतार्थ।
प्रनवौं करिय परार्थ[4], निज गिरा[5] नाम चरितार्थ॥

श्रीशिव-स्तुति ।

कवित्त ।

मख[6]-हन, मरदन-मयन[7], नयन त्रय ,
बट-तर[8] अयन[9] रजत-परवत[9]-पर।
चरम-बसन, तन भसम, प्रमथ गन ,
ससधर[10]-धरन, गरल-गर-गरधर[11]॥
हरन-ब्यसन[12]-जग, करन-अमल-मन ,
भज मन! असरन सरन अमर-वर।
चढ़त बरद[13], बर बरद[14] प्रनत-रत ,
हरन जगत-भय, जय जय जय हर॥

१ पार्वती। २ ब्रह्मादिक देवताओं ने पाद पूजा करके आदि-पूजा का अधिकार दिया। ३ मेरी गिरा (वाणी) को सकल (चौंसठ) कलाओं से युक्त करके। ४ परोपकार। ५ सरस्वती। ६ यज्ञ। ७ काम। ८ घर। ९ कैलास। १० चन्द्रमा। ११ गले में विष और गर-धर (विष-धर साँप) है। १२ दुःख। १३ बैल। १४ वर देनेवाले।

* यहाँ आशीर्वादात्मक मंगल है।

श्रीगंगा-स्तुति।

सवैया।

कारन आदि तिहारो कर्यो कमलासनजू को कमंडलु कारो।
दूजो भयो घन स्याम[1] जबै पदमापति[2] को पद पूत पखारो[3]॥
त्यों ही तृतीय भयो है त्रिलोचन-जूट-जटान को घोर अँधारो।
तीनहुँ[4] अंब! अचंभित हैं लखि, कंबु-कदंबक-अंबु[5] तिहारो॥

श्रीसाहित्य-स्तुति।

छप्पय।

प्रतिभा उभय प्रकार अवनि आधार वारि वर।
प्रतिपादक-रमनीय-अर्थ-पद मूल मनोहर॥
गुन-गुंफित त्रय वृत्ति साख सब रसिक-रिझावन।
वृत्त-व्रात बहु पात, सुलच्छन सुमन सुहावन॥
फल सरस-भाव-ध्वनि चित्र पुनि माली मुनि-कवि-आदि वर।
भरतादि व्यास तुलसी. जयतु सुख-सरसद साहित्य-तरु॥*

---

१ अत्यंत श्याम। २ विष्णु। ३ प्रक्षालन किया। ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और त्रिलोक। ५ शंख-समूह के समान जल।

* सहजा (ईश्वर दत्त या पूर्व संस्कार-जन्य स्वयमेव प्राप्त साहित्य बीज रूप संस्कार) एवं उत्पाद्या (निपुणता और अभ्यास द्वारा उपार्जित) ये दो प्रकार की प्रतिभाएँ (शक्ति) ही आधार रूप पृथ्वी एवं उत्तम जल हैं। "रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द" (रमणीय अर्थ देनेवाला शब्द) मनोहर मूल है। माधुर्यादि गुणों से ग्रथित उपनागरिकादि तीनों वृत्तियाँ सब साहित्य-रसिकों को प्रसन्न करनेवाली शाखाएँ हैं। नाना प्रकार के छंदों के समूह अनेक पत्र हैं। शुभ लक्षण मनोहर पुष्प हैं। स्थायी आदि चारों भावों सहित, शृंगारादि नवों रसों से युक्त ध्वनि (व्यंग्य) एवं

१ छेकानुप्रास

जिसमें एक अक्षर वा अनेक अक्षरों की, स्वर-संयुक्त वा अक्षर मात्र की समता (दो वार कथन) हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

मैं हौं एक मात्र सो अनेक होहुँ इच्छा भई,
चित्त मे स्वतै ही स्वतःसिद्ध[1] सुखकंद के।
ताही छिन ताके संकलप ही तें विस्व-बीज[2],
प्रगट्यौ विरंचि, बीच नाभि-अरविंद के॥
ताके भए मन तें मरीचि अत्रि आदि पुत्र,
अत्रि के भयो है चंद औसर अनंद के॥
तासु वंस माँहि भो ययाति भयौ ताके यदु,
पुरुषा ये कान्हर कटैया दुख द्वंद के॥

यहाँ 'एक नेक' में 'ए' स्वर युक्त 'क' का, 'चंद नंद' में अनुस्वार युक्त 'द' का तथा 'विस्व-बीज', 'विरंचि बीच', 'मन मरीचि', 'अत्रि आदि', 'औसर अनंद', 'कान्हर कटैया' एवं 'दुख द्वंद' में क्रमशः व, व, म, अ, अ, क, द, वर्णों का सादृश्य (दो दो वार कथन) है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कवि केसव-आसय गहन, गूढ अमल अकलंक।
मैं मतिरंक कह्यो चहौं, ज्यौं सिसु चहै मयक॥

यहाँ भी 'कवि केसव' मे 'क' की, 'गहन गूढ' में 'ग' की, 'अमल अकलंक' में 'अ' की और 'मैं मतिरंक' में 'म' की आवृत्ति हुई है।

---

१ परमात्मा। २ कारण।

(अ) कवर्ग से पवर्ग पर्यंत २५ वर्ण 'स्पर्श' कहे जाते हैं। इनमेंसे 'ट ठ ड ढ' को छोड़कर शेष (क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ण, त थ द ध न, प फ ब भ म) २१ अक्षर इस वृत्ति के हैं।

(आ) उक्त पाँचों वर्गों के अंतिम अक्षर (ङ ञ ण न म) सानुनासिक कहलाते हैं। इन्हींसे अनुस्वार होते हैं, इन अनुस्वारों-सहित शब्द हों। यथा—गंगा, कंद, संत, शंभु इत्यादि।

(इ) णकार एवं रकार ह्रस्व हों।

(ई) समास न हों, यदि हों तो छोटे (शब्दों के) हों।

---

१ अ, आ, इ, ई आदि स्वर-अक्षर सभी वृत्तियों में आ सकते हैं, [illegible]

यह वृत्ति शृंगार, करुणा एवं हास्य रस में उपयोगी होती है। इसके दो भेद हैं—

[१] एक अक्षर-समता

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पंचम[1]-पूरित जो करै, पिय-पुर पहुँचि पुकार।
तो पावै प्रिय पथिक पिक! तुहुँ परभृत[2] उपकार॥

यहाँ माधुर्य गुण-व्यंजक[3] एक पकार की कई बार आवृत्ति है, रकार लघु हैं और टवर्ग का अभाव है।

२ पुनः यथा—सवैया।

अकलंक मयंक सो आनन को रचि श्रीहरि-ही रिझिए ही गयौ।
सुखमा की सभा दरबार-सिंगार को सार निकार लिए ही गयो॥
गुन-आगर रूप-उजागरता नय नागरताई दिए ही गयौ।
लिखतो पति-प्यार अपार लिलार बड़ो करतार किए ही गयौ॥

यहाँ भी टवर्ग-रहित प्राय. मधुराक्षरों की रचना है और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में 'आ' स्वर-सहित रकार का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

३ पुन यथा—कवित्त।

कंकन करन कल किंकिनी कलित कटि,
कंचन कँगूर कुच केस-कारी-यामिनी।
कानन करनफूल कोमल कपोल कंठ,
कबुक कपोत ग्रीव कोकिला कलामिनी[4]॥

---

१ गान का स्वर विशेष। २ अन्य द्वारा पाला हुआ। ३ बोध करानेवाला। ४ बोलनेवाली।

केसर कुसुंभ कलधौत' की कछू न कांति,
कोविद 'प्रवीन-वेनी' करिवर-गामिनी।
कोक-कारिका' सी किन्नरीक-कन्यका सी कैधौं,
काम की कला सी कमला सी कोई कामिनी॥
—वेनी-प्रवीन वाजपेयी।

यहाँ भी केवल मधुराक्षर ककार की अनेक बार आवृति हुई है और अनुस्वारों की अधिकता है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

बालक बनावै बुध बिमल बिबेकवंत,
बिबिध बजावै बीन बीन-बैनवारी है।
सेवक बनावै, बेद-बानी तें बखानी बानी!
निपुन-निपच्छिन' की बुद्धि लैनवारी है॥
बारी अंगवारी बर बिसद स्ववारी, बेद
बिमल निगाडै वाग्ज्ञान-नैनवारी है।
[illegible] बदनवारी बैठिकै बदन-वारी',
सेवक-बदनवारी बुद्धि दैनवारी है॥
—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी मधुराक्षर बकार की अनेक आवृत्तियाँ हैं और प्रायः इसी वृत्ति के अक्षर हैं।

[२] [illegible]

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

[illegible], अरन्या [illegible]।
[illegible]॥

१ [illegible]। २ [illegible] (पद्म)। ३ [illegible]। ४ [illegible]।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में 'ओ' स्वर-युक्त 'च' 'न' समता है।

(ख) परुषा (गौड़ी) वृत्ति

जिसमें प्रायः ओज गुण-व्यंजक परुषाक्षरों प्रयोग हो, वह 'परुषा वृत्ति' होती है—

(अ) इस वृत्ति के लिये ट, ठ, ड, ढ, श, ष, नियत हैं।

(आ) द्वित्व वर्ण; यथा—स्वच्छ, मत्त, युत्थ, म और संयुक्त वर्ण; यथा—त्वत्त, पुष्ट आदि हों।

(इ) रकार-मिश्रित वर्ण तथा रेफ-युक्त हों; य पत्र, तर्क, दर्प आदि।

(ई) लंबे (अधिक शब्दों के) समास हों।

यह वृत्ति रौद्र, वीर एवं भयानक रस में उपयो होती है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

उत्तटि वृच्छ, फल भच्छि, हनि रच्छक रच्छस लच्छ।
कटकटाय मर्कट मुकुट, झट पटकेउ भट अच्छ॥

यहाँ ओज गुण-बोधक द्वित्व वर्ण एव टकार की भर और रेफ है।

२ पुन यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

वच्छ माल नच्छक विस्माल की। अच्छ वच्छ-दुहिता-कपाल के

१ कठोर अक्षर। २ रावण का पुत्र अक्षयकुमार। ३ रुद्राक्ष की।

के छेक तथा वृत्ति अनुप्रास के लक्षणों और उदाहरणों से भी दोनों का सादृश्य स्पष्ट रूप से मान्य है—

छेकानुप्रास—

"स्वरव्यञ्जनसन्दोहव्यूढाः सन्दोहदोहदाः ।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका च्छेकानुप्रासभासुरा ॥"

वृत्ति अनुप्रास—

"अमन्दानन्दसन्दोहस्वच्छन्दस्यन्दमन्दिरम् ।"

वीररसाचार्य 'भूषण' ने भी सस्वर व्यंजनों की समता कैसी लिखी है—

"स्वर-समेत अक्षर कि पद, आवत सदृस प्रकास ।
भिन्न अभिन्ननि पदनि कहि, छेक लाट अनुप्रास ॥"

इसी प्रकार श्रीउत्तमचद-भंडारी-कृत 'अलंकार-आशय' भाषा-ग्रंथ में भी व्यंजन के साथ स्वर समता का स्पष्ट विधान है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत एवं भाषा के उदाहरणों से भी स्व स्पष्ट सिद्ध होती है—

"अर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेतिगर्जनम् ॥"

—रामरक्षा स्तोत्र।

"चण्डकोदण्डखण्डनम्"

—रामस्तवराज स्तोत्र।

"पिय हिय की सिय जाननिहारी, मनि-मुँदरी मन मुदित उतारी।"

—रामचरित मानस।

जो 'अंत्यानुप्रास' संस्कृत-साहित्य में इस अलंकार का भेद गया है, उसके लक्षण में भी स्वर युक्त व्यंजन के सादृश्य का विधान है

"यथानियमं व्यञ्जनमादिकेन
स्वरेण पादस्य पदस्य वाऽन्ते।
आवर्तते यत्र गिराऽयमन्त्याऽ-
नुप्रास एको भुवनेषु रम्यः॥"

—सरस्वतीकण्ठाभरण।

अर्थात् जिसमें किसी शब्द या चरण के अन्त में वर्ण की समता, उसके आदि-अक्षर की स्वर-समता-सहित हो, उसको 'अंत्यानुप्रास' कहते हैं। केवल वर्ण-समता की तरह वर्ण-समता के बिना स्वर-समता मात्र के प्रसिद्ध कवियों के उदाहरण भी भाषा में पाए जाते हैं—

"विघन-हरन मंगल-करन, 'तुलसी' सीताराम।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि के, वर-दायक हनुमान॥"

—गो० तुलसीदास।

"रूप कौड़ी, मग कुकरौं, अनड़पंख[1] गज पंच।
मोती देत मराल कौं, कृपन हैं भगवन्त॥"

—अज्ञात कवि।

---

(२) लाटानुप्रास

जहाँ वाक्य वा शब्द और अर्थ में भेद न हो और आवृत्ति हो; किंतु केवल अन्वय करने से तात्पर्य में भिन्नता हो जाय; वहाँ 'लाटानुप्रासालंकार' होता है। इसके दो भेद हैं—

१ वाक्यावृत्ति

जिसमें वाक्य (अनेक शब्दों) की आवृत्ति हो।

१ एक बड़ा पक्षी।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुत सपूत तो है वृथा, धन-संचय को खेद।
सुत कपूत तो है वृथा, धन-संचय को खेद॥

यहाँ शब्द एवं अर्थ में भेद नहीं है। केवल पूर्वार्द्ध के (सपूत के) 'स' और उत्तरार्द्ध के (कपूत के) 'क' के साथ अन्वय करने से तात्पर्यों में भिन्नता हुई है और वाक्य आवृत्ति है।

२ पुनः यथा—दोहा।

पूजे पितर भए सबै, सुकृत याग तप त्याग।
पूजे पितर न, गे सबै, सुकृत याग तप त्याग॥

यहाँ भी शब्द एवं अर्थ अभेद है और पूर्वार्द्ध के 'भए' एवं उत्तरार्द्ध के 'न गे' के साथ अन्वय होने के कारण अर्थ में भेद हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा।

स-धरम-अर्जित अर्थ की, रक्षा करिय किमर्थ।
अ-धरम-अर्जित अर्थ की, रक्षा करिय किमर्थ॥

यहाँ भी समस्त पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध का लाट है, जिसमें 'स' और 'अ' के अन्वय मात्र से तात्पर्य-भिन्नता हुई है।

२ शब्दावृत्ति

जिसमें एक शब्द की आवृत्ति हो। इसके दो भेद होते

(क) *जिसमें मुक्त (समास-रहित) शब्द की आवृत्ति हो।*

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लाल विलोचन लाल पल, लालहि जावक भाल।
रस-रंजित चित लाल अब, बने विहारीलाल!॥

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

दुखन दहै न अराति को ?, राति-कोक के भाव।
जिन सुकृतिन के तनक हू, श्रीरघुवीर सहाव।

यहाँ 'रातिको' शब्द का यमक है। 'अराति को ?' 'राति-कोक' के अर्थ तो 'कौन शत्रु ?' और 'रात्रि के होते हैं; किंतु 'रातिको' दोनों जगह निरर्थक है।

२ पुनः यथा—दोहार्द्ध ।

श्रीराधा राधा-रमन, मन-अधार मन धार।

यहाँ भी 'धारमन' शब्द का यमक है। यह शब्द चरणों में निरर्थक रूप में है। यदि पूरे पद 'राधा-' 'अधार मन' यमक के होते तो 'श्रीकृष्ण' एवं 'आधार, अर्थ होता।

३ पुनः यथा—द्रुतविलंबित छंद ।

चतुर है चतुरानन[1] सा वही।
सुभग भाग्य-विभूषित भाल है॥
मन ! जिसे मन में पर काव्य की।
रुचिरता चिरताप-करी न हो॥

—पं० रामचरित उपाध्याय।

यहाँ भी 'चिरता' शब्द का यमक है जो दोनों स्थानों में निरर्थक है। हाँ, 'रुचिरता' का 'मनोहरता' और 'चिरताप' 'बहुत समय तक रहनेवाला ताप' अर्थ होता है।

---

1 ब्रह्मा।

वस्तुतः उनके भिन्न-भिन्न अर्थ हों, वहाँ 'न॰ .
अलंकार होता है। इसको 'पुनरुक्त प्रतीकाश'
कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंबर-बास सने बसन, हरि लै चढ़े कदंब।
करहु सदय उनको हृदय, जगत-जोति जगदंब!॥

यहाँ 'अंबर' 'बास' एवं 'बसन' शब्द
जान पड़ते हैं; किंतु वास्तव में 'अंबर' का सुगंधित ॰॰
'बास' का गंध एवं 'बसन' का वस्त्र अर्थ है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

बाती-बिरति-बिचार, चित-दीपक, घृत भव-भगति।
नसत तिमिर संसार, जगत जोति जब ज्ञान की॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी 'भव' 'संसार' एवं 'जगत' शब्द ॰
जान पड़ते हैं, किंतु वस्तुतः उनका क्रमशः 'शंकर' 'विश्व'
'प्रज्वलित होना' अर्थ है।

३ पुन. यथा—दोहार्द्ध।

राते फूल मँगाइए, लाल! सुमन तें आइ।

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी 'राते फूल' और 'लाल सुमन' पद समानार्थक
प्रतीत होते हैं, किंतु 'लाल सुमन' का अर्थ 'हे कृष्ण! प्र॰
मन से' है।

कहा—"न तो व्रज में देव-नदी (गंगा) है और न ईश ...
को कन्या ही सुनी गई है"। फिर सखी ने कहा—"हे ...
नसी ! (तिल-फूलवत् नासिकावाली !) मान त्याग कर चलि
इसपर श्रीप्रियाजी ने इस पद के भी 'तिल + फूलन ...
टुकड़े करके अपने-आपको चंपक-वर्णी मानते हुए कहा—
गँवारिन तिल-फूलों-सी होगी, वह चलेगी"। इस प्रकार
करके अन्यार्थों की कल्पना की गई है।

२ पुनः यथा—दोहा।

प्यार करै अनप्यार वा, मो मन रहत समान।
देत दुसह दुख पतिहिं यह, सखि ! समानता-बान॥

यहाँ भी नायिका ने सखी से कहा—"श्रीकृष्ण ...
चाहे अप्रसन्न, मेरा मन तो समान (एक रंग) ही रहता है
तब सखी ने 'समान' के 'स + मान' टुकड़े करके कहा—
आपकी मान-युक्त रहने की बान ही उनको अत्यंत दुख
है"; अतः यह सभंग है।

(ख) *अभंग पद अर्थात् जिसमें पूरे पद का अन्यार्थ किया ...*

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंबर-गत बिलसत सघन, स्याम पयोधर दोय।
देहु दिखाइ न राखिए, वलि कंचुकि-बिच गोय॥

यहाँ नायिका का कथन है—"हे स्याम ! अंबर-गत (आका...
दो सघन पयोधर (बादल) शोभित हो रहे हैं"। उक्त श...
टुकड़े न करके श्रवण-कर्ता नायक ने यह अन्यार्थ कल्पित कि
कि इन वस्त्र-गत पयोधरों (कुचों) को छिपा न रखिए।

सूचना—किसी-किसी ग्रंथकारने 'काकु-वक्रोक्ति' को 'अर्थालंकार' माना है; किंतु इसमें कंठ-ध्वनि ही से अलंकारता है और कंठ-ध्वनि (शब्द) श्रवण का विषय है; अतः यह 'शब्दालंकार' ही है।

(६) शब्द-श्लेष

जहाँ ऐसे शब्दों की रचना हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों, वहाँ 'श्लेषालंकार' होता है। इसके दो भेद हैं—

१ सभंग श्लेष

जिसमें शब्दों के खंड (टुकड़े) होने पर कई अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण।

दूरि दुरि जात द्दग देखत सँताप, सिर
धारैं तनु-ताप वृषभानुजा निवारै नित।*

यहाँ 'वृषभानु' शब्द के 'श्रीराधिका के पिता' और 'वृष-संक्रांति के भानु' दो अर्थ होने के कारण यह श्लिष्ट है। वृष एवं भानु खंड पद होने के कारण सभंग है।

२ पुन यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
—रामचरित-मानस।

* पूरा पद्य 'यमक' के प्रथम भेद में देखिए।

यहाँ भी 'बास' शब्द के वासना एवं गंध, 'बरन' के अक्षर एवं रंग, 'वृत्त' के छंद वा वृत्तांत एवं गोलाई और 'रस' शब्द के शृंगारादि नवरस एवं मकरंद, दो दो अर्थ शब्दों के बिना टुकड़े किए ही हुए हैं।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—कवित्त।

तीर तैं अधिक बारि-धार निरधार महा,
    दारुन मकर चैन होत है नदीन कौं।
हो तिहे करक अति बड़ी न सिराति राति,
    तिल-तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं॥
सीकर अधिक चारि ओर अंबु नीर है न,
    पावकीन बिना केहू बनति धनीन कौं।
'सेनापति' बरनी है बरषा सिसिर ऋतु,
    मूढ़न कौं अगम सुगम परवीन कौं॥
—सेनापति।

यहाँ 'नदीन' शब्द के नदियों और न + दीन तथा 'सीकर' के जल-कण और सीत्कार करना, दो दो अर्थ पद भंग करने पर हुए हैं। इसी प्रकार 'तीर' के तट और बाण, 'मकर' के मत्स्य और मकर-संक्रांति तथा 'करक' के कर्क-संक्रांति और खटकना (बेचैनी), दो दो अर्थ पूरे (अभंग) शब्दों के हुए हैं: अतः यह 'उभय पर्यवसायी' है।

सूचना—इस 'शब्द-श्लेष' में शब्द के एक से अधिक अर्थ होते हैं। इन शब्दों को पर्याय शब्द में परिवर्तन कर देने से श्लिष्टता नष्ट हो जाती। यथा—यदि 'वृषभानु' के स्थान पर 'वृष-रवि' कर दिया जाय तो दूसरा अर्थ 'वृषभानु गोप' न रहेगा। यहाँ शब्दों पर ही अलंकार निर्भर होता है अतः 'शब्द श्लेष' है।

दोउन को रूप गुन बरनत फिरै बीर,
धीर न धरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयौ राधा मई,
राधा-मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई॥
—देव।

यहाँ भी 'रीझि' एवं 'रहसि' आदि अनेक शब्दों की आवृत्तियाँ (श्रीराधा-माधव के अनुरागोत्कर्ष-सूचक) हुई हैं; अतः माला है।

(८) चित्र

जहाँ पद्य-रचना में निपुणता से ऐसे अक्षर रखे जायँ जिनसे 'कमल' आदि अनेक चित्र एवं 'अंतर्लापिका' आदि अनेक प्रकारकी मनोरंजक कविताएँ बन जायँ, वहाँ 'चित्रालंकार' होता है। इसके दो भेद यहाँ दिए जाते हैं—

१ चित्र का प्रथम भेद

१ उदाहरण यथा—दोहा।

आन[1] मान बिन-मान[2] जिन ज्ञान मान अनजान[3]।
मीन हीन-बन[4] दीन तन छीन प्रान मन जान॥

इस दोहे के कई प्रकार के चित्र बन सकते हैं किंतु विस्तार-भय से यहाँ तीन ही चित्र दिए जाते हैं—

१ और। २ प्रमाण। ३ मान जा। ४ जल।

२ पुनः यथा—सवैया ।

त्रय भीति[1]-व्यथा भई वेरी अहै जव तू न तजै धन धाम तिया।
अय ! जीति जथा भई चेरी चहै कबहूँ न अजै-रन-नाम[2] लिया।
चय-[3]नीति-कथा कई वेरी रहै सब सूँ न रँजै तन काम जिया।
वय बीति वृथा गई तेरी यहै अब क्यूँ न भजै मन ! राम-सिया।

(घ) सर्वतोभद्रगति चित्र
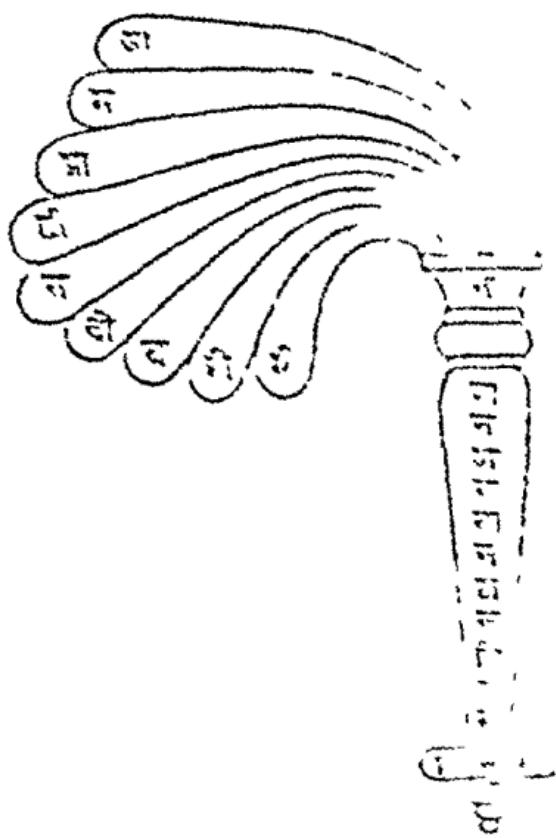
सूचना—यहाँ ऊपर के 'त्रय' से 'सिया' तक पढने से सवैया पूरा होता है। इसी प्रकार जहाँ से चाहें, वहीं से पढें। उसके पिछले कोष्ठ तक तुकांत मिलकर सवैया बन जायगा। सब मिलाकर ४८ सवैया बनते हैं।

१ तीनों ताप। २ रण में अजेय जो रामजी हैं, उनका नाम। ३ समूह।

२ पुनः यथा—दोहा।

अच्छर कौन विकल्प को ?, जुवति वसति किहिँ अंग ?।
चलि राजा कौने छल्यौ ?, सुरपति के परसंग ॥
—केशवदास।

यहाँ भी (१) विकल्प का अच्छर कौन है ?, (२) स्त्री केस अंग में वास करती है ? और (३) वलि राजा को किसने छला ? ये तीन प्रश्न हैं, जिनके उत्तर क्रमशः 'वा', 'वाम' और 'वामन' हैं जो 'वामन' शब्द द्वारा बाहर से आते हैं।

(घ) दृष्टिकूटक

जिसमें शब्द ऐसे ढंग से रखे जायँ कि देखने मात्र से अर्थ समझ में न आवे।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

क्वारी कन्या सुत जन्यौ, पोष कियौ बलवान।
जिन कीन्हौ दिन हास तिहिँ, ताहि ग्रस्यौ वृषभान ॥

यहाँ वास्तविक अर्थ यह है—"आश्विन की कन्या-संक्रांति ने शीत-पुत्र उत्पन्न किया और पौष मास ने उसको बलवान किया (यथा—'कन्याया जायते शीतो हेमन्ते च विवर्धति')।" किंतु "अविवाहिता बालिका ने पुत्र उत्पन्न एव पालन किया" यह मिथ्यार्थ भान होता है।

२ पुन यथा—दोहा।

आदि अंत 'मधुरा' बरन, जपे विलोम न जोय।
मध्यम अच्छर तासु मुख-मध्य करौ सब [illegible]

यहाँ भी राम-नाम का जप न करनेवाले मनुष्य के 'थू' करना बतलाया है; किंतु यह कठिनता से जाना जाता है।

(ड) एकाक्षर

जिसमें समग्र पद्य का एक ही अक्षर के निर्माण किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लोल लाल-लै लौं लली, लोल लली लौं लाल।
लोल लला लै लालली! लोल लली लो लाल!॥*

यहाँ एक 'ल' अक्षर से ही समग्र दोहे का हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

नोने-नैनी-नैन ने, नौ नै नुनी न नून।
नानानन ने ना नने, नाना नैना नून॥†

—रूपिराज (चित्र-चंद्रि

यहाँ भी केवल 'न' अक्षर से समग्र पद्य का निर्माण हु

* सखी-वचन सखी से—श्रीकृष्ण की (वेणु वाद्य-) लय के श्रीप्रियाजी चचल (आतुर) हो रही थीं, और राधिकाजी के श्रीकृष्ण अधीर हो रहे थे। (तब उनको अंतरंग सखी ने उन्हें लि कहा) हे लाडलीजी! चचल श्रीकृष्ण को लीजिए, एवं हे श्रीकृ चचल प्रियाजी को लीजिए।

† सखी का वचन, नायक के प्रति—मनोहर नेत्रवाली नायि नेत्रों ने नवीन नीति (कटाक्ष-संचार) कम नहीं चुनी है। ब्रह्मा ने (क ऐसे निर्माण नहीं किए, और जो अनेक नेत्र बनाए, वे इनसे न्यून

(च) निरोष्ठ

जिसमें पवर्ग (प फ ब भ म) और 'उ' स्वर के बिना छंद का निर्माण हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चंचल खंजन कमल से, दीह[1] जलज-दल ऐन।
अनियारे[2] असरीर के, तीर तिहारे नैन॥

२ पुन: यथा—कवित्त।

कौन है सिंगार रस जल ए सघन घन,
घन कैसे आनँद की झर ते सँचारते।
'दास' तरि देत जिन्हें सारस के रस-रसे,
अलिन के गन सन-सन तन झारते॥
राधादिक नारिन के हिय की हकीकति,
लखे नें अचरज-रीति इनकी निहारते।
कारे कान्ह! कारे-कारे तारे ए तिहारे जित,
जाते तित राते-राते रंग करि डारते॥

—भिखारीदास।

यहाँ दोनो पद्य पवर्ग और उकार के बिना निर्मित हुए हैं; अत: इनके उच्चारण में ओठों का स्पर्श नहीं होता।

सूचना—( ) [illegible] 'उकार' को [illegible] ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

---

१ दीर्घ। २ ताके। ३ जैसे। ४ [illegible]। ५ [illegible]। ६ अनुरागमय।

बिंब से अरुन ओठ, रद-छद सोहत है,
पेखि प्रेम पासि पस्यौ चित्त ब्रज-नारी को।
चंद सो प्रकास-कारी, कंज सो सुवास-धारी,
सब-दुख-त्रास-हारी आनन बिहारी को॥
—अलंकार आशय।

यहाँ भी 'भाल' उपमेय 'आठैं का सुधाधर' उपमान' धर्म और 'सो' वाचक आदि ६ पूर्णोपमाएँ तीन चरणों में गई हैं; अतः माला है; और चतुर्थ-चरण में वक्ष्यमाण' 'मालोपमा' है।

२ लुप्तोपमा

जिसमें उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक-शब्द इन चारों में से एक, दो वा तीन का हो[2]। इसके आठ भेद होते हैं—

[एक के लोप के तीन भेद]

(क) धर्मलुप्ता

जिसमें उपमेय, उपमान एवं वाचक-शब्द तीनों हों, केवल साधारण धर्म का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध।

श्रुति-सार-द[3] दुति जान जस, सारद-सोम समान।*

१ जो आगे कहा जाय। २ किंतु ये लुप्त अंग कथित शब्दों से लक्षित हो जाते हैं। ३ वेदों का सार देनेवाली।

* पूरा पद्य 'यमक' के प्रथम भेद में देखिए।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

चंद्रिका में मुकुट मुकुट में सु चंद्रिका है,
　　चंद्रिका मुकुट मिलि चंद्रिका अजोर की।
नगन में अंग-अंग नग-नग अंगन में,
　　कवि 'पजनेस' लखै नजर करोर की।
तनु विज्जु-दाम-मध्य विज्जु तनु-मध्य, तनु
　　विज्जु-दाम मिलि देह-दुति दुहुँ ओर की।
तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी,
　　झाँकी हम झाँकी बाँकी जुगलकिसोर की॥

—पजनेस।

यहाँ भी 'जुगलकिसोर की झाँकी' उपमेय, 'बाँकी' धर्म 'ऐसी' वाचक-शब्द है; पर 'दूसरी न झाँकी' वाक्य से का लोप हुआ है।

उपमानलुप्ता-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

'बानधारी पार्थ[1] सो न, मान कुरुराज[2] कैसो,
　　गान तानसेन सो न, दान ना अनाज सो।
जल-जन्हुजा सो नाहिं, थल-कासिका सो कहूँ,
　　जीवन सो चल ना, सबल ना समाज सो॥
स्वाद यूप-खीर सो न, भूप रघुबीर जैसो,
　　जेठ कैसो धूप नाहिं, रूप नाहिं लाज सो।
ब्रज कैसो धूर ना, सहूर राजपूतन सो,
　　क्रूर कटुवादी सो न सूर सिवराज सो॥

१ अर्जुन। २ दुर्योधन।

यहाँ 'अर्जुन' उपमेय, 'बानधारी' धर्म और 'सो' वाचक-शब्द आया है, पर द्रोणाचार्यादि उपमानों का लोप है। इसी प्रकार १६ उपमानलुप्ताएँ हैं, अतः माला है।

[दो के लोप के चार भेद]

(प) धर्मवाचकलुप्ता

जिसमें उपमेय और उपमान तो हों; पर धर्म एवं वाचक-शब्द का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

पाहन-करेजो तिमि हाथ क्यों न होत नाथ!
काटत अनाथ माथ वचन-विहीनों[1] के।
न्यायन ज्यों दुनिक सवाद लौं विनाऽपराध,
मुरगे मयूर अज मेष मृग मीनों के॥
गरल-गिरीस-नाथ जाने विन वन्हि-खात[2]
देत उदाहरन तपस्वी तनु खीनों के।
पिंड[3]-वलिदान-ओट[4] कोटिन करें ये पाप,
मोट यह माथे बँधे मानस-मलीनों के[5]॥

यहाँ 'कलेजा' उपमेय एवं 'पाहन' उपमान तो है; पर 'कठिन' धर्म तथा 'सा' वाचक का लोप है।

---

१ अनबोल। २ श्रीमद्भागवत में रासक्रीडा के पश्चात शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित की शंका का समाधान इस प्रकार किया था—"शंकर का विष-पान करना और अग्नि की सव-भक्षणता देखकर किसी व्यक्ति को ऐसे कर्म न करने चाहिएँ।" ३ श्राद्ध पिंड। ४ बहाना। ५ मलिन अंतःकरणवालों के।

यहाँ भी केवल 'कैलास' उपमेय तो है; पर 'रजतसमूह' उपमान, 'धवल' धर्म एवं 'सम' वाचक-शब्द का लोप है; और 'अकथनीय' एवं 'अनुपम' शब्दों से 'लुप्तोपमा' लक्षित होती है।

सूचना—यहाँ आठ प्रकार की 'लुप्तोपमाएँ' लिखी गई हैं। यद्यपि कई ग्रंथों में इससे अधिक देखी जाती हैं, तथापि हमने निम्नोक्त लुप्ताएँ नहीं मानी हैं—

(क) 'उपमेयलुप्ता' में उपमान, धर्म एवं वाचक होता है, प्रधान अंग उपमेय नहीं होता।

(ख) 'धर्मोपमेयलुप्ता' में केवल उपमान एवं वाचक होता है।

(ग) 'उपमेयोपमानलुप्ता' में केवल धर्म एवं वाचक होता है।

(घ) 'धर्मोपमानोपमेयलुप्ता' में वाचक मात्र होता है।

(ङ) 'वाचकोपमेयोपमानलुप्ता' में धर्म मात्र होता है।

अतः इन पाँचों में चमत्कार का अभाव है।

(च) 'वाचकधर्मोपमेय' का लोप होने के कारण केवल उपमान के वर्णन से वक्ष्यमाण 'रूपकातिशयोक्ति' नामक एक अन्य अलंकार होता है; अतः इसकी भी लुप्तोपमाओं में गणना नहीं की गई है।

विशेष सूचना—'उपमालंकार' के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त निम्नोक्त चार भेद और लिखे जाते हैं—

३ मालोपमा*

जिसमें एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ। इसके दो भेद होते हैं—

(क) भिन्नधर्मा

जिसमें जितने उपमान हों, उन सबके भिन्न-भिन्न धर्म बतलाए जायँ।

---

* उपमाओं की माला।

कीन्ह कटि सार खीन सुमन-सिरीष-तार,
भार महि आपु आस पूरी पिय-जी की है।
लोनी ललना की लुरै लट सी निपट नीकी,
नाक-नटनी[1] की हू न ऐसी कटि नीकी है॥

यहाँ नायिका की कटि उपमेय के 'फूली तूल', 'फेन' एवं इन तीन उपमानों का 'हरवी' (हलकी) एक ही धर्म कहा।

२ पुनः यथा—कवित्त।

राम-नर-नाहर के तरल तुरंग ताते,
जगत जवाहिर तें जीन जरतारी से।
आछे आव-जाव में सो तिरछे तराछे साचे,
कुलटा-कटाछै ताछै नाचै नग्र-नारी[2] से॥
'सूरजमल' फुरती कहाँ लौ बखानी जाइ,
मुग्ध मन होत तहाँ बड़े बुद्धि-धारी से।
चकरी से चक्र से अलात-चक्र[3] चपला से,
चीता से चिराग से चिनाक चिनगारी से॥
—बारहठ महाकवि सूर्यमल।

यहाँ भी बूँदी-नरेश रामसिंह के 'तुरंग-समूह' उपमेय के आदि उपमानों का 'फुरती' (चपलता) एक ही धर्म कहा गया।

३ पुनः यथा—कवित्त।

कीरति तिहारी राम! कहा कहै 'हनूमान',
दसों दिसि दिव्य दीह दीपति अकेली सी।
भोडर सी भूषन सी भानु सी भगीरथी सी,
भारती सी भव सी भवा[4] सी भुज वेली सी॥

---

१ अप्सरा। २ वेश्या। ३ किसी लकड़ी आदि के अग्रभाग प्रज्वलित करके घुमाना। ४ पार्वती।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥

—[illegible]

यहाँ भी महाराज श्रीरामचंद्रजी की कीर्ति उपमेय के, [illegible] आदि अनेक उपमानों में दीप्ति (प्रकाश) एक ही धर्म कहा गया है।

४ लक्ष्योपमा

जिसमें उपमेय और उपमान के समता-सूचक (वाचक)-शब्द सम, समान, इव आदि के स्थान पर बंधु, चोर, वादी, सुहृद, कल्पवृक्ष, प्रभु, रिपु, सोदर, वहसत, निदरत, हँसत, होड करत, आदि शब्दों का प्रयोग हो। इसे 'संकीर्णोपमा' तथा 'ललितोपमा' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

उन आँगुरियों अलि ! गय गुराई गुलाबन की छवि छीन लई।
जब काम अकाय[2] भयो तब ही नव सायक जापि दिए कि दई ! ॥
नख गोरी से गाते जराव जगे मुंदरीन की आप अनूप ठई।
मनु देखन कों पिय के तिय के हिय तें अँखियाँ निकसी ये नई ॥

यहाँ कहा गया है—' नायिका की करांगुली उपमेय ने गुलाब

१ शुक तारा। २ अशरीर।

उपमान की गंध एवं गोरापन छीन लिया।" इसमें 'छीन' वाचक-शब्द द्वारा 'लक्ष्योपमा' हुई है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

गावन-मलार मिलि प्यारी-मनभावन को,
सावन के आवन को आदर दरीची मैं।
वरषा-वहार धार-मूसल निहारि करैं
वैठे वारिनिधि¹ को अनादर दरीची मैं।
आरसी²-ललाम³-फूल-दाम⁴-मखतूल⁵-स्याम⁶-
झूलन झुलावै स्यामा सादर दरीची मैं।
हिलत हिंडोरे गोरे गात झलकत मानो,
थिरकि रही है विज्जु वादर-दरीची मैं॥

यहाँ भी 'वरषा-वहार धार' उपमेय के 'वारिनिधि' का वाचक-शब्द 'अनादर' आया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

अलि-पुंजन की उत पाँति लगी इत हैं अलकैं छवि वंक धरे।
मकरंद झरैं अरविंद उतै इत नैनन सौं जल-विंदु ढरे।
उत लाल प्रसून पलासन मैं इत है अधराधर लाल परे।
कवि 'आर्य' अहो! अवलोकिए तो विरहीनि वसंत सौं वाद करै।

—पं० गोवर्द्धनचंद्र ओझा

यहाँ भी 'वियोगिनी नायिका' उपमेय का 'वसंत' उपमान 'वाद करै' समता-सूचक-शब्द द्वारा वतलाया गया है।

१ समुद्र। २ दर्पण। ३ सुंदर। ४ फूल-माला। ५ मखमल। ६ काले की तथा श्रीकृष्ण।

लुप्तोपमा माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

करि की चुराई चाल, सिंह को चुराई लंक,
ससि को चुरायो मुख, नासा चोरी कीर की ।
पिक के चुराए बैन, मृग के चुराए नैन,
दसन अनार, हाँसी बीजुरी गँभीर की ॥
कहै कवि 'बेनी' बेनी ब्याल की चुराइ लीन्ही,
रती-रती सोभा सब रति के सरीर की ।
अब तो कन्हैयाजू को चित हू चुराइ लीन्हो,
चोरटी है गोरटी या छोरटी अहीर की ॥
—बेनी-प्रवीन (बन्दी के) ।

यहाँ 'नायिका की चाल' उपमेय के 'करि की चाल' उपमान । वाचक शब्द 'चुराई' रक्खा गया है । इसी प्रकार के और भी नेक वर्णन होने के कारण माला है ।

५ रसनोपमा ❀

जिसमें कहे हुए उपमेय क्रमशः उत्तरोत्तर उपमान ते जायँ और इसी प्रकार उपमेयों तथा उपमानों की ृंखला[1] बन गई हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुरधुनि-सुभ्र-सरीर इव, आसय अमित उदार ।
आसय सरिस अमोघता, अघ-ओघन-परिहार ॥

१ साँकल (जंजीर) ।

❀ यह अलंकार 'उपमा' के और 'एकावली' के गृहीत गुम्फ-रीति के योग से होता है ।

२ पुनः यथा—दोहा।

श्रीरघुवर को वीर-रस, आतप दिन समान।
प्रबल पराक्रम आगमन, पंचानन पवमान॥

यहाँ भी 'श्रीरघुनाथजी' उपमेय के लिये 'दिन' उपमान के वीर-रस, आतप, पराक्रम एवं शत्रु पर आक्रमण करना इन चार धर्मों से उपमा दी गई है।

३ पुनः यथा—श्लोक।

विद्युत्सम्पातनिनदं विद्युत्सम्पातपिङ्गलम्।
विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्ष्यं विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥
—महाभारत (वनपर्व)।

यहाँ भी द्रौपदी के आग्रह से एक अद्भुत पुष्प के लिये जाते हुए भीमसेन को मार्ग में दर्शन देने के समय श्रीहनुमानजी के लिये उनके वीर रूप के उपमान 'विद्युत्संपात' (बिजली-गिरने) के भयानक शब्द, धूसर (वानर का रंग), आँखों में चकाचौंध हो जाने से कष्ट से देख पड़ना एवं चंचलता इन चार धर्मों से उपमा दी गई है।

सूचना—यह 'उपमा' अलंकार अनेक अलंकारों का उत्पादक या कारण है। यथा—(१) "मुख सा मुख ही है"—अनन्वय। (२) "चंद्र सा मुख है, मुख सा चंद्र है"—उपमेयोपमा। (३) "मुख सा चंद्र है"—प्रतीप। (४) "मुख ही चंद्र है"—रूपक। (५) "चंद्र समझकर चकोर मुख की ओर अनिमेष नेत्रों से देख रहा है"—भ्रान्ति। (६) "यह मुख है या चंद्र"—संदेह। (७) "मुख नहीं चंद्र है"—अपह्नुति। (८) "मुख मानो चंद्र है"—उत्प्रेक्षा। (९) "मुख सुषमा से एवं चंद्र प्रकाश से शोभित है"—दीपक। (१०) "मुख सुषमा से शोभित एवं चंद्रमा चंद्रिका

से विलम्बित है"—प्रतिवस्तूपमा। (११) "मुख अपनी सुषमा से ... प्रसन्न करता है, चंद्रमा अपनी चंद्रिका से संसार को शीतल करता ...—दृष्टांत। (१२) "मुख की सुखमा चंद्र में है" अथवा "चंद्र का ... मुख में है"—निदर्शना। (१३) "चंद्र कलंकित है, अतः मुख की ... नहीं कर सकता"—व्यतिरेक। इत्यादि। और रमणीयार्थता भी ... सबसे अधिक है; अतः इसको बहुत से अर्थालंकारों का प्राण ... प्रधान मानकर संपूर्ण ग्रंथकारों ने सबसे प्रथम स्थान दिया है।

इसके पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा आदि जितने भेद यहां ... गए हैं, इनके अतिरिक्त श्रौती (शाब्दी), आर्थी, समस्त-वस्तु-... सावयव, निरवयव, एकदेशविवर्ति, परंपरित, भूषणोपमा, ... विपरीतोपमा, असंभावितोपमा, संशयोपमा, हेतूपमा, अभूतोपमा, ... पमा आदि २२४ तक भेद होने का लेख देखने में आया है। ... अधिक भेद 'अलंकार-आशय' एवं 'कविप्रिया' में पाए जाते हैं।

(२) अनन्वय

जहाँ उपमेय ही को उपमान बतलाया जाय, ... 'अनन्वय' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

काम, काम-तरु, ससि, ऋषभ, राम रहे मन मान।
रुचिर वरद रत[1] विरत[2] बलि[3], हर से हर हि न आन॥

यहाँ 'हर' उपमेय के 'हर' ही उपमान कहे गए हैं।

[1] अनुरागी। [2] वीतराग। [3] बलवान।

'उपमेयोपमा' अलंकार होता है। इसको ... भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

संकर छबीले राम ही से रमनीय रूप,
संकर से राम कमनीय छवि-धाम हैं।
राम अनुहार एक औढर-उदार[1] ईस,
ईस से उदार राम पूरैं सब काम हैं॥
राम-नाम हेतु-उपराम[2] सिव-नाम ही सो,
राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है।
पोषक प्रजा के प्रान सोषक सुरारिन के,
राम के समान संभु संभु सम राम हैं॥

यहाँ 'शंकर' उपमेय के 'राम' उपमान एवं 'राम' - 'शंकर' उपमान कहे गए हैं।

२ पुनः यथा—सवैया।

वारन ते बकसै जिनकी समता न लहै बढ़ि विंध्य समूँ
कित्ति-सुधा[3] दिग-भित्ति पखारत चंद-मरीचिन को करि कूँ
राव सता[4]-सुत कों 'मतिराम' महीपति क्यौंकरि और पहूँ
भूपर भाउ भुवप्पति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।
—मति

यहाँ भी राजा भाऊसिंह की उदारता के वर्णन में उनके मन के समान हाथ और हाथ के समान मन ऊँचा कहा गया है।

१ अत्यंत उदार। २ शांति। ३ कीर्ति रूप अमृत, चंद्रमा की कि... का कूँचा (एक औजार, सफेदी लगाने की कूँची) बनाकर दिशाओं की भित्तियों को धोना है। ४ शत्रुशाल।

उपमेयोपमा-माला है, उदाहरण यथा—कवित्त।

नयनन खंजन है, खंजन से नैन प्यारी!
नैनन से खंजन है, खंजन से नैनन हैं।
मीनन से आछे मन-मोहन हैं मोहिबे को,
मीन इन्हीं के नीके मोहन मदन हैं॥
मृगन के लोचन से लोचन हैं मोचन के,
मृग-दृग इन्हीं से सोहें परतापन हैं।
'सूरति' निहारि देखी, नीके परी प्यारीजू पै,
कमल से नैन अरु नैन से कमल हैं॥
—सूरति मिश्र।

यहाँ खंजन से नेत्र एवं नेत्र से खंजन, मीन से नेत्र एवं नेत्र से मीन, मृग-नेत्रों से नेत्र एवं नेत्रों से मृग-नेत्र तथा कमल से नेत्र एवं नेत्र से कमल, ये चार 'परस्परोपमाएँ' आई हैं; अतः यह माला है।

---

(९) प्रतीप [८]

जहाँ उपमान को उपमेय कल्पित किया जाय अथवा आदरणीय उपमान का उपमेय द्वारा तिरस्कार किया जाय, वहाँ 'प्रतीप' अलंकार होता है। इसके पाँच भेद हैं—

---

१ चमत्कार।

८ 'प्रतीप' शब्द विलोमवाची है। इसे महाकवि दंडी ने 'विपरीतोपमा' माना है।

१ प्रथम प्रतीप

जिसमें प्रसिद्ध उपमान (चंद्र कमलादि) को उपमेय माना जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सोहत श्रीमति-कुचन से, सातकुंभ[1] के कुंभ।
अरु इन सम उन्नत अहैं, मत्त करिन के कुंभ॥

यहाँ कुचों के प्रसिद्ध उपमान शातकुंभ (सुवर्ण) के (कलसों) को एवं हाथी के कुंभों को उपमेय माना गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

मोहि देत आनंद हो, वा मुख सो यह चंद।
लीनौ आइ छिपाइकै, वैरी वादर-वृंद॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी 'चंद' प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कहा गया है।

प्रथम प्रतीप-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

चरन-करन सम जाके कहै 'रघुनाथ'
सरद-समै को फूल्यौ चारु अरविंद है।
जाके वार सुकुमार ऐसे मखतूल-तार,
नैन से निहारि देखौ माधौ' के मलिंद है॥
बोलन सी अमी जाके अधर सो अनुराग,
जाकी मोहनता ऐसो मदन नरिंद है।
ऐसी बाल लाल हों तिहारे लिये लाऊँ जाके,
अंग-ओप सी उजेरी, आनन सो इंदु है॥
—रघुनाथ।

१ वैशाख।

यहाँ 'चरन' 'करन' आदि कई उपमेयों के 'अरविंदादि' प्रेद्ध उपमानों को उपमेय बनाया गया है; अतः माला है।

२ द्वितीय प्रतीप

जिसमें उपमान को उपमेय बनाकर वर्णनीय उपमेय का तिरस्कार किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चंपक चामीकर[1] तडित[2], तव-तनु सरिस समर्थ।
यह जिय जानि अजान तिय! गरव गुमान निरर्थ॥

यहाँ नायिका की अंग-द्युति वर्णनीय उपमेय है। उसके चंपक, चामीकर एवं तड़ित उपमानों को उपमेय बनाकर चतुर्थ चरण द्वारा उपमेय का गर्व-परिहार (अनादर) किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सागर में गहराई मेरु में उँचाई रति-
नायक में रूप की निकाई निरधारिए।
दान देव-तरु में सयान सुर-गुरु में,
प्रसाद गंग-नीर में सु कैसे कै बिसारिए॥
तरनि में तेज बरनत 'मतिराम' जोति,
जगमगे जामिनी-रमन[3] में विचारिए।
राव भावसिंह! कहा तुम ही बड़े हौ जग,
रावरे के गुन और ठौर हू निहारिए॥
—मतिराम।

यहाँ भी समुद्र आदि उपमानों को उपमेय बनाकर वास्तविक

---

१ स्वर्ण। २ बिजली। ३ चंद्र।

उपमेय राजा भाऊसिंह का 'कहा तुम ही बड़े हौं
तिरस्कार किया गया है।

३ तृतीय प्रतीप

जिसमें उपमान को उपमेय मानकर (
के विरुद्ध) वर्णनीय उपमेय द्वारा उपमान का
किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सहज स्याम सुषमा सुधा-सदन स्याम-तनु
जलद ! जलधि-जल-युक्त है, तू कत करत

यहाँ श्रीकृष्ण की श्याम एवं सुधामयी अंग-द्युति
जलद उपमान है; उसको उपमेय मानकर अंग-द्युति द्वारा
का तिरस्कार किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अवनि ! हिमाद्रि ! समुद्र ! जनि करहु वृथा अभिमान।
सांत धीर गंभीर हैं, तुम सम राम सुजान।

यहाँ भी अवनि, हिमाद्रि एवं समुद्र उपमानों को
बनाकर उनके गुणों का श्रीरामजी में होना वर्णन कर
उपमानों का गर्व-परिहार किया गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

अंक न कलंक जाके राहु को न संक कछु,
जामें वसुधा की सोध सुधा भरियतु है।
एन' तें सरस नैन पच्छ हू घटै न जोति,
सोई छवि दिन-रैन दूनी धरियतु है।

१ मृग।

उपमानों को उपमेय और जोनपुर-नरेश महाराना ... उपमेय को उपमान बनाकर, इनमें दी हुई उपमा को ... गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

वे तुरंग[1] सेत रंग संग एक, ये अनेक,
हैं सुरंग अंग-रंग पै कुरंग-भांत
ये निसंक-अंक-यज्ञ[3], वे ससंक 'केसौदास'
ये कलंक-रंक, वे कलंक ही कलीत हैं
वे पिए सुधाहि ये सुधा-निधीस के रसैं[4] उ,
साँच हू सुनीत ये पुनीत, वे पुनीत हैं
देहि ये दिए विना विना दिए न देहि वे,
हुए न हैं न होहिंगे न इंद्र इंद्रजीत हैं
—केशवदास

यहाँ भी जो देवराज इंद्र उपमान हैं, उनको ... जो ओड़छा के राजा इंद्रजीत उपमेय हैं, उनको ... इस कल्पित उपमान से जो उपमा दी गई है, उसको "हु... न होहिंगे न" इस कथन से मिथ्या सिद्ध किया गया है।

५ पंचम प्रतीप

जिसमें इस रीति से उपमान का तिरस्कार ... जाय—"जब उपमान का भार उठाने को उपमेय ... है तब फिर उपमान की क्या आवश्यकता है?"

१ इंद्र का घोड़ा उच्चैश्रवा। २ चंद्रमा। ३ यज्ञ-कुंड। ४ ... भक्ति का रस।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

परिमल-पूरित पीत मृदु, मंजु गुराँइन-गात ।
अब अलि ! चंपक-फूल की, भूलि न कीजिय बात ॥

यहाँ पर कहा गया है कि जब चंपक-पुष्प के सुवास, पीतत्व, [मृदु]ता एवं सुंदरता गुणों का भार उठाने को श्रीराधिकाजी की [द्य]ुति उपमेय ही समर्थ है, तब उसकी क्या आवश्यकता है ? । [इस] प्रकार चंपक-पुष्प उपमान का तिरस्कार किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

दिन-दिन दीन्हे दूनी संपति बढ़ति जाति,
ऐसो याको कछू कमला को वर वर है ।
हेम हय हाथी हीरा बकसि अनूप जिमि,
भूपन को करत भिखारिन को घर है ॥
कहै 'मतिराम' और जाचक जहान सब,
एक दानि सत्रुसाल-नंदन को कर है ।
राव भावसिंहजू के दान की बड़ाई देखि,
कहा कामधेनु है कछू न सुरतरु है ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी कामधेनु एव कल्पतरु उपमानों के समस्त गुण-[ों] की सामर्थ्य राजा भावसिंह के 'हाथ' उपमेय में है, अतः [यहाँ] में उनकी अनावश्यकता बतलाकर उनका तिरस्कार किया [गया] है ।

सूचना—'पंचम प्रतीप' में आदरणीय उपमान का निरादर होना प्रतीपता (विलोमता) है ।

(५) रूपक

जहाँ उपमा-वाचक एवं निषेध-सूचक शब्दों के ही उपमेय का उपमान-रूप से वर्णन किया 'रूपक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ अभेद रूपक

जिसमें, उपमेय में उपमान का अभेद[२] आरोप इसके तीन भेद होते हैं—

(क) *सम अभेद रूपक*

जिसमें, उपमेय में उपमान का, विना कुछ धिकता के यथावत् आरोप हो। इसके तीन भेद

[१] सावयव (सांग)

जिसमें, उपमेय में उपमान का अंगों (सामग्रि सहित आरोप हो। इसके दो भेद हैं—

---

१ यहाँ 'उपमा-वाचक-शब्द के विना' वर्णन करने का अभिप्राय, 'उपमालंकार' से एवं निषेध के विना लिखने का अभिप्राय " 'अपह्नुति अलंकार' से भिन्नता दिखलाने के लिये है। क्योंकि " वाचक-शब्द पूर्वक जैसे—'चंद्र सा मुख' और 'अपह्नुति' में निषेध, जैसे—'मुख नहीं चंद्र' कहा जाता है। २ वक्ष्यमाण 'भ्रांति' अलंकार भी अभेद कहा जाता है; किंतु वहाँ वह कल्पित नहीं होता, वरन्, देखनेवाले द्वारा वास्तविक अभेद माना जाता है, जैसे—रज्जु में सर्प पर यहाँ आरोपित (कल्पित) अभेद होता है। ३ जैसे—मु अर्थात् मुख ही चंद्र है। यहाँ मुख उपमेय में चंद्र उपमान का आरोप होता है; वस्तुतः मुख ही चंद्र नहीं होता।

[समस्त वस्तु विषय]

जिसमें, आरोप्यमाण (जिसका[1] आरोप किया जाय) र आरोप-विषय (जिसमें[2] आरोप किया जाय), इन नों का स्पष्ट शब्दों में वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

विजय-मनोरथ को रथ, मनमत्थ[3] साथ
 सारथी, सहाय ताके सकल समाज की।
लोचन-कुरंग[4] ताते तरल तुरंगन[5] तें,
 नासिका-निषंग[6], छाई औरैं छवि आज की॥
कुटिल कटाछें आछे आयुध, असेष केस,
 कवच, कमान सोहैं भौंहैं सुज-साज की।
चढ़ी असवारी लाज-जान की गढ़ी पै आज,
 राधा-मुख-मंडल-मयंक-महाराज की॥

यहाँ श्रीराधा-मुख उपमेय में चंद्र उपमान का बिना किसी न्ाधिकता के सर्वांगतया अभेद आरोप हुआ है। यथा—मुख मेय के विजय-मनोरथ, काम, काम की सेना (वसंतादि) वं नेत्र आदि में क्रमश चंद्र उपमान की रथ, सारथी, सेना एवं ग आदि सामग्रियों का आरोप किया गया है, अतः यह ावयव' है और सभी उपमानों का शाब्द वर्णन है, इससे यह समस्त-वस्तु-विषय' है।

---

१ जैसे—चद्र का। २ जैसे—मुख में। ३ काम। ४ मृग। ५ घोड़े। तरकस।

'दीन' भनै ताहि लखि जात पति-लोक-ओर,
उपमा अभूत को सुझानौ नयो ढंग है।
कौतुक-निधान राम रज की बनाइ रज्जु,
पद तें उड़ाई ऋषि-पतनी-पतंग है॥
—लाला भगवानदीन।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में ऋषि-पत्नी (अहल्या) उपमेय में पतंग उपमान का अभेद आरोप है। अर्थात् ऋषि-पत्नी-उपमेय-पक्ष के राम एवं पद-रज में उपमान-पक्ष के कौतुक-निधान (बाजीगर) एवं रज्जु (डोरी) का आरोप हुआ है।

[एक-देश-विवर्ति]

जिसमें आरोप किए जानेवाले कुछ उपमान शाब्द[1] और कुछ आर्थ[2] हों। अर्थात् जो रूपक उपमान के किसी अंग से हीन हो।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

करि उपदेस अमित उपचारा। औषध उचित प्रकृति-अनुसारा॥
माया-जनित मोह अज्ञाना। भ्रम संसय सब हरहिँ सुजाना॥

यहाँ ब्रह्म-विद्या के उपदेश रूप उपमेय में औषध उपमान का आरोप तो शाब्द है; किंतु मोह, अज्ञान, भ्रम एवं संशय उपमेयों के लिये रोग उपमान नहीं कहा गया; वह केवल अर्थ से जाना जाता है; अतः 'एक-देश-विवर्ति' है।

---

१ जो शब्दों द्वारा बतलाया जाय। २ जो बिना कहे अर्थ द्वारा जाना जाय।

२ पुनः यथा—दोहा ।

व्रज-वारिधि यदुकुल-सलिल, कुमुदिनि-गोप-कुमारि ।
जन-रंजन-हित स्याम-ससि, प्रगटेउ खल-जलजारि[1] ॥

यहाँ भी विना न्यूनाधिकता के श्रीकृष्ण को चन्द्रमा कहा गया है । इसमें व्रज, यदुकुल, गोप-कुमारि एवं खल उपमेयों में तो क्रमशः वारिधि, सलिल, कुमुदिनी तथा जलज उपमानों का आरोप शाब्द है; किंतु जन (भक्त) उपमेय में चकोर उपमान का आरोप शाब्द नहीं है, केवल अर्थ द्वारा सूचित होता है ।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

स्याम-तन सागर में नैन वारपार थके,
नाचत तरंग अंग-अंग रंगमगी है ।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बेनु,
नागनि अलक जुग सोधैं सगबगी है ॥
भँवर त्रिभंगताई पानिप लुनाई तामैं,
मोती-मनि-जालन की जोति जगमगी है ।
काम-पौन प्रबल धुकाव लोपो पाज तामैं,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है ॥
सुंदरि कुँवरि ।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के शरीर को समुद्र रूप दिखलाया गया है । इसमें नाचने आदि में तरंग आदि का शाब्द आरोप है किंतु राधिका-नेत्र उपमेय में छोटी नौका उपमान का आरोप अर्थ द्वारा सूचित होता है ।

१ [illegible]

वितान का और चरणों मे पंकज का आरोप विना अंगों के हुआ है; और इन तीनों के कारण यह माला है।

[२] परंपरित

जिसमें प्रधान रूपक का कारण एक अन्य रूपक हो। अर्थात् प्रधान रूपक किसी दूसरे रूपक के आश्रित हो। इसके दो भेद होते हैं—

[श्लिष्ट-शब्द]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कैकेई कुमति तैं नृपति विनती करत,
वाम! वन राम कौं सुधाम तैं निकास ना।
करिए न साहस विसरिए न लाज सारी,
वनकै कुठारी रघुवंस'-वन नास ना॥
भरत न लैहै राज तेरे वृथा ह्वैहैं साज,
राम वन जैहैं धरि लैहैं सिर सासना।
अब ना सुदान पितु अंत याद पैहैं दान,
वासन विलाइ जात रहि जात वासना॥

यहाँ पूर्वार्द्ध में जो वंश उपमेय में 'वन' उपमान का अभेद आरोप है वही कैकेयी में कुठारी के आरोप का कारण है क्योंकि वन कुठारी से काटा जाता है अतः परंपरित है और 'वंश' शब्द के दो अर्थ (कुल एवं बाँस) होने से श्लिष्ट है

२ पुनः यथा—दोहा।

अखिल-लोक-अभिराम गुन राम जपत [illegible]
भव निदाघ [illegible] घनस्याम

१ [illegible]

स्वाति-सलिलागम विचार-मुकता के सीप,
मेरे मनमोहन के मोहन लौं टोना है॥
बानी सुख-दानी सुधा-सानी प्रान प्रीतम की,
पान करिबे के मान कंचन के दोना है।
श्रवन सुहागिन के सहज सलोना तापै,
तीतर के छोना चारु तरल तरोना है॥

यहाँ 'आगम (शास्त्र)' उपमेय में 'स्वाति-सलिल' उपमान का, 'विचार' में 'मुक्ता' का एवं 'राधिकाजी के कानों' में 'सीपों' का अभेद आरोप है; और 'कान-सीप' रूपक 'विचार-मुक्ता' के एवं यह 'स्वाति-सलिलागम' के आश्रित है; अतः 'परंपरित' है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

कपट-कार्य कटु-कलह कुमति कुविचार कढ़ैंगे।
बुद्धिमान विज्ञानवान बलवान बढ़ैंगे॥
विपथ बुरे व्यवसाय व्यसन व्यसनी बिसरैंगे।
कर्मवीर-कुल-कुमुद-कलानिधि कुसल करैंगे॥
सब भाँति जाति उन्नत बनहिं सबकी एक अवाज हो।
यदि दीक्षित विमल विचार-युत[1] 'सिक्षित सबल समाज हो'॥
—[illegible]

यहाँ भी 'कर्मवीर कुल' उपमेय में 'कुमुद' उपमान का एवं उनके बाद 'कर्मवीर' उपमेय में 'कलानिधि' उपमान का अभेद आरोप है और 'कुल-कुमुद' रूपक 'कर्मवीर-कलानिधि' रूपक का आधार है, इससे 'परंपरित' है।

१ [illegible]

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

राम-कथा कलि पन्नग-भरनी। पुनि विवेक-पावक कहँ अरनी॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी 'कलि' उपमेय में 'पन्नग (सर्प)' उपमान का एवं 'राम-कथा' उपमेय में 'भरनी' (गारुड़ी मंत्र का गान) उपमान का अभेद आरोप है; और 'राम-कथा-भरनी' रूपक 'कलि-पन्नग' का आश्रित है; अतः 'परंपरित' है। इसीके उत्तरार्द्धगत "विवेक-पावक कहँ अरनी" में भी इसी प्रकार यही रूपक है; अतः 'अश्लिष्ट परंपरित' की माला है।

सूचना—यहाँ परंपरित लक्षणोक्त 'कारण' शब्द का तात्पर्य यह है कि मुख्य रूपक अपने कारणभूत अन्य रूपक का आश्रित होता है, न कि प्राकृतिक कारणवत्; और प्रधान रूपक जिस रूपक का आश्रित होता है, वह रूपक भी किसी अन्य रूपक का आश्रित हो सकता है। इसी प्रकार ऐसे बहुत से (दो से अधिक) रूपकों की भी शृंखला हो सकती है, और 'परंपरित' शब्द से भी रूपकों की परंपरा सिद्ध होती है।

(ख) अधिक अभेद रूपक

जिसमें, उपमेय में आरोपित होने से पहले उपमान की जो सहज स्थिति थी, वह आरोप किए जाने के पश्चात् कुछ अधिक या बढ़ाकर कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुटिल कटाछ-कटार को, विक्रम विषम विसेख।
आँजत कटै न आँगुरी, कटै करेजो देख॥

यहाँ 'कटाक्ष' उपमेय में 'कटार' उपमान का अभेद आरोप

किया गया है; किंतु अंजन देती हुई उँगली को न काटकर दूर से देखने मात्र से ही देखनेवाले का कलेजा काट देने की सामर्थ्य कटार की प्रथम स्थिति में नहीं थी; अब वह कटाक्ष में आरोपित होने के पश्चात् कही गई है; यही अधिकता है।

२ पुनः यथा—सवैया।

दूरहिँ तें दृग देखत ही डसिहैं बस नाहिन मंत्र मनी को।
क्यों उपहास करै जमुना-जल-धार अली-अवलीन घनी को॥
तू निज रूप रिझैहैं महा पछितैहैं कहौ जिय पैहैं जनी[1] को।
बालन-ब्यालन-बालन को प्रतिपालन बावरी बाल! न नीको॥

यहाँ भी नायिका के 'बालन' (केशों) उपमेय में 'व्यालन-बालन' (सर्पों के बच्चे) उपमान का अभेद आरोप है; किंतु दूर से ही डसने की एवं मंत्र और मणि के उपचारों से इनपर सफलता न होने की अधिकता जो आरोप किए जाने से पूर्व नहीं थी, उसका अब होना कहा गया है; अतः 'अधिक अभेद' है।

(ग) न्यून अभेद रूपक

जिसमें, उपमेय में आरोपित होने से पहले उपमान की जो सहज स्थिति थी, वह आरोप किए जाने के पश्चात् कुछ न्यून करके कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरसि सलोनो स्याम घन, अबसि जात अरसाय।
तिमि तुम्हार मुख-ससि-दिवस, नयन-नलिन-निसि न्याय॥

[1] दासी।

यहाँ मुख उपमेय में शशि एवं नेत्रों में नलिन उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'दिवस-शशि' एवं 'निशि-नलिन' वाक्यों से इनकी पहली अवस्था की अपेक्षा न्यूनता बतलाई गई है।

२ पुनः यथा—दोहा।

हरषत मित्र-चकोर-गन, मंद कमल-अरि-बृंद।
प्रजा-कुमुद प्रफुलित, निरखि रामचंद्र-भुवि-चंद॥

—अलंकार आशय।

यहाँ भी 'श्रीरामचंद्र' उपमेय में 'चंद्र' उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'भुवि-चंद' (पृथ्वी का चंद्रमा) वाक्य से प्रथमावस्था की अपेक्षा 'चंद्र' उपमान में न्यूनता बतलाई गई है।

२ ताद्रूप्य रूपक

जिसमें उपमेय को उपमान से पृथक् उसी (उपमान) का स्वरूप एवं कार्यकर्ता कहा जाय। इसके तीन भेद होते हैं—

(क) सम ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—दोहा।

एकाकी फिरि-फिरि निरखि, अखिल प्रजा के काम।
तौलि तुला तें न्याय किय, राम अपर नृप राम॥

यहाँ जयपुर-नरेश राजा रामसिंहजी उपमेय को "राम अपर नृप राम" वाक्य द्वारा श्रीरामचंद्रजी महाराज उपमान से भिन्न बतलाकर यथार्थ न्याय करने के कारण उपमान के समान कार्य-कर्ता कहा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया ।

आँगन कुंकुम-चर्चित सो अभिषेक को नीर चल्यौ रँग रातो ।
षोड़स-दान-सँकल्प को नीर बह्यौ बहुते बढ़ि मोद सुमातो ॥
नारि-अधीन के नीर ढर्‌यौ दृग आशु हि देखि नृपै बढ़ि जातो ।
कीन्ह त्रिवेनी नई जसवंत सु लेस हु थाकहिगो गुन गातो ॥

—[illegible]

यहाँ भी जसवंत नृप ने अभिषेकादि के जल-प्रवाह उपमेय को त्रिवेणी उपमान से "दीन्ह त्रिवेनी नई" वाक्य द्वारा पृथक् करके उपमान के समान कार्यकर्ता कहा गया है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

आरसी निपुन नृपाल कों, कहियत दूजो सूर ।
हरषत दरपत सब लखैं, परषत लखै न सूर ॥

—[illegible]

यहाँ भी आरसी-रूप उपमेय को सूर्य उपमान से "कहियत दूजो सूर" वाक्य द्वारा भिन्न बतलाकर "हरषत दरपत सब लखैं" एवं "परषत न लखैं" वाक्यों से उपमान के समान कार्यकर्ता कहा गया है ।

[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

यहाँ मुख उपमेय में शशि एवं नेत्रों में नलिन उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'दिवस-शशि' एवं 'निशि-नलिन' वाक्यों से इनकी पहली अवस्था की अपेक्षा न्यूनता बतलाई गई है।

२ पुनः यथा—दोहा।

हरषत मित्र चकोर-गन, मंद कमल अरि-वृंद।
प्रजा-कुमुद प्रफुलित, निरखि रामचंद्र-भुवि-चंद॥

—अलंकार आशय।

यहाँ भी 'श्रीरामचंद्र' उपमेय में 'चंद्र' उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'भुवि-चंद' (पृथ्वी का चंद्रमा) वाक्य से प्रथमावस्था की अपेक्षा 'चंद्र' उपमान में न्यूनता बतलाई गई है।

२ ताद्रूप्य रूपक

जिसमें उपमेय को उपमान से पृथक् उसी (उपमान) का स्वरूप एवं कार्यकर्ता कहा जाय। इसके तीन भेद होते हैं—

(क) सम ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पखार्यो फिरि-फिरि निरखि, अखिल प्रजा के काम।
तौलि तुला तैं न्याय किय, राम अपर नृप राम॥

यहाँ जयपुर-नरेश राजा रामसिंहजी उपमेय को "राम अपर नृप राम" वाक्य द्वारा श्रीरामचंद्रजी महाराज उपमान से भिन्न बतलाकर यथार्थ न्याय करने के कारण उपमान के समान कार्य कर्ता कहा गया है।

(ग) न्यून ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अरि मारे पारे[1] हितू, कीन्हे वांछित काम।
बिनु विरोध इक लंक के, राम दूसरे राम॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ श्रीरामजी उपमान से 'राम दूसरे राम' वाक्य द्वारा राजा रामसिंह उपमेय में भिन्नता दिखाकर 'बिनु बिरोध इक लंक के' वाक्य से न्यूनता बतलाई गई है।

२ पुन: यथा—कवित्त।

रस भरे जस भरे कहै कवि 'रघुनाथ',
रंग भरे रूप भरे खरे अंग कल[2] के।
कमला-निवास परिपूरन सुवास आस,
भावते के चंचरीक[3] लोचन चपल के॥
जगमग करत भरत दुति दीह पोखे,
जोवन-दिनेस के सुदेस भुज-बल के।
गाइवे के जोग भए ऐसे हैं अमल फूले,
तेरे नैन-कमल कमल बिनु जल के॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी "तेरे नैन-कमल कमल बिनु जल के" वाक्य द्वारा कमल उपमान से नेत्र-कमल उपमेय में भिन्नता सूचित करके 'बिनु जल के' पद से न्यूनता दिखाई गई है।

---

१ पालन किए। २ सुंदर। ३ भ्रमर।

बच्छ[1]-थल में विपच्छ रच्छसान[2] के विदच्छ[3],
कच्छ-कूट[4]-दाह भव्य हव्यवाह[5] ज्यों सुजान।
तेज अप्रमान ज्यों निदाघ को गभस्तिमान[6],
युक्त हनूमान राम-बान की समस्त बान॥

यहाँ श्रीहनुमानजी उपमेय को 'आन' शब्द द्वारा शेष भगवान् उपमान से भिन्न बतलाकर 'सपच्छ' शब्द से उनकी अधिकता का वर्णन किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

विकसत कंजन की रुचि को हरै न हठि,
होत छिन-छिन ही मैं नित ही नवीनो है।
लोचन-चकोरन कों सुख उपजावै अति,
धरत पियूष लखें मेटि दुख दीनो है॥
छवि दरसाइ सरसावै मीनकेतन[7] कों,
तो पै बुधि-हीन विधि काहे बिधु कीनो है।
एहो नँद-नंद-प्यारी! तेरो मुख-चंद यहै,
चंद तें अधिक अंक पंक को विहीनो है॥
—अलङ्कार-आशय।

यहाँ भी श्रीवृषभानु-कुमारी के मुख उपमेय को "तेरो मुख-चंद यहै" एवं "काहे विधु कीनो है" वाक्यों द्वारा चद्र उपमान से भिन्न बतलाकर "कमलों की काति न हरने" एव "प्रतिक्षण नवीन रहने" आदि विशेषणो द्वारा उसकी अधिकता बतलाई गई है।

१ वक्ष=हृदय। २ राक्षसों। ३ निपुण। ४ तृण-समूह। ५ अग्नि। ६ सूर्य। ७ कामदेव।

(६) परिणाम

जहाँ कोई क्रिया (कार्य) करने के लिये उपमान स्वयं समर्थ न हो और उपमेय के साथ मिलकर वह कार्य करे वा उपमेय के करने का कार्य उपमान द्वारा होने का वर्णन हो, वहाँ 'परिणाम' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

वृद्धपितामह तृषित लखि, कर-कमलनि सर मार।
सुरपति-सुत[1] झट भूमि तें, प्रगट कीन्ह जल-धार॥

यहाँ केवल 'कमल' उपमान बाण चलाने में असमर्थ है, अतः 'कर' उपमेय से मिलकर बाण चलाने योग्य बतलाया गया है।

२ पुन. यथा—दोहा।

तिय-चख-झख[2] भरतार को, उर दारत[3] किहिँ हेतु।
लखि वंसी[4]धर बैर निज-वंस-विघातक लेतु॥

यहाँ भी 'झख' उपमान हृदय विदीर्ण करने में असमर्थ है, और 'चख' (नेत्र) उपमेय से मिलकर विदीर्ण करने योग्य बतलाया गया है।

परिणाम-माला—१ उदाहरण यथा—सवैया।

'भूषन' तीछन तेज-तरन्नि सों बैरिन को कियो पानिप हीनो।
दारिद-दौ करि-बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो॥

१ अर्जुन। २ मछली। ३ विदीर्ण करते हैं। ४ कृष्ण और मछली पकड़ने की छड़ी।

न्यून ताद्रूप्य-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

लसैं द्विज औरहि मुक्तिय-माल पयोनिधि में उपजे नहिँ जो हैं।
भए न सरोवर अंबुज और सुलोचन कान्ह कुमारहिँ मोहैं॥
सरोरुह में न रहै अरु लच्छि प्रतच्छ सुलच्छनि तो सम को हैं।
सदा परिपूरन तो मुख राधे! सुधाधर और धरा पर सोहैं॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ चारों चरणों में चार ही 'न्यून ताद्रूप्य' हैं; अतः माला है। यथा—द्विज (दाँत), लोचन, स्वयं श्रीराधिकाजी एवं उनके मुख उपमेयों से क्रमशः उनके सहधर्मी मोती-माल, अंबुज, लक्ष्मी एवं पूर्ण चंद्र उपमानों को 'औरहि' 'और' 'प्रतच्छ' एवं 'और' शब्दों द्वारा भिन्न बतलाकर 'पयोनिधि में उपजे नहिँ' 'भए न सरोवर' 'सरोरुह में न रहै' एवं 'धरा पर सोहैं' वाक्यों द्वारा उनमें न्यूनता बतलाई गई है।

उभय पर्यवसायी (अधिक एवं न्यून) १ उदाहरण यथा—दोहा।

ज्यौ[1] आजु आनहि अवनि, मुख-मयंक अकलंक।
चख-चकोर छवि-छोर[2] लखि, तजहिँ दहन-दुख रंक[3]॥

यहाँ मुख उपमेय को 'ज्यौ आजु आनहि' वाक्य द्वारा चंद्र उपमान से पृथक् बतलाकर 'अकलंक' शब्द से अधिक एवं 'ज्यौ अवनि' पद से न्यून सिद्ध किया गया है, अतः यह 'उभय पर्यवसायी' है।

सूचना—प्रायः 'रूपक' अलंकार में पहले उपमेय (जैसे-'मुख चंद') और पूर्वोक्त 'उपमा' अलंकार में पहले उपमान (जैसे-'चंद्र-मुख') रखा जाता है।

---

१ उदित हुआ। २ अर्थात् छटा। ३ बेचारा।

(६) परिणाम

जहाँ कोई क्रिया (कार्य) करने के लिये उपमान स्वयं समर्थ न हो और उपमेय के साथ मिलकर वह कार्य करे वा उपमेय के करने का कार्य उपमान द्वारा होने का वर्णन हो, वहाँ 'परिणाम' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

वृद्धपितामह तृषित लखि, कर-कमलनि सर मार ।
सुरपति-सुत भट भूमि तें, प्रगट कीन्ह जल-धार ॥

यहाँ केवल 'कमल' उपमान धारा चलाने में असमर्थ है, अतः 'कर' उपमेय से मिलकर धारा चलाने योग्य बतलाया गया है ।

२ पुन. यथा—दोहा ।

तिय-दृग-कंज भरतार को, उर दारन जिहिं हेतु ।
लखि कंजी धर देर निज-अंस-विधानक हेतु ॥

यहाँ भी 'कंज' उपमान हृदय विदीर्ण करने में असमर्थ है, और 'दृग' (नेत्र) उपमेय से मिलकर विदीर्ण करने योग्य बतलाया गया है ।

परिणाम-माला—१ उदाहरण यथा—सवैया ।

[illegible]
[illegible]

[illegible] कों [illegible] दृग [illegible] कंज [illegible] बतलाये गये हैं ।

भौंसिला भूप वली भुव को भुज-भारी-भुजंगम[1] सो भरु लीनो।
साहि-तनै[2] कुल-चंद सिवा ! जस-चंद सौं चंद कियौ छवि-छीनो॥
—भूषण।

यहाँ 'तरनि' (सूर्य), 'वारिद' (बादल), 'भुजंगम' एवं 'चंद' उपमान स्वयं क्रमशः शत्रुओं का पानिप (जल एवं रूप) हीन करने में, दारिद्र-दव-दलने में, भुव-भार लेने (उठाने) में एवं चंद-छवि को क्षीण करने मे असमर्थ हैं; और छत्रपति शिवाजी के तेज, करि (हस्तियों का दान), भुज (बाहु) एवं यश उपमेयो के साहाय्य से उक्त क्रियाएँ करने में समर्थ बतलाए गए हैं; अतः माला है।

(७) उल्लेख

जहाँ एक पदार्थ का अनेक प्रकार से उल्लेख (वर्णन) किया जाय, वहाँ 'उल्लेख' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम उल्लेख

जिसमें एक पदार्थ को अनेक व्यक्ति अनेक भाँति से देखें, समझें वा वर्णन करें।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

सज्जन सुजान जान्यौ सुजन समान जाहि,
जान्यौ जसवंत जस जोधा जग जाने को।
नृपन वजीर जान्यौ वीरवर ह्वै तें वर,
वीररस वीरन कौ वीरता वताने को॥

१ शेषनाग। २ तनय = पुत्र।

यहाँ प्रथम चरण में कवि ने श्रीवृषभानु-नंदिनी की नासिका को स्वासों के लिये बाग सुवासों के लिये महल एवं मोतियों के लिये क्रीड़ा करने का आसन इन तीनों प्रकारों से वर्णन किया है।

२ पुन. यथा—कवित्त।

दिनेस मैं प्रभामयी, मयंक-चंद्रिकामयी,
हुतास दीपधामयी, प्रकासमान काय है।
पुरातनी पुरामयी, जगत्परंपरा मयी,
पुरान ब्रह्म-भामयी, प्रकाम काम-दाय है॥
धरामयी, चरामयी, अलेख थावरामयी,
अनंद कंदरामयी, अनंद बुद्धि भाय है।
विरंचि मैं गिरामयी, रमेस मैं रमामयी,
महेस मैं उमामयी, सिलामयी सहाय है॥
—[illegible] कवि।

यहाँ भी कवि ने राजा मान द्वारा स्थापित जयपुर की सिला मयी देवी का 'दिनेस मैं प्रभामयी' आदि विषय-भेद पूर्वक अनेक भाँति से वर्णन किया है।

३ पुन. यथा—कवित्त।

पैज-प्रतिपाल, भूमि-भार को हमाल, चहूँ,
चक को अमाल, भयौ, दण्ड जहान को।
साहन को साल भयौ, ज्वार [illegible] नो ज्वाल भयौ,
हर को कृपाल भयौ हार के विधान को।

[illegible] ४ [illegible] ५ [illegible]
६ विपत्ति।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

उच्च उदक हू अवनि पै, ठहरि जात उहिँ ठाम।
मकरालय-मरजाद लखि, सुधि आवत श्रीराम॥

यहाँ समुद्र की मर्यादा देखकर मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र महाराज का स्मरण होना वर्णित है। यह स्मरण पूर्व में श्रवण किए हुए श्रीरामजी के समान धर्म (गुण) वाले अन्य पदार्थ समुद्र को देखने से हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

बिसरत लौं नन तें ललन, कीजत जिते उपाय।
दीखत ही देवर-बदन, ससक-सींग ह्वै जाय[1]॥

यहाँ भी नायिका को पहले देखे हुए अपने पति के मुख का, उसीके सदृश देवर का मुख देखने से स्मृति होने का वर्णन है।

३ पुन यथा—सवैया।

'केसव एक समै हरि राधिका आसन एक लसैं रँग भीने।
आनंद सौं तिय आनन की दुति देखन दर्पन मैं दृग दीने॥
भाल के लाल मैं बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीने।
सासन-पीय सवासन सीय हुतासन मैं जनु आसन कीने॥
[illegible]

यहाँ भी [illegible] [illegible] का मुखारविंद दर्पण में [illegible] में [illegible] प्रतिबिंब [illegible] श्रीसीताजी की अग्नि प्रवेश [illegible]

1 [illegible]

वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व युग के देखे हुए दृश्य का सादृश्य देखकर स्मृति हुई है।

सूचना—यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में समान वस्तु के देखने मात्र से ही स्मरण होने में यह अलंकार माना है, तथापि देखने के अतिरिक्त श्रवण, चिंतन आदि अनेक भाँति से भी स्मरण होना युक्ति-युक्त ज्ञात होता है। यहाँ तक कि विरोधी पदार्थों के देखने से भी यह अलंकार स्पष्ट सिद्ध होता हुआ देखा जाता है—

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चालि चँदेरी नगर तें, आए सुनि सिसुपाल।
सुता-विदर्भ-भुआल[1] के, उर आए नँदलाल॥

यहाँ विरोधी शिशुपाल का आना सुनकर श्रीरुक्मिणी को पूर्व में श्रवण किए हुए श्रीकृष्ण महाराज का स्मरण होना बतलाया गया है।

स्मरण-वैधर्म्य-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

देखि सुनि-सुनिकै मलेच्छन के अत्याचार,
कल्की-अवतार राम-गुनन गुन्यौ करैं।
ताकि तुकबंदी हम जैसन की मम्मट औ,
दंडी-भरतादि[2]-व्यास-यादनि भुन्यौ करैं॥
कलह-कलेस-देस-बंधुन विलोकि भीम-
भीषम, भरत[3] के निबंधन चुन्यौ करैं।
कुपथन देखि दंभ-दलन-असेस स्वामी-
संकर-चरित्र अभयंकर सुन्यौ करैं॥

---

१ विदर्भ देश के राजा की पुत्री। २ नाट्य शास्त्र कर्ता भरत मुनि आदि। ३ दशरथ के पुत्र भरत।

वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व युग के देखे हुए दृश्य का सादृश्य देखकर स्मृति हुई है।

सूचना—यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में समान वस्तु के देखने मात्र से ही स्मरण होने में यह अलंकार माना है, तथापि देखने के अतिरिक्त श्रवण, चिंतन आदि अनेक भाँति से भी स्मरण होना युक्ति-युक्त ज्ञात होता है। यहाँ तक कि विरोधी पदार्थों के देखने से भी यह अलंकार स्पष्ट सिद्ध होता हुआ देखा जाता है—

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चालि चँदेरी नगर तें, आए सुनि सिसुपाल।
सुता-विदर्भ-भुआल[1] के, उर आए नँदलाल॥

यहाँ विरोधी शिशुपाल का आना सुनकर श्रीरुक्मिणी को पूर्व में श्रवण किए हुए श्रीकृष्ण महाराज का स्मरण होना बतलाया गया है।

स्मरण-वैधर्म्य-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

देखि सुनि-सुनिकै मलेच्छन के अत्याचार,
कल्की-अवतार राम-गुनन गुन्यौ करैं।
ताकि तुकबंदी हम जैसन की मम्मट औ,
दंडी-भरतादि[2]-व्यास-यादनि भुन्यौ करैं॥
कलह-कलेस-देस-बंधुन बिलोकि भीम-
भीषम, भरत[3] के निबंधन चुन्यौ करैं।
कुपथन देखि दंभ-दलन-असेस स्वामी-
संकर-चरित्र अभयंकर सुन्यौ करैं॥

१ विदर्भ देश के राजा की पुत्री। २ नाट्य शास्त्र कर्त्ता भरत मुनि आदि। ३ दशरथ के पुत्र भरत।

(१०) संदेह

जहाँ सत्य असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय; और यह संशय[1] बना ही रहे कि "यह अमुक वस्तु है वा अमुक ?" वहाँ 'संदेह' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कीधौं सुरराज के समाज की समृद्धि यह,
कीधौं ऋद्धि-सिद्धि राजराज[2]-राजधानी की।
कीधौं वेद बाँचिबे की स्वच्छ परिपाटी पटु,
कीधौं स्वर-ब्रह्म की प्रतच्छ प्रतिमा नीकी॥
कीधौं अप्सरान की वसीकरन-विद्या किधौं,
विजय-पताका गढ़ी-गंध्रव पुरानी की।
रागन की रानी ठकुरानी तीन ग्रामन[3] की,
बानी-बीन-बानी, गुरुबानी कै सुबानी की॥

यहाँ श्रीसरस्वतीजी के वीणा-शब्द उपमेय में इन्द्र की समृद्धि आदि अनेक उपमानों का संदेह होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

बालिन की बेनी किधौं नीरज की नाली बढ़ि,
बाली मधुपाली मधु पावन मृनाली की।
अपने उधार हेतु धार जमुना की लेनु
चरन अधार के प्रनत-प्रतिपाली को।

१ यह संशय कवि-कल्पित होता है। २ कुबेर। ३ गाने के ग्राम (नंद्यावर्त, सुभद्र और जीमूत) एवं गांव।

(१०) संदेह

जहाँ सत्य असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय; और यह संशय बना ही रहे कि "यह अमुक वस्तु है वा अमुक?" वहाँ 'संदेह' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कीधौं सुरराज के समाज की समृद्धि यह,
कीधौं ऋद्धि-सिद्धि राजराज-राजधानी की।
कीधौं वेद बाँचिबे की स्वच्छ परिपाटी यह,
कीधौं स्वर-ब्रह्म की प्रतच्छ प्रतिमा नीकी॥
कीधौं अप्सरान की वसीकरन-विद्या किधौं,
विजय-पताका गढ़ी-गंधर्व पुरानी की।
रागन की रानी ठकुरानी तीन ग्रामन[१] की,
बानी-बीन-बानी, गुरुबानी कै सुबानी की॥

यहाँ श्रीसरस्वतीजी के वीणा-शब्द उपमेय में इन्द्र की समृद्धि इत्यादि अनेक उपमानों का संदेह होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

ग्वालिन की बेनी किधौं नीरज की नाली अलि,
आली मधुपाली मधु पीवन मुनाली की।
अपने उधार हेतु धार जमुना की हेतु,
धरन सुधार कै भगत-प्रतिपाली की॥

१ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] (गांधार, मध्यम और षड्ज) [illegible]।

धारा बाँधि आयौ तारामारग[1] धरा को तम,
ससि पै रिसायौ कै समूह निसि काली को।
फेर नथि जाइ ना फलानी इहिँ भीति आली!
काली कै रिझाइ रह्यौ चित्त बनमाली को॥

यहाँ भी श्रीवृषभानुनंदिनी की वेणी उपमेय में भ्रमर-पंक्ति आदि बहुत से उपमानों का संदेह हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

चंपे की पिराका[2] है कि सोने की सिराका[3] है कि,
संपा[4] ही को भाग है कि कला कोउ न्यारी है।
सुकवि 'नरोत्तम' कै भूतल को भूषन है,
कै चकोर-पूषन[5] कै पुन्य की उजारी है॥
मेरी अभिलाषा है कि कामतरु-साखा है कि,
गीरवान-भाषा[6] है कि सुधा-कंद-क्यारी है।
राग है कि रूप है कि रस है कि जस है कि,
तन है कि मन है कि प्रान है कि प्यारी है॥

—नरोत्तमदास।

यहाँ भी नायिका उपमेय में चंपा की पंखड़ी आदि अनेक उपमानों का संशय हुआ है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

'केसौदास' मृगज बछेरू चोषैं बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ-बालक-बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचै कलभ-करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है॥

१ [illegible]। २ पखड़ी। ३ शलाका। ४ बिजली। ५ चंद्र। ६ देव-वाणी = संस्कृत [illegible] [illegible]।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

बोध बुधि विधि के कमंडल उठावत ही,
धाक सुर-धुनि की धँसी यौं घट-घट मैं।
कहै 'रतनाकर' सुरासुर ससंक सबै,
बियस बिलोकत लिखे से चित्रपट मैं॥
लोकपाल दौरन दसों दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर वट मैं।
ग्रसन नदीस लागे, खसन गिरीस लागे,
ईस लागे कसन फनीस कटि-तट मैं॥

—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

यहाँ भी ब्रह्माजी के कमंडलु उठाते ही श्रीगंगाजी के प्रपात कारण का ज्ञान होने मात्र से तत्काल घट-घट में भय उत्पन्न होने आदि कार्यों का होना कहा गया है।

चपलातिशयोक्ति-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

दारे दुख दारिद घनेरे सरनागत के,
अंब! अनुकंपा उर तेरे उपजत ही।
मंदिर मै महिमा बिराजै इंदिरा की नित,
गाजै झनकार धुनि कंचन-रजत ही॥
गाज सी परत अनसहन विपच्छिन पै,
मत्त गजराजन की घटा गरजत ही।
हारे हिय सारे हथियार डरि डारे देत,
हारे देत हिम्मत नगारे के बजत ही॥

—पं० कृष्णशंकर तिवाड़ी, एम, ए।

यहाँ प्रथम चरण में दुर्गा के हृदय मे दया का संचार मात्र होने कारण द्वारा शरणागत मनुष्य के दुख-दारिद्र्य हरने का कार्य

तुरंत हुआ है। इसी प्रकार तृतीय तथा चतुर्थ चरणों में भी है; अतः यह माला है।

७ अत्यंतातिशयोक्ति

जिसमें कारण ऐसा लाघव (शीघ्र)-कारी हो कि उससे पहले ही कार्य हो जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

संभु-समाधि ललार-चख, खुलन न लागी बार।
प्रथमहिं डुर्यौ रसाल-दल, मार भयौ जरि छार॥

यहाँ श्रीशंभु के ललाट-नेत्र का खुलना कारण है, जिससे पहले ही काम का भस्म होना कार्य हो गया है।

२ पुन यथा—दोहा।

उदय भयो पीछे ससी, उदयागिरि के संग।
तुव मन सागर राग' की, प्रथमहिं बढ़ी तरंग॥

—[illegible]

यहाँ भी चंद्रोदय कारण से पहले ही समुद्र की तरंग का बढ़ना कार्य हुआ है

सूचना—[illegible] प्राचीन आचार्यों ने 'अतिशयोक्ति' [illegible] अलंकारों का [illegible] माना है।

---

(१४) तुल्ययोगिता

जहाँ अनेक के धर्मों का तुल्ययोग अर्थात् एकता हो.

१ [illegible]

उभय धर्मानुगामी १ उदाहरण यथा—दोहा ।

कोक कुंभ नहिं लहत सखि ! सोभा-उरज उतंग ।
नैन बैन बाँके भए, प्रगटत जोवन अंग ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ कोक (चक्रवाक) एवं कुंभ उपमानों को उरोजों की शोभा न प्राप्त होना और नैन एवं बैन उपमेयों का बाँके होना, एक-एक धर्म कहा गया है; अतः दोनों की 'तुल्ययोगिता' है ।

२ द्वितीय तुल्ययोगिता

जिसमें हित और अनहित (मित्र-शत्रु, सुख-दुःख) में तुल्य (समान) व्यवहार बतलाया जाय ।

१ उदाहरण यथा—कवित्तार्द्ध ।

विमल विरागी त्यागी यागी बडभागी भक्त,
विषयानुरागी त्यौं कुसंगति करैया है ।
कोऊ पंचकोसी माहिँ पंचपन पावैं मुक्ति,
सबकों समान देत कासी पुरी मैया है ॥*

यहाँ पुण्यात्मा (मित्र) एवं पापात्मा (शत्रु) दोनों को श्रीकाशीजी द्वारा समान मुक्ति प्राप्त होना कहा गया है ।

२ पुनः यथा—छप्पय ।

अरि हु दंत तृन धरै, ताहि मारत न सबल कोइ ।
हम संतत तृन चरहिँ, बचन उच्चरहिँ दीन होइ ॥
अमृत-पय नित श्रवहिँ, बच्छ महि-थंभन जावहिँ ।
हिंदुहिँ मधुर न देहिँ, कटुक तुरकहिँ न पियावहिँ ॥

१ मृत्यु को प्राप्त हो । * पूरा पद्य 'विकस्वर' में देखिए ।

३ पुनः यथा—सवैया।

कामिनि कंत सौं, जामिनि चंद सौं, दामिनि पावस-मेघ-घटा सौं।
कीरति दान सौं, सूरति ज्ञान सौं, प्रीति बड़ी सनमान महा सौं॥
भूषन' भूषन सौं तरुनी, नलिनी नव पूषन-देव-प्रभा' सौं।
जाहिर चारहुँ ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सौं॥

—भूषण।

यह भी 'हिंदुवान खुमान सिवा सौं' उपमेय-वाक्य एवं 'कामिनि कंत सौं' आदि उपमान-वाक्य हैं। इन सबकी एक ही क्रिया 'लसै' कही गई है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'तुल्ययोगिता' अलंकार में केवल उपमेयों या उपमानों का एक धर्म कहा जाता है; और इसमें उपमेय तथा उपमान दोनों का एक ही धर्म कहा जाता है। यही इनमें अंतर है।

यहाँ भी इंद्र आदि उपमानों के साथ (लोक-पालन की समता करके) राजा मान का उल्लेख किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त "द्वितीय उल्लेखालंकार" में एक व्यक्ति एक ही वस्तु का पृथक्-पृथक् विषय-भेद द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन करता है; और यहाँ (तुल्ययोगिता में) एक उपमेय को अनेक उपमानों के साथ मिलाकर उसका वर्णन किया जाता है। वहाँ केवल गुण-कथन का तथा यहाँ अनेक उपमानों से समता का भाव होता है; यही इनमें अंतर है।

(१५) दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों की एक ही धर्मवाची क्रिया कही जाय, वहाँ 'दीपक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मुख मंजुल सुषमहिं लसत, मित्र-मयूखनि[1] कंज।
चख अंजन-अंजित झख रु, खंजन चपल सुरंज॥

यहाँ मुख एवं चख उपमेय और इनके कंज तथा झख, खंजन उपमानों की एक ही क्रिया 'लसत' का व्यवहार हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

चंचल निसि उदवस[2] रहैं, करत प्रात बसि राज।
अरविंदनि मैं इंदिरा, सुंदर नैननि लाज॥

—मतिराम।

यहाँ भी नेत्रों की लाज उपमेय और अरविंदों की श्री उपमान है। इन दोनों लिये 'उदवस रहैं' एवं 'राज करत' क्रियाएँ व्यवहृत हुई हैं।

१ सूर्य की किरणों में। २ उजड़ी हुई।

३ पुनः यथा—सवैया।

कामिनि कंत सौं, जामिनि चंद सौं, दामिनि पावस-मेघ-घटा सौं।
कीरति दान सौं, सूरति ज्ञान सौं, प्रीति बड़ी सनमान महा सौं॥
'भूषन' भूषन सौं तरुनी, नलिनी नव पूषन-देव-प्रभा[1] सौं।
जाहिर चारहुँ ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सौं॥

—भूषण।

यह भी 'हिंदुवान खुमान सिवा सौं' उपमेय-वाक्य एवं 'कामिनि कंत सौं' आदि उपमान-वाक्य हैं। इन सबकी एक ही क्रिया 'लसै' कही गई है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'तुल्ययोगिता' अलंकार में केवल उपमेयों या उपमानों का एक धर्म कहा जाता है; और इसमें उपमेय तथा उपमान दोनों का एक ही धर्म कहा जाता है। यही इनमें अंतर है।

(२) कुछ भाषा-ग्रंथों में लिखा है कि 'दीपक' का लक्षण उपमेय-उपमानों का गुण और क्रिया आदि एक धर्म होना है; किंतु वामनाचार्य के प्राचीन 'अलंकार-सूत्र' नामक ग्रंथ में वर्ण्य[2] अवर्ण्य[3] की एक ही क्रिया होना लिखा है। यथा—

"उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम्"

श्रीजीवानंद विद्यासागर-कृत 'साहित्य-दर्पण' की टीका से भी यही सिद्ध होता है। यथा—

"अत्रप्रस्तुतानामप्रस्तुतानां च एकानुगामिनी क्रिया सम्बन्धः"

इनके अतिरिक्त संस्कृत तथा भाषा के जितने उदाहरण देखे गए, उन सबमें भी केवल क्रिया का ही उपयोग है, अतः पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि 'कारक दीपक', 'माला दीपक', 'आवृत्ति-दीपक', 'देहलीदीपक' अर्थात् 'दीपक' मात्र में ही केवल क्रिया का सर्वत्र नियमित होना है।

१ सूर्यदेव की आभा। २ उपमेय। ३ उपमान।

(१६) कारक-दीपक

जहाँ क्रम पूर्वक अनेक क्रियाओं का एक ही कारक (कर्ता) हो, वहाँ 'कारक-दीपक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

सुनै मन हू की, सुनि सेस हू धुनै है सीस,
ये ही सुख परस-समै को सरसावै री।
देखि झट लेत उर-आसय समेत, पट
स्वाद रसना तें अति सरस बतावै री॥
गंध-गुन-औगुन गनावै दूर ही तें चित्त,
चंचल की चाल पल-पल की जनावै री।
पाँचों इंद्रियन के औ मन के अनेक, एक
नैनन नलिन-नैनी नाटक नचावै री॥

यहाँ श्रोत्रादि पाँचों इंद्रियो एवं मन के क्रमशः श्रवणादि एवं संकल्प-विकल्प विषयों या कार्यों को अपने नेत्रों द्वारा करनेवाली एक श्रीराधिकाजी ही कही गई हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

कंस तें पिता को बंस द्रोन-सुत-अस्त्र हू तें,
अंस अभिमन्यू को[1] उबारो अघ-हीना न।
पूतनादि पातकी विदूरथ लौं मारि, कौरू-
पांडुन भिराइ भूमि-भार दूर कीना न॥

[1] परीक्षित ।

सूचना—'चंद्रालोक' में इस 'माला-दीपक' अलंकार को एकावली के समीप स्थान दिया गया है; किंतु कई ग्रंथों में इसे 'दीपक' के समीप रखा गया है; और इसके नाम में भी 'दीपक' है; अतः यह 'दीपक' से ही विशेष संबंध रखता है।

(१८) आवृत्ति-दीपक

जहाँ क्रिया-शब्दों की आवृत्ति (एक से अधिक बार प्रयोग) हो, वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ पदावृत्ति-दीपक

जिसमें एक ही क्रिया-पद की आवृत्ति हो; और उन क्रिया शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

द्रवत न तन हू पै तनक, द्रवत न तें रन त्यागि।
लहत न तन पुनि तै अतन, यह अनिम तन त्यागि॥

यहाँ क्रिया-वाची एक ही 'द्रवत' शब्द दो बार आया है, और दोनों के 'पिघलना' एवं 'भागना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

पनिहारी पानी भरत, दृग बन भरत उछाल।
डग न भरत मग राकि रह्यो कहु पथी! किहिँ ख्याल?॥

यहाँ भी क्रिया-वाची 'भरत' शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है, और इनके क्रमशः '(पानी) भरना', '(उछाल) मारना' एवं '(पैर आगे को) बढ़ाना' भिन्न भिन्न अर्थ हुए हैं।

सूचना—'चंद्रालोक' में इस 'माला-दीपक' अलंकार को एकावली के समीप स्थान दिया गया है; किंतु कई ग्रंथों में इसे 'दीपक' के समीप रखा गया है; और इसके नाम में ही 'दीपक' है; अतः यह 'दीपक' से ही विशेष संबंध रखता है।

(१८) आवृत्ति-दीपक

जहाँ क्रिया-शब्दों की आवृत्ति (एक से अधिक वार प्रयोग) हो, वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ पदावृत्ति-दीपक

जिसमें एक ही क्रिया-पद की आवृत्ति हो; और उन क्रिया शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

द्रवत न तन हू पै तनक, द्रवत न जे रन त्यागि।
लहत न तन पुनि ते अनत, यह अंतिम तन त्यागि॥

यहाँ क्रिया-वाची एक ही 'द्रवत' शब्द दो वार आया है; और दोनों के 'पिघलना' एवं 'भागना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

पनिहारी पानी भरत, तू कत भरत उसास।
डग न भरत मग रुकि रह्यौ, कहु पथी! किहिँ आस?॥

यहाँ भी क्रिया-वाची 'भरत' शब्द का तीन वार प्रयोग हुआ है, और इनके क्रमश '(पानी) भरना', '(उच्छ्वास) मारना' एव '(पैर आगे को) बढ़ाना' भिन्न भिन्न अर्थ हुए हैं।

सूचना—'चंद्रालोक' में इस 'माला-दीपक' अलंकार को एकावली के समीप स्थान दिया गया है; किंतु कई ग्रंथों में इसे 'दीपक' के समीप रखा गया है, और इसके नाम में ही 'दीपक' है; अतः यह 'दीपक' से ही विशेष संबंध रखता है।

(१८) आवृत्ति-दीपक

जहाँ क्रिया-शब्दों की आवृत्ति (एक से अधिक बार प्रयोग) हो, वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' अलंकार होता है। इसके तीन भेद है—

१ पदावृत्ति-दीपक

जिसमें एक ही क्रिया-पद की आवृत्ति हो; और उन क्रिया शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

द्रवत न तन हू पै तनक, द्रवत न जे रन त्यागि।
लहत न तन पुनि ते अनन यह अनिम तन त्यागि॥

यहाँ क्रिया-वाची एक ही 'द्रवत' शब्द दो बार आया है, और दोनों के 'पिघलना' एव 'भागना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं।

२ पुन यथा—दोहा।

पनिहारी पानी भरत, तू कत भरत उसास।
डग न भरत मग रुकि रह्यो, कहु पथी! किहिँ आस?॥

यहाँ भी क्रिया-वाची 'भरत' शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है, और इनके क्रमश '(पानी) भरना', '(उच्छ्वास) मारना' एव '(पैर आगे को) बढ़ाना' भिन्न भिन्न अर्थ हुए हैं।

३ पुन यथा—दोहा ।

<u>जागत</u> हो तुम जगत में, भावसिंह ! बर-दान ।
<u>जागत</u> गिरिवर-कंदरनि, तव अरि तजि अभिमान ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी 'जागत' क्रिया-शब्द का दो बार व्यवहार हुआ है और इनके 'प्रकाशित रहना' तथा 'निद्रा न आना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं ।

सूचना—यह अलंकार पूर्वोक्त 'यमक' अलंकार का रूपांतर मात्र है; किंतु इन दोनों में यह अंतर रक्खा गया है कि क्रिया-पद की आवृत्ति से 'पदावृत्ति-दीपक' और अक्रिया-पद की आवृत्ति से 'यमक' अलंकार होता है ।

२ अर्थावृत्ति-दीपक

जिसमें एक अर्थ-वाचक भिन्न-भिन्न क्रिया-शब्दों की आवृत्ति हो ।

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

<u>सोहत</u> सर्वसहा[1] सिव-सैल तें, सैल हु काम-लतान-उमंग तें ।
काम-लता <u>बिलसै</u> जगदंब तें, अंब हु संकर के अरधंग तें ॥
संकर-अंग हु उत्तमअंग[2] तें, उत्तमअंग हु चंद-प्रसंग तें ।
चंद जटान के जूटन <u>राजत</u>, जूट जटान के गंग-तरंग तें ॥

यहाँ 'सोहत' 'बिलसै' एवं 'राजत' ये तीन भिन्न-भिन्न क्रिया-शब्द हैं, पर तीनों एक ही अर्थ 'शोभित होना' में प्रयुक्त हुए हैं ।

---

१ पृथ्वी । २ मस्तक ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

दोऊ दुहूँ चाहैं दोऊ दुहुँन सराहैं सदा,
दोऊ रहैं लोलुप दुहूँन छवि न्यारी के।
एकै भए रहैं नैन मन प्रान दोहुँन के,
रसिक वनेई रहैं दोऊ रस-क्यारी के॥
'हरि औध' केवल दिखात द्वै सरीर ही है,
नातो भाव दीखै है महेस-गिरि-धारी के।
प्रान-प्यारे-चित में निवास प्रान-प्यारी रखै,
प्रान-प्यारो बसत हिये में प्रान-प्यारी के॥

—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में 'निवास रखै' एवं 'बसत' एकार्थ-वाचक, पर भिन्न-भिन्न क्रिया-शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

३ पदार्थावृत्ति-दीपक

जिसमें पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो, अर्थात् वही क्रिया-पद उसी अर्थ में एक से अधिक बार व्यवहृत हुआ हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

विषयिन के सतोष नहिं, नहिं लोभिन के लाज ।
वार-वधुन के नेह नहिं नहि नदियन के पाज ॥

यहाँ 'नहिं' क्रिया-पद का एक ही अर्थ में चार बार व्यवहार किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

संपति के आखर ते पाँय मैं लिखे हैं, लिखे
भुव-भार थाँभिवे के भुजनि विसाल मैं।
हिय मैं लिखे हैं हरि-मूरति वसाइवे कों,
हरि-नाम आखर सो रसना रसाल मैं॥
आँखिन मैं आखर लिखे हैं कहै 'रघुनाथ',
राखिवे कों दृष्टि सब ही के प्रतिपाल मैं।
सकल दिसान वस करिवे के आखर ते,
भूप वरिबंड के विधाता लिखे भाल मैं॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी 'लिखे' क्रिया-शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार प्रयोग हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

फोरि डारौं फलक[1] जमीन जोरि डारौं वल,
वारिध मैं वैरिन के वृंद वोरि डारौं मैं।
रोरि डारौं रन घन घोरि डारौं वज्री-वज्र,
छोरि डारौं वारिध-मजाद तोरि डारौं मैं॥
'अवधविहारी' रामचंद्र को हुकुम पाऊँ,
चंद कौं निचोरि मेरु कौं मरोरि डारौं मैं।
मोरि डारौं मान, मानी मूढ़ महिपालन की
नाक तोरि डारौं औ पिनाक तोरि डारौं मैं॥
—अवधविहारी।

यहाँ भी लक्ष्मणजी की उक्ति में 'डारौं' क्रिया-शब्द एक ही अर्थ में अनेक बार आया है।

१ आकाश।

पदार्थावृत्ति-दीपक-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

दौरे कात कंक[1] करतारी कर तारी दै-दै,
दौरी कालो किलकत सुधा की तरंग सौं।
कहै 'हरिकेस' दंत पीसत खवीस[2] दौरे,
दौरे मंडलीक गीध गीदर उमंग सौं॥
वीर जयसिंह! जंग-जालम सु कौनपर,
फरकाई भुज त्यौं चढ़ाई भौंहैं भंग सौं।
भंग डारि मुख सौं, भुजन सौं भुजंग डारि,
हर्षि हर दौरे, डारि गौरी अरधंग सौं॥
—हरिकेश।

यहाँ 'दौरे' क्रिया-पद का 'दौड़ना' अर्थ में चार वार एवं 'डारि' क्रिया-पद का 'डालना' अर्थ में तीन वार प्रयोग हुआ है। दो जगह यही चमत्कार होने के कारण यह माला है।

सूचना—यह अलंकार एक प्रकार का पूर्वोक्त 'शब्दावृत्ति-लाटानुप्रास' ही है, किंतु क्रिया-शब्द की आवृत्ति में 'पदार्थावृत्ति-दीपक' और अक्रिया-शब्द की आवृत्ति में 'शब्दावृत्ति-लाटानुप्रास' जानना चाहिए।

विशेष सूचना—उक्त चार 'दीपक' अलंकारों के अतिरिक्त 'देहरी-दीपक' नामक अलंकार का बिहारी-सतसई की टीका लाल-चंद्रिका में एवं अलंकार-मंजूषा में यह लक्षण लिखा है—

"परै एक पद बीच में, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है 'दीपक-देहरी', जानत हैं सब कोइ॥"

किंतु किसी अन्य ग्रंथ में यह नहीं पाया जाता, और हमको इसमें कोई ऐसा चमत्कार नहीं दिखाई देता जिससे इसकी अलग गणना की जा सके क्योंकि इसमें जो पद देहरी-दीपकवत् आता

१ पक्षी-विशेष। २ प्रेत-विशेष।

है वह दो पक्षों में गृहीत होता है; इस प्रकार उस पद की एक साथ से आवृत्ति हो जाती है; अतः यह 'पदार्थावृत्ति-दीपक' का ही संक्षिप्त स्वरूप ही है। सुतरां इसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं—

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

विरचि विरंचि ने प्रपंच पंचभूतन तें,
रचना विचित्र लोक लोकप घनेरे की।
जीव जड़ जंगम भुजंगम अगूढ़ गूढ़,
बरनौं कहाँ लौं मतिमूढ़ बिन बेरे की'॥
पूरन लौं काम, श्रम हरन तमाम तथा
हेतु-उपराम' यह बात मन मेरे की।
भागवत व्यास, विनै-पत्रिका पियूष पूरि
तुलसी, बनाई त्यौं निकाई मुख तेरे की॥

यहाँ 'बनाई' क्रिया-पद 'देहरी-दीपक' है। यह 'भागवत और विनय-पत्रिका बनाई' एवं 'मुख की निकाई बनाई' दोनों पर देहरी-दीपकवत् प्रकाश डालता है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

वंदउँ विधि-पद रेनु, भव-सागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा, ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी॥
—रामचरितमानस।

यहाँ भी 'प्रगटे' क्रिया-शब्द मध्य में है; और पूर्व के 'संत सुधा, ससि धेनु' एवं उत्तर के 'खल बिष बारुनी' दोनों में समान रूप से लगता है।

१ बिना पूछे ही। २ शांति।

(१६) प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों में एक ही धर्म का एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा वर्णन किया जाय, वहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण।

स्यामल घटा मैं ज्यौं चमंक चपला की चारु,
नीले दुपटा मैं त्यौं दमंक दुति पीली की। ⊛

यहाँ नीला दुपट्टा और श्रीराधिकाजी की पीली अंग-द्युति उपमेय और श्यामल घटा एवं चपला की चमक उपमान-वाक्य हैं। इनका 'चमंक' एवं 'दमंक' एकार्थ-वाची शब्दों से एक ही धर्म 'चमकना' कहा गया है।

२ पुन: यथा—दोहा।

बीती बरषा-काल अब, आई सरद सुजाति।
गई अँधारी, होति है, चारु चाँदनी राति॥
—केशवदास।

यहाँ भी वर्षा-काल एवं शरद्-ऋतु उपमेय और 'अँधारी' एवं 'चाँदनी राति' उपमान-वाक्य हैं। इनके क्रमशः 'बीती' एवं 'गई' और 'आई' एवं 'होति है' एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा चला जाना एवं आना एक-एक ही धर्म कहे गए हैं। दो होने के कारण माला है।

⊛ पूरा पद्य 'स्वभावोक्ति' की सूचना में देखिए।
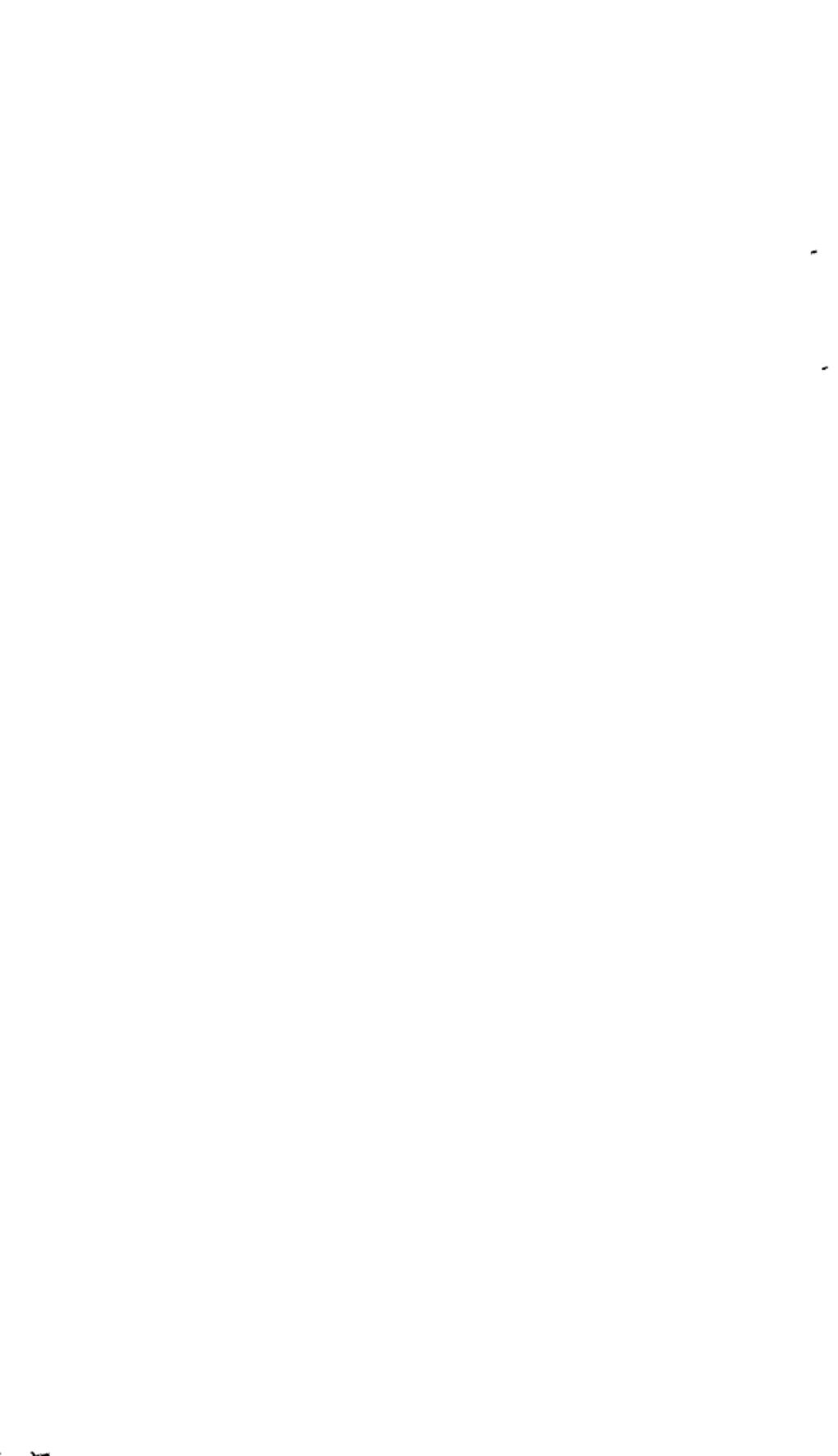
(२०) दृष्टांत

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों और इनके साधारण धर्मों का विंब-प्रतिविंब भाव[1] हो, अर्थात् उपमेय-वाक्य को उपमान-वाक्य से दृष्टांत दिया जाय, वहाँ 'दृष्टांत' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दीन दरिद्रिन दुखिन को, करत न प्रभु अपकार।
केहरि कबहुँ कि कृमिन पै, करतल करत प्रहार॥

यहाँ पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य एवं उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य है; और 'अपकार (तिरस्कार) न करना' एवं 'प्रहार न करना' ये उन दोनों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सबका विंब-प्रतिविंब-भाव है, अर्थात् उपमेय-वाक्य को उपमान-वाक्य से दृष्टांत दिया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तुम तारत अपनी प्रजहिं, कहा अधिक उपकार।
वारिहु बोरत दारु[2] नहिं, अपनो अंग विचार॥

---

१ 'विंब' किसी तेजस पदार्थ के मंडल को एवं 'प्रतिविंब' उस विंब के आभास (अक्स) को कहते हैं। जैसे—"राजा में उसी प्रकार प्रताप है, जिस प्रकार सूर्य में तेज" इस वाक्य में राजा उपमेय एवं प्रताप इसका धर्म है, यह दोनों विंब हैं, तथा सूर्य उपमान एवं तेज इसका धर्म है, जो दोनों प्रतिविंब हैं। यहाँ राजा उपमेय एवं सूर्य उपमान का और इनके प्रताप एवं तेज साधारण धर्मों का दृष्टान्त (नज़ीर) रूप से वर्णन हुआ है। इसीको विंब-प्रतिविंब भाव कहते हैं। २ काठ।

विशेष सूचना—किसी-किसी भाषा-ग्रंथ में इस 'दृष्टांत' अलंकार के साथ ही **'उदाहरण'** नामक अलंकार भी अलग मानकर वा उसके भेद की भाँति इस आधार पर लिखा है कि इसको प्राचीनों ने भिन्न माना है; और यह लक्षण लिखा है—

"ज्यौं, यौं, जैसे कहि करिय, जुग घटना सम तूल ।
'उदाहरन' भूषन कहैं, ताहि सुकवि बुधि-मूल ॥"

किंतु संस्कृत एवं भाषा के प्रायः अलंकार-ग्रंथों में यह भिन्न नहीं माना गया है; और केवल ज्यौं, जिमि आदि वाचकों का होना या न होना उसकी भिन्न-गणना करने के लिये पर्याप्त कारण नहीं है; अतः यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं—

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

सक्र सुधाकर आदिन आदि सुधाद' सुधा के सवाद सँतोषनि ।
जो जन जान्हवी-तीर बसैं नित ता जल को जो दलै दुख दोषनि ॥
जानि सरोवर, गोरस चाखन चाहै पियो पय कूप खरो 'खनि ।
पाठक त्यों मम भाषिन लौं अभिलाषहिं लै ख लाज सकोलनि ॥

यहाँ कविता के पाठकों का वृत्तान्त उपमेय-वाक्य और देवगण एवं गंगातट निवासियों का वृत्तान्त उपमान वाक्य है तथा इस कविता को पढ़ना उपमेय का धर्म और 'गोरस चखना' एवं 'कूप-जल पीना' उपमानों के भिन्न भिन्न साधारण धर्म हैं इन सब का बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'त्यों' के द्वारा वर्णन हुआ है

१ देवता । २ गंगा ।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं॥

—रामचरितमानस

यहाँ भी समाहृत ' खल का वृत्तांत उपमेय-वाक्य एवं हिम-उपल (बरफ)-वृत्तांत उपमान-वाक्य है; और 'शरीर त्याग देना' उपमेय का एवं 'नष्ट हो जाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'जिमि' के द्वारा वर्णन हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा।

खेत बनाइ किसान यों, करत मेह-अवसेर।
वासकसज्जा बाम ज्यों, रहति कंत-मग हेर॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

यहाँ भी किसान का वृत्तांत उपमेय वाक्य एवं वासकसज्जा नायिका का वृत्तांत उपमान-वाक्य है, और 'वर्षा की प्रतीक्षा करना' उपमेय का एवं 'नायक की राह देखना' उपमान का, भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से, 'यों' 'ज्यों' वाचक-शब्द द्वारा वर्णन हुआ है।

४ पुनः यथा—दोहा।

मिसरी माहैं मेल करि, माल बिकाना बंस।
यों दादू महिगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस॥

—दादूदयाल।

यहाँ भी 'पारब्रह्म मिलि हंस' उपमेय-वाक्य एवं 'मिसरी में

1 इकट्ठे किए हुए।

मेल करि, वंस' उपमान-वाक्य है। 'महिँगा भया' उपमेय का और '(मिसरी के भाव) माल विकाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'यों' द्वारा वर्णन हुआ है।

(२१) निदर्शना

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों के अर्थों में भिन्नता होते हुए भी एक में दूसरे का इस प्रकार से आरोप किया जाय, जिससे उनमें समानता जान पड़े, वहाँ 'निदर्शना' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम निदर्शना

जिसमें उपमेय-उपमान-वाक्यों के समान अर्थों का अभेद आरोप हो (अर्थात् दोनों की एकता कही जाय)। ऐसा आरोप प्रायः 'जे' 'ते' 'जो' सो' आदि वाचक-शब्दों के द्वारा होता है। इसको 'वाक्यार्थ-वृत्ति' निदर्शना भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा :

बरनत नायक नायिका, हरि राधा तजि आन।
सो कवि त्यागत कल्पतरु धूरे गहत अजान॥

यहाँ "श्रीकृष्ण एवं राधिका को छोड़कर किसी अन्य नायक-नायिका का वर्णन किया जाना" उपमेय-वाक्य है, जिसमें

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीँ। जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीँ।

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी समाहृत[1] खल का वृत्तांत उपमेय-वाक्य एवं हिम-उपल (बरफ)-वृत्तांत उपमान-वाक्य है; और 'शरीर त्याग देना' उपमेय का एवं 'नष्ट हो जाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'जिमि' के द्वारा वर्णन हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा।

खेत बनाइ किसान यौं, करत मेह-अवसेर।
वासकसज्जा बाम ज्यौं, रहति कंत-मग हेर॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

यहाँ भी किसान का वृत्तांत उपमेय वाक्य एवं वासकशय्या नायिका का वृत्तांत उपमान-वाक्य है, और 'वर्षा की प्रतीक्षा करना' उपमेय का एवं 'नायक की राह देखना' उपमान का, भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से, 'यौं' 'ज्यौं' वाचक-शब्दों द्वारा वर्णन हुआ है।

४ पुन. यथा—दोहा।

मिसरी माहँ मेल करि, माल बिकाना बंस।
यों 'दादू' महँगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस॥

—दादूदयाल।

यहाँ भी 'पारब्रह्म मिलि हंस' उपमेय-वाक्य एवं 'मिसरी माहँ

1 ऊपर से लाए हुए।

ल करि, वंस' उपमान-वाक्य है। 'महिँगा भया' उपमेय का और मिसरी के भाव) माल विकाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। न सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'यौं' द्वारा वर्णन आ है।

(२१) निदर्शना

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों के अर्थों में भिन्नता होते हुए भी एक में दूसरे का इस प्रकार से आरोप किया जाय, जिससे उनमें समानता जान पड़े, वहाँ 'निदर्शना' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम निदर्शना

जिसमें उपमेय-उपमान-वाक्यों के समान अर्थों का अभेद आरोप हो। (अर्थात् दोनों की एकता कही जाय)। ऐसा आरोप प्रायः 'जे ते' 'जो सो' आदि वाचक-शब्दों के द्वारा होता है। इसको 'वाक्यार्थ-वृत्ति' निदर्शना भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा

बरनत नायक नायिका हरि राधा तजि आन।
सो कवि त्यागत कल्पतरु धूरे गहत अजान॥

यहाँ "श्रीकृष्ण एवं राधिका को छोड़कर किसी अन्य नायक-नायिका का वर्णन किया जाना" उपमेय-वाक्य है जिसने

(ख) उपमान के गुण का उपमेय में आरोप ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पारस की सुवरन-करन[1], वारिद-वरसन-वान ।
धनद-कोप की सरसता[2], राम-पानि पहिचान ॥

यहाँ पारस, वारिद और धनद-कोप उपमानों के क्रमशः सुवर्ण करने, वरसने और सरसता गुणों का श्रीरघुनाथजी के हाथ उपमेय में आरोप किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

भारती को देखा नहीं कैसा है रमा का रूप ,
केवल कथाओं में ही सुने चले आते हैं ।
सीताजी का शील सत्य, वैभव शची का कहीं ,
किसी ने लखा ही नहीं ग्रंथ ही बताते हैं ॥
'दीन' दमयंती की सहन-शीलता की कथा ,
झूठी है कि सच्ची कौन जाने कवि गाते हैं ।
इंदूपुर-वासिनी प्रकाशिनी मल्हार वंश ,
मातु श्रीअहल्या में सभी के गुण पाते हैं ॥

—लाला भगवानदीन ।

यहाँ भी अहल्या बाई उपमेय में भारती रमा सीता शची और दमयंती उपमानों के गुणों का आरोप किया गया है ।

इस भेद की माला १ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुजन सभागिन के बनै, बैननि सुधा मिठास ।
कुसुम-झरन कल हास में, मुख मैं चंद प्रकास ॥

१ स्पर्श द्वारा स्वर्ण करने की । २ कुबेर के खजाने का अक्षयत्व गुण ।

यहाँ वचन, हास एवं मुख उपमेयों में क्रमशः अमृत, फूल एवं चंद्रमा उपमानों के मिठास, झड़ने एवं प्रकाश गुणों का आरोप किया गया है; अतः माला है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

व्याल,मृनाल सुडाल कराकृति, भारतेजू की भुजान मैं देख्यौ।
आरसी सारसी' सूर ससी दुति आनन-आनँदखान मैं देख्यौ।
मैं मृग मीन मृनालन की छबि 'दास' उन्हीं अँखियान मैं देख्यौ।
जो रस ऊख मयूख पियूष मैं सो हरि की बतियान मैं देख्यौ।
—भिखारीदास

यहाँ भी प्रथम चरण में व्याल, मृणाल, डाल एवं सूँड़ उपमानों का आकृतिवाला गुण भुजा उपमेय में स्थापित हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में भी हैं; अतः माला है ।

३ तृतीय निदर्शना

जिसमें अपनी सत् या असत् (भली, बुरी) क्रिया से अन्य को सत् या असत् अर्थ (व्यवहार) की शिक्षा दी जाय।

१ उदाहरण यथा—छप्पय ।

यद्यपि संत हु सहत कष्ट कहिं कर्म-उदय तें ।
तदपि होत उन्नत अवस्य पुनि तप-संचय तें ॥
देखिय दुष्ट दिगंत-भूमि भोगन समस्त सुख ।
किंतु होत संतान प्रान जुत अंत अस्त सुख ॥
मुनि वालमीकि-नारद-चरित उक्तासय उत्तम कहत।
...म-पाप, लंकेस अरु कंस-असुर-चरितन लहत॥

१ कमलिनी ।

यहाँ "संतों का किसी प्रकार कष्ट सहकर भी अंत में उन्नत हो जाना" और "दुष्टों का साम्राज्यादि सुख भोगकर भी अंत में बिलकुल नष्ट हो जाना" उपमेय-वाक्य हैं, जिनके सन् और असत् अर्थों की शिक्षा अन्यों को महर्षि वाल्मीकि एवं देवर्षि नारद के और रावण एवं कंस के चरित्रों (जो उपमान-वाक्य हैं) की क्रियाएँ देती हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

तप-बल पद पावै अचल, खीन पुन्य गिरि जाइ।
उन्नत है ध्रुव कहत अरु, उडु गिरि रहे बताइ॥

यहाँ भी भक्त ध्रुव के उन्नत होने की क्रिया के द्वारा और अन्य तारागणों के टूटकर गिर पड़ने की क्रिया के द्वारा क्रमशः तपोबल से उच्च पद पाने रूप सदर्थ की और क्षीण-पुण्य से गिरने रूप असदर्थ की शिक्षा देना कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

तजि आसा तन प्रान की, दीपहिं मिलत पतंग।
दरसावत सब नरन कौं, परम प्रेम को ढंग॥
—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी पतंग का प्राण-आशा त्यागकर दीपक से मिलने की क्रिया के द्वारा शुद्ध प्रेम के सदर्थ की शिक्षा देना कहा गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

मधुप! त्रिभंगी हम तजी, प्रगट परम करि प्रीति।
प्रगट करत सब जगत मैं, कटु कुटिलन की रीति॥
—मतिराम।

यहाँ भी 'कुटिलों में कुटिलता होती है' इस असदर्थ की शिक्षा श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों को त्याग देने की क्रिया से दी गई है।

यहाँ वचन, हास एवं मुख उपमेयों में क्रमशः अमृत, पु[illegible] एवं चंद्रमा उपमानों के मिठास, झड़ने एवं प्रकाश गुणों का आरोप किया गया है; अतः माला है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

ब्याल,मृनाल सुडाल कराकृति, भावतेजू की भुजान में देख्यो।
आरसी सारसी[1] सूर ससी दुति आनन-आनँदखान में देख्यो॥
मैं मृग मीन मृनालन की छवि 'दास' उन्हीं अँखियान में देख्यो।
जो रस ऊख मयूख पियूष में सो हरि की बतियान में देख्यो॥
—भिखारीदास।

यहाँ भी प्रथम चरण मे ब्याल, मृणाल, डाल एवं सूँड़ उप[illegible]मानों का आकृतिवाला गुण भुजा उपमेय में स्थापित हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनो चरणों में भी हैं, अतः माला है ।

३ तृतीय निदर्शना

जिसमें अपनी सत् या असत् (भली, बुरी) क्रिया से अन्य को सत् या असत् अर्थ (व्यवहार) की शिक्षा दी जाय।

१ उदाहरण यथा—छप्पय ।

यद्यपि संत हु सहत कष्ट कहिं कर्म-उदय तें।
तदपि होत उन्नत अवश्य पुनि तप संचय तें॥
देखिय कृष्ण दिगत नृप भागत समरत सुर।
किन्तु होत खलजन प्रान जुत रत असत सुर॥
मुनि वाल्मीकि नारद चरित उदाहरण उत्तम दरस।
परिनाम पाप लंकेस अरु कंस असुर चरितन लरस॥

1 कर्मदर्पण ।

सूचना—'प्रतिवस्तूपमा' में उपमेय-उपमान दोनों वाक्य एक दूसरे से निरपेक्ष होते हैं; और इसमें उक्त दोनों वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं, यही भिन्नता है।

(२२) व्यतिरेक

जहाँ उपमेय में (उपमान की अपेक्षा) उत्कर्ष और उपमान में अपकर्ष दिखलाने के द्वारा उपमेय की उत्कृष्टता (विशेषता) का वर्णन हो, वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम व्यतिरेक, उपमेय में उत्कर्ष का

१ उदाहरण यथा—सवैया।

अंग अनंग की जोति जगै तनु-संग न भृंग तजैं मधुहारी[1]।
पान-प्रमान चढ़ै मदिरा तव ध्यानहिं वीर! महा मदकारी।
मान-विमोचन भौंह-कमान विलोचन-वान कटाछ-कटारी।
श्रीव्रजचंद-चितौन को चुंबक तो मुख, अंबुज-अंबकवारी[2]!

यहाँ द्वितीय चरण में मद्य उपमान से नायिका उपमेय में 'ध्यान मात्र' द्वारा अधिक मादकता होने का उत्कर्ष कहा गया है।

२ पुन. यथा—कवित्त।

कीधौं मुख-कंज में मरालवाहिनी[3] की मंजु,
कोमल कमल-दल-तलप[4] रँगीली है।
कीधौं रस-राग-रस[5] जाँचिवे की जंत्रिका है,
कीधौं वेद बाँचिवे की बाँसुरी सुरीली है॥

१ मकरंद-लोभी। २ कमल-नयनी! ३ शारदा। ४ शय्या। ५ रस=राग=छः, रस=शृंगारादि नव रस और कटु आदि षट्रस।

[illegible] को निषेध होते हैं और दूसरी तरह दोनों [illegible] यहाँ मिलता है।

---

(२२) व्यतिरेक

जहाँ उपमेय में (उपमान की अपेक्षा) उत्कर्ष या उपमान में अपकर्ष दिखलाने के द्वारा उपमेय की उत्कृष्टता (विशेषता) का वर्णन हो, वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम व्यतिरेक, उपमेय में उत्कर्ष का

१ उदाहरण यथा—सवैया।

अंग अनंग की जोति जगी तनु-संग न भृंग तजै मधुहारे[1]।
पान-प्रमान चढ़ै मदिरा तव ध्यानहिं वीर! महा मदकारे।
मान-विमोचन भौंह-कमान विलोचन-बान कटाक्ष-कटारे।
श्रीव्रजचंद-चितौन को चुंबक तो मुख, अंबुज अंबकवारी[2]!

यहाँ द्वितीय चरण में मद्य उपमान से नायिका उपमेय में 'ध्यान मात्र' द्वारा अधिक मादकता होने का उत्कर्ष कहा गया है।

२ पुन यथा—कवित्त।

कीधौं मुख कंज में मरालवाहिनी[3] की मंजु,
कोमल कमल-दल-तलप[4] रंगीली है।
कीधौं रस-राग-रस[5] जाँचिबे की जिह्वा है,
कीधौं वेद बाँचिबे की बाँसुरी सुरीली है॥

---

१ मकरंद-लोभी। २ कमल-नयनी। ३ शारदा। ४ शय्या। ५ रस राग = ६, रस = शृंगारादि नव रस और कटु आदि षट्‌रस।

कीधौं पटु प्रीतम छबीले छलिया की छल-
गाँठ खोलिबे की चारु चाबी चटकीलो है।
रीझिहैं रसिक लाल देखि मेरी राधाजू की,
रसना रसाल' हू के रस तें रसीली हैं॥

यहाँ भी श्रीराधारानी की रसना उपमेय में आम्रफल उपमान के रस से भी अधिक रसीलापन बतलाया गया है।

२ द्वितीय व्यतिरेक, उपमान में अपकर्ष का

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

लागी है न लगन विरागी बड़भागिन के,
त्यौं न अनुरागिन के वाके सुमरन की।
दीखत दयालुता न पातकी दुखीन दीन,
देखिकै दुरित' दुख दारिद दरन की॥
स्याम-मन भाई चतुराई हू न आई वाहि,
पाई प्रभुताई ना कन्हाई के करन की।
ममता करै सो अरविंद की अधमता है,
समता लहै ना रानी राधिका-चरन की॥

यहाँ श्रीवृषभानु-नंदिनी के 'चरण' उपमेय की अपेक्षा 'कमल' उपमान में 'लागी है न लगन' आदि अपकर्ष कहे गए हैं।

२ पुन यथा—कवित्त।

देखि तनु-जोति विज्जु लज्जित विसेष होति,
कपिन सरीर दुरि-दुरिकै दिखायौ जाइ।
चंपक-सुमन को सघन गंध, हाटक हू,
निपट निगंध पटतर क्यौं बतायौ जाइ॥

१ आम। २ पाप। ३ सुवर्ण। ४ समता।

मेटत प्रकास ज्यौं उसास आरसी के लागि,
अंगराग जौ पै इन अंगन लगायौ जाइ।
चीर लपटायौ पै सवायो तनु तेज पायौ,
झीनीं बदरी तें ज्यौं छपाकर छिपायौ जाइ॥

यहाँ भी पूर्वार्द्ध में श्रीराधारानी की अंग-द्युति उपमेय से बिजली, चंपक-पुष्प एवं सुवर्ण उपमानों में क्रमशः लज्जित, अप्रभ और निर्गंध होने का अपकर्ष बतलाया गया है।

३ पुनः यथा—चौपाई।

गिरा मुखर[1] तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही॥
—रामचरित मानस

यहाँ भी जगज्जननी जानकीजी उपमेय से गिरा, भवानी, रति एवं रमा उपमानों में मुखरता आदि का अपकर्ष कहा गया है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

कोऊ बिगरी है तरी तीर मैं बनावन कौं,
कोऊ सुधरी तो रही नाहक धरी-धरी।
कोऊ पधरी तो कछु दूर जाइ फेरि अरी,
कोऊ सरी संग-त्रस नीर मैं परी-परी॥
कोऊ पतरी सी बही फूल की छरी सी आप,
कोऊ ऊबि डूबि गई भार तें भरी भरी।
श्रीयुत नरेस चंद्रसेखरजू! मेरे जान,
रावरी तरी के तीर और ना तरी तरी॥
—महामहोपा० राय प० देवीप्रसाद शुक्ल कवि-चक्रवर्ती

1 वाचाल।

सूचना—यद्यपि किसी-किसी ग्रंथ में उपमेय की अपेक्षा उपमान के उत्कर्षता तथा उपमेय-उपमान-वाक्यों में किंचित् विलक्षणता के ([illegible]धिक) वर्णन में भी 'व्यतिरेक' अलंकार माना है; और कहा है कि [illegible] भेद से इसके शतशः प्रकार हो सकते हैं; तथा 'अलंकार-आशय' में इसके २२ प्रकार के लक्षण एवं उदाहरण लिखे हैं; तथापि इन्हें अनपेक्षित [illegible] करते हुए हमने इतना अधिक विस्तार न करके प्राय. ग्रंथों के अनुसार [illegible] मुख्य दो ही भेद लिखे हैं।

(२३) सहोक्ति

जहाँ सह, संग, साथ आदि शब्दों की सामर्थ्य से एक ही क्रिया-शब्द दो अर्थों का (एक का प्रधानता से और दूसरे का गौणता से) बोधक हो, वहाँ 'सहोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुल कीरति गुन मान मति, महत रहत धन-साथ।
ज्ञान भक्ति तप त्याग उर, आवत सह-रघुनाथ॥

यहाँ दो सहोक्तियाँ हैं, पूर्वार्द्ध में 'रहत' क्रिया-शब्द 'साथ' शब्द की सामर्थ्य से धन एवं कुल दो अर्थों का बोधक हो गया है; और धन के साथ प्रधानता से तथा कुल आदि के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है, इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में 'आवत' क्रिया-शब्द 'सह' शब्द की सत्ता से दो अर्थों का सूचक हुआ है।

सिंगिलेन सुता-मन-लागति त्यों गुनि गंनि है तो [illegible]
भृगुनाथ के गर्व प्रगंटिन गात सों नैजनि के रघुनाथ सिगरे।

—सेठ कन्हैयालाल पो

यहाँ प्रथम चरण में 'उठायो' क्रिया-शब्द 'साथ' शब्द के सामर्थ्य से शिव-चाप तथा रोमांच दो अर्थों का बोधक हो गया और शिव-चाप के साथ प्रधानता से एवं 'रोमांच' के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में तीन सहोक्तियाँ हैं; अतः माला है।

सूचना—'सहोक्ति' अलंकार में 'सह' आदि शब्दों के साथ चमत्कारिक (मनोरंजक) अर्थ होना आवश्यक है, साधारण वर्णन में 'सह' आदि शब्द होते हुए भी यह अलंकार नहीं होता। जैसे—"[illegible] सुनिहिं सिर सहित-समाजा" में चमत्कार का अभाव है।

---

(२४) विनोक्ति

जहाँ कोई प्रस्तुत किसी वस्तु के बिना अशोभन अथवा किसी के बिना शोभन कहा जाय, वहाँ 'विनोक्ति' अलंकार होता है। इसका वाचक प्रायः 'बिना' शब्द होता है; किंतु कहीं 'हीन' 'रहित' 'न हो' आदि भी होते हैं। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विनोक्ति, अशोभन की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लसत न पिय-अनुराग बिन तिय के सरस सिँगार।
[illegible] के वैराग बिन, त्यों वेदांत-विचार॥

यहाँ पति के प्रेम विना स्त्री के शृंगार की एवं वैराग्य के विना पंडितों के वेदांत-विचार (प्रस्तुतों) की अशोभनता कही गई है।

२ पुन. यथा—कवित्त।

सुंदर सरीर होइ, महा रनधीर होइ,
वीर होइ भीम सो भिरैया आठों जाम को।
गरुओ गुमान होइ, भलो सावधान होइ,
सान होइ साहिबी प्रताप-पुंज-धाम को॥
भनत 'अमान' जो पै मघवा महीप होइ,
दीप होइ वंस को, जनैया गुन-ग्राम को।
सर्व गुन-ज्ञाता होइ, जद्यपि विधाता होइ,
दाता जो न होइ तो हमारे कौन काम को॥

—अमान।

यहाँ भी कवि द्वारा किसी राजा में (सुंदर शरीर आदि अनेक गुण होते हुए भी) "दाता जो न होइ तो हमारे कौन काम को" यह अशोभनता 'न होइ' वाचक द्वारा बतलाई गई है।

विनोक्ति अशोभन की माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

गुन विन धनु जैसे, गुरु विन ज्ञान जैसे,
मान विन दान जैसे, जल विन सर है।
कंठ विन गान जैसे हेत विन प्रीति जैसे
वेस्या रस-रीति जैसे फल विन तर है॥
तार विन जंत्र जैसे स्याने विन मंत्र जैसे
नर विन नारि जैसे, पूत विन घर है।
'टोडर' सुकवि जैसे मन में विचारि देखो
धर्म विन धन जैसे, पक्षी विन पर है॥

—राजा टोडरमल।

यहाँ 'गुन बिन भनु' आदि भाग्यों में अशोभन की
भी विनोक्तियाँ हैं; अतः माना है।

२ द्वितीय विनोक्ति, शोभन की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बिन कज्जल कारे नयन, निरखि अधिक आनंद।
मुख मञ्जुल दूनो दिपत, बिन मंडन[1] जिमि चंद॥

यहाँ शोभन की दो विनोक्तियाँ हैं। कज्जल के बिना का
नेत्र अधिक आनंदकारी और मंडन के बिना मंजुल मुख चंद्रमा
तरह दूना देदीप्यमान बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

देखत दीपति दीप की, देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग में, बिना कपट को नेह॥
—मतिराम।

यहाँ भी पतंग का दीपक-ज्योति में बिना कपट का (पवि
प्रेम रखना कहा गया है।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

लाज बिना राजत नहीं, कुल-तिय लोचन त्याग।
लाज बिना राजत सही, गनिका हरि-जन फाग॥

यहाँ लज्जा के बिना कुलांगना, नेत्र और दान शोभित
होने मे अशोभन की एवं लज्जा के बिना वेश्या, भक्त और प
शोभित होने में शोभन की विनोक्ति है।

---

१ आभूषण।

३ पुन: यथा—दोहा ।

तप्यौ आँच अब विरह की, रह्यौ प्रेम-रस भोजि ।
नैननि के मग जल वहै, हियो पसीजि-पसीजि ॥
—विहारी ।

यहाँ भी नायक के विरह-निवेदन प्रस्तुतार्थ में वियोगाग्नि एवं प्रेम-जल से पसीजकर नेत्रों द्वारा अश्रु-जल निकलने में अर्क निकलने की रीति के अप्रस्तुत वृत्तांत का भी बोध होता है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'श्लेष' अलंकार में विशेष्य भिन्न-भिन्न होते हैं; और जितने अर्थ हों, वे सभी प्रस्तुत होते हैं। यहाँ प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है। यही इन दोनों में अंतर है।

विशेष सूचना—कविराजा मुरारिदान ने 'जसवंत-जसोभूषण' नामक ग्रंथ में 'समासोक्ति' पद में 'समास' शब्द का अर्थ 'संक्षेप' करके 'थोड़े से अधिक कहना' इसका लक्षण कहा है, और यह उदाहरण दिया है—

"उन्नत बरत जु पीन कुच, गहत जु सुंदर केस ।
हरत बसन धन भुवि खदिर, तुव अरि-तियन नरेस ! ॥"

प्रस्तुत खदिर (खैर)-वृक्ष का वृत्तांत कहने में अप्रस्तुत कामी-पुरुष की चेष्टाओं का भी बोध होना, थोड़े से अधिक कहने के इस लक्षण से इसको घटित किया है और इसी आधार पर साक्षात् विष्णु-अवतार दिव्यदर्शी-भगवान् वेदव्यास आदि [illegible] (समासोक्ति-सूचक) निम्न लक्षणों का [illegible] किया है—

भगवान् वेदव्यास का मत [illegible]

[illegible]

महाराज भोज का मत—

[illegible]

आचार्य दंडी का मत—

"वस्तु किञ्चिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ।
उक्तिः संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते ॥"

मम्मटाचार्य का मत—

"परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः ।"

राजानक रुय्यक का मत—

"विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः ।"

कविवर जयदेव का मत—

"समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।"

उन्होंने लिखा है—"समासोक्ति शब्द के वास्तविक स्वारस्य को जानते हुए उदाहरणों में भ्रम करके प्राचीनों ने प्रस्तुत से अप्रस्तुत की गम्यता में 'समासोक्ति' एवं अप्रस्तुत से प्रस्तुत गम्य होने में 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' मानकर प्रस्तुत से अप्रस्तुत की गम्यता में 'समासोक्ति' मानकर उपर्युक्त लक्षणों में घटाया है ।" स्वयं कविराजाजी ने अप्रस्तुत से प्रस्तुत एवं प्रस्तुत से अप्रस्तुत दोनों की गम्यता में 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' अलङ्कार मानकर केवल संक्षेप से अधिक कहने को 'समासोक्ति' अलङ्कार का विषय मान लिया है । अस्तु ।

हमारे विचार से आपने 'समासोक्ति' शब्द का जो आशय इस दृष्टि से समझकर लिखा है । वेदव्यास आदि प्राचीनों ने साधारणतः वही आशय समझकर उक्त लक्षण बनाए हैं, और अल्प में अधिक कहे जाने का ही अभिप्राय (आलङ्कारिक वा साहित्य शैली के अनुसार) कहा है । 'एक अर्थ कहने में समान विशेषणों की सामर्थ्य से दो अर्थ सिद्ध हों'[1] इसके अतिरिक्त अल्प में अधिक कहना और क्या हो सकता है ?

स्वयं कविराजाजी का उक्त 'छन-छन' उदाहरण एवं उसका मिलान भी प्रस्तुत से अप्रस्तुत गम्य होने का ही है, और ठीक प्राचीनों के लक्षण

[1] विशेषणों से ।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

जदपि परम करुनामयि माता । प्रतिदिन जीवन उत्पति-दाता।

यहाँ भी माता (पार्वती) विशेष्य का 'करुनामयि' वि-
षण जीवों की प्रतिदिन उत्पत्ति करने के कारण साभिप्राय है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

ससि बदनी मोकों कहत, सो यह साँची बात।
नैन नलिन ये रावरे, न्याय निरखि नै जात॥
—बिहारी।

यहाँ भी 'धीरा नायिका' विशेष्य का 'ससि-बदनी' साभि
विशेषण है, क्योंकि चन्द्रमा के उदित होने पर कमलों का
होना प्रसिद्ध है ।

(२७) परिकरांकुर

जहाँ विशेष्य का सभिप्रायता से वर्णन किया जाय
वहाँ 'परिकरांकुर' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

मनहुँ कृष्ण ! खैंचत थके, जदपि आप जदुवीर ! ।
सो अघ भो बलवीर ! यह, द्रुपद-सुता को चीर ॥

यहाँ 'कृष्ण' विशेष्य है, जो 'आकर्षण करना' अर्थ होने के
कारण 'साभिप्राय' है ।

२ पुन यथा—दोहा ।

विनय कान्ह की हठभरे, तव सठ ! करी न कान ।
अब जरियत करियत कहा ?, मन ! मोहन सों मान ॥

यहाँ भी कलहांतरिता नायिका के (अपने मन के प्रति) कथन में 'मोहन' शब्द विशेष्य है, जिसमें मोहने के अर्थ के कारण साभिप्रायता है।

३ पुनः यथा—दोहा।

कियौ सबै जग काम-बस, जीते जिते अजेइ।
कुसुमसरहिं सर-धनुप कर, अगहन गहन न देइ॥

—बिहारी।

यहाँ भी 'अगहन' शब्द का 'ग्रहण न करना' अर्थ है; इससे यह साभिप्राय विशेष्य है।

---

(२८) अर्थ-श्लेष

जहाँ शब्दों के अर्थ ऐसे शक्ति-संपन्न हों कि यदि अन्य प्रकरण से अवरोध[1] न हो तो वाक्य का एक ही अर्थ अनेक (एक से अधिक) पक्षों में घटित हो जाय, वहाँ 'अर्थ-श्लेष' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

पर मंदिर जाइ बुलाए बिना मृदु बात बनाइ रिझायौ करैं।
कविता कमनीयन[2] कौ पतिरान नियप्रवाह बहायौ करैं॥
गुन गौरवता अपनी न गनैं निगुनीन हू के गुन गायौ करैं।
परमारथ-स्वारथ साधन यों सम साधु असाधु लखायौ करैं॥

१ जैसे 'घन' शब्द [illegible] मोथ (औषध विशेष) दो अर्थों का बोधक है, किंतु औषध [illegible] में [illegible] अर्थ का [illegible] वर्षा-ऋतु-पक्ष में मोथा अर्थ का अवरोध हो जाता है। २ मन हर कविताओं की।

'ठाकुर' कहत ये मासाला, विधि कारीगर,
रचना निहारि क्यों न होत चित चेरो है।
कंचन को रंग लै, सवाद लै सुधा को,
वसुधा को सुख लूटिकै बनायौ मुख तेरो है॥
—ठाकुर (प्राचीन)।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के मुख के सौंदर्य का वर्णन कार्य है, जो 'कोमलता कंज तें' आदि अनेक कारणों का करके सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

'सम्मन' नैनन में गिरी, जिन नैनन की सैन।
फिर काढ़न कों चाहिए, वे ही तीखे नैन॥
—सम्मन।

यहाँ भी नायिका को नायक से मिलाना प्रस्तुत कार्य है जिसका वर्णन न करके 'सम्मन नैनन में गिरी' आदि अप्र कारण कहकर नायिका को (सखी द्वारा) उक्त कार्य सूचित गया है।

२ कार्य-निबंधना

जिसमें अप्रस्तुत कार्य का वर्णन करके प्रस्तुत कारण का बोध कराया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरनाश्रम निज धरम-रत, कलह कलेस न लेस।
धन्य-धन्य यह देस जहँ, बरसत समय सुरेस॥

यहाँ 'धर्मात्मा राजा' प्रस्तुत कारण का 'बरनाश्रम निज धरम-रत' आदि अप्रस्तुत कार्यों के वर्णन द्वारा बोध कराया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

बासर कों निकसै जु भटू, रवि को रथ माँझ-अकास अरै री।
रैन इहै गति है 'रसखान' छपाकर आँगन तें न टरै री॥
आठौंहि जाम चल्योई करैं, निसि भोर के त्रास उसास भरै री।
तेरो न जात कछू दिन रात, बिचारे बटोही की बाट परै री॥

—रसखान।

यहाँ भी नायिका का सौंदर्य प्रस्तुत कारण है, जो आकाश के मध्य में सूर्य और चंद्रमा के रथ रुक जाने के अप्रस्तुत कार्य के वर्णन द्वारा सूचित किया गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

न्हात समै 'दास' मेरे पाँयनि पर्यौ है सिंधु-
तट नर-रूप ह्वै निपट बेकरार मैं।
मैं कह्यौ तू को है? कह्यौ बूझति कृपा कै तो,
सहाय कछु करौ ऐसे संकट अपार मैं॥
मैं हूँ बड़वानल बसायो हरि ही को मेरी,
बिनती सुनावो द्वारकेस-दरबार मैं।
ब्रज की अहीरिनी की अँसुवा-दलनि आइ
जमुना जरावै मोहि महानल-नार मैं।

—भिखारीदास।

यहाँ भी किसी व्रजांगना का श्रीकृष्ण-वियोग प्रस्तुत कारण है, जिसका वर्णन न करके उसके अश्रुपात-मिश्रित यमुनाजल द्वारा समुद्र में वाडवाग्नि को जलाने का अप्रस्तुत कार्य वर्णित है।

यहाँ भी वीर पुरुषों के सामान्यार्थ का बोध कराने के लिये ...न पक्षी का अप्रस्तुत विशेष वृत्तांत कहा गया है।

४ सामान्य-निबंधन।

जिसमें अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत विशेष ...ा बोध कराया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पछितैहैं कारज परे, पैहैं विषम विषाद।
हे नृप! गज को भार जे, देत गधे पर लाद॥

यहाँ अयोग्य अमात्य पर राज्य का कार्य-भार रख देनेवाला ...जा प्रस्तुत विशेष है, जिसके संबंध में हाथी का भार गधे पर ...ादनेवाले मनुष्यों (अप्रस्तुत सामान्य) का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सीख न मानैं गुरुन की, अहितहि हित मन मानि।
सो पछतावै. तासु फल, ललन! भए हित-हानि॥
—मतिराम।

यहाँ भी परकीया-खंडिता नायिका का नायक के प्रति उपालंभ प्रस्तुत विशेष है. जिसका 'सीख न मानैं' आदि अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन द्वारा बोध कराया गया है।

५ सारूप्य-निबंधना।

जिसमें समान अप्रस्तुत का वर्णन करके प्रस्तुत का बोध कराया जाय। इसीको 'अन्योक्ति' कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

विकसत मौर' सिंगार, निकसत नव पल्लव निकरि।
पिक ! इतराय' पलास, धिक सत' सेवत मंदमति॥

यहाँ योग्य वस्तु का त्याग करके अयोग्य वस्तु का से
करनेवाले प्रस्तुत मनुष्य को बोधित करने के लिये उसके प्रति
न कहकर उसीके समान अप्रस्तुत कोकिल के प्रति कहा गया है

२ पुनः यथा—दोहा।

उनमादक बाधक-विनय, निंदामय सकलंक।
छुटत न लग्यो महीप-मुँह, रे मद्पात्र ! असंक॥

यहाँ भी अप्रस्तुत मद्यपात्र के प्रति कहकर उसीके स
राजा के मुँह लगे हुए किसी प्रस्तुत चुगुलखोर को उपालंभ वि
गया है।

३ पुन यथा—दोहा।

को छूट्यौ इहि जाल परि, मत कुरंग ! अकुलाइ।
ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहै, त्यौं-त्यौं उरझत जाइ॥
—विहारी।

यहाँ भी अप्रस्तुत मृग क प्रति कहकर उसके तुल्य सांस
रिक मनोरथों की पूर्ति करके विरक्त होने की इच्छा करनेवाले
विचार-शून्य प्रस्तुत पुरुष को सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

हम तो तेरे फलन की, तब ही छोड़ी आस।
निकसत मुँह कारो कियौ, रे मतिमंद पलास ! ॥
—अज्ञात कवि।

१ आम्र-मंजरी। २ गर्व करके। ३ सौ बार धिक्कार है।

यहाँ भी अप्रस्तुत पलाश-वृक्ष को संबोधित करके उसीके सदृश प्रस्तुत कुपूत को बोधित किया गया है।

५ पुनः यथा—कवित्त।

पुहुमी सबीज करो बारिद ! तिहारी रीति,
सबपै समान दीठि प्रभुता सुहात की।
स्वाति-बूँद पाइ प्रेमी पालत कुटुंब सदा,
और सों न प्रीति ऐसी रीति इहिं जात की॥
'परसुराम' परे घन ! बरस पपीहा काज,
आइ जैहै पौन रैहै प्रभुता न हात की।
कित जल जैहै कित उमँग बिलैहै कित,
तू ही चलि जैहै कित जैहै उड़ि चातकी॥
—परशुराम कहार।

यहाँ भी किसी प्रस्तुत समृद्ध पुरुष को दान का उपदेश करना है, पर ऐसा न करके उसीके समान अप्रस्तुत मेघ के प्रति कहकर उक्त पुरुष को बोधित किया है।

६ पुन यथा—आर्य्या छंद।

किंशुक ! मा वह गर्वं निज शिरसि भ्रमरोऽपवेशनेन।
नव विकसित मल्लिका वियोगाज्ज्वलनधियात्वयि मज्जति द्विरेफः
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी किसी मिथ्याभिमानी पुरुष का गर्व-परिहार प्रस्तुतार्थ है, उसकी जगह अप्रस्तुत पलाश-वृक्ष का वृत्तांत कहा गया है कि हे पलाश ! तू व्यर्थ ही अपने ऊपर भ्रमर के बैठने का गर्व करता है। वह तो मोगरा के वियोग में तेरे पुष्प को अग्नि समझकर उसमें जलने को गिरा है, न कि मकरंद के लोभ से।

सूचना—(१) इस 'सादृश्य-निबंधना' (अन्योक्ति) में जो अप्रस्तुत वृत्तांत कहा जाता है, वह हमारे विचार से, यदि किसी के प्रति कहा जाए तो विशेष रमणीयता आ जाती है; इसलिए हमने सब उदाहरण इसी प्रकार के दिए हैं। इसके प्रमाण भी निम्नोक्त ग्रंथों में पाए जाते हैं। यथा—

बिहारी-सतसई की टीका, लाल-चंद्रिका—

"अन्योकति जहँ और प्रति, कहै और की बात।"

अलंकार-आशय—

"अन्योकति अरु की कहैं, औरैं प्रतिहि सुजाति।"

अलंकार-मंजूषा—

"कहूँ सरिस सिर डारिकै, कहै सरिस सौं बात।"

(२) इस 'अन्योक्ति' में अप्रस्तुतार्थ के वर्णन द्वारा प्रस्तुतार्थ सूचित किया जाता है; और पूर्वोक्त 'समासोक्ति' अलंकार में इसके विपरीत प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुतार्थ का बोध कराया जाता है, अतः ये दोनों परस्पर विरोधी हैं। कुछ ग्रंथों में इनसे मिलता-जुलता 'प्रस्तुतांकुर' नामक अलंकार स्वतंत्र माना गया है, किंतु हमें उसमें चमत्कारिक पृथक्ता प्रतीत नहीं होती; इसलिए उसका उल्लेख नहीं किया गया।

(३०) पर्यायोक्ति

जहाँ 'पर्याय' शब्द के 'प्रकार' और 'व्याज' (मिस) इन दो अर्थों के आधार पर वर्णन हो, वहाँ 'पर्यायोक्ति' अलंकार होता है। इसके दो भेद है—

१ प्रथम पर्यायोक्ति

जिसमें विवक्षितार्थ[1] का वर्णन सीधी रीति से न करके चमत्कारिक प्रकारांतर से किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

विन हरि-सुमरन हू समय, गनत नरायु मँझार।
नहिं जमराज-विचार यह, प्रत्युत अत्याचार॥

यहाँ विवक्षितार्थ यह है—"परमात्मा के स्मरण के विना मनुष्य का जितना काल व्यतीत होता है, वह व्यर्थ है।" किंतु इस प्रकार सीधी रीति से यह बात न कहकर इस प्रकारांतर से कही गई है—"यमराज मनुष्यों की आयु में उस समय की भी गणना करता है, यह उसका विचार नहीं बल्कि अत्याचार है।"

२ पुनः यथा—दोहा।

चल्यौ चहत परदेस अब, प्रिय प्रानन के नाथ।
कछु ठहरौ लै जाइयौ, अँसुवा! असुवन[2] साथ॥

यहाँ भी प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का—"पति के परदेश जाने से ये प्राण न रहेंगे" विवक्षितार्थ है, जो सरल रीति से न कहकर अश्रुपात के प्रति इस ढंग से कहती है—"तुम कुछ ठहरकर प्राणों को भी साथ लेते जाना।"

३ पुनः यथा—कवित्त।

भीम कों दयौ हो विप ता दिन बयौ हो बीज,
लाखागृह भएँ ताको अंकुर लखायौ है।
द्यूत-क्रीड़ा आदि विसतार पाइ बड़ो भयौ
द्रोपदी-हरन भएँ मंजरि सौं छायौ है॥

१ जिस बात का वर्णन करना हो। २ प्राणों को।

मत्स्य गाय मेरी जब पुत्र फल नाग गयो,
मैंने ही कुमंत्र-जल सींचिके बढ़ायो है।
बिदुर के ज्ञान-कुठार तें न कट्यो वृच्छ,
वाको फल पायो भूप ! मेरो भेट आयो है।

—बारहठ स्वरूपदास मादु।

यहाँ भी संजय द्वारा राजा धृतराष्ट्र के प्रति दुर्योधन की मृत्यु विवक्षितार्थ का परम रमणीयता पूर्वक प्रकारांतर से कथन किया गया है।

४ पुनः यथा—सोरठा।

दीन जानि सब दीन, एक न दीनो दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन, कछु नहिं राख्यो वीरवर!॥

—बादशाह अकबर।

यहाँ भी राजा बीरबल की मृत्यु का शोक प्रकाश करना कथितार्थ है, जो रमणीयता पूर्वक अन्य प्रकार से कहा गया है।

२ द्वितीय पर्यायोक्ति

जिसमें किसी रमणीय व्याज द्वारा अभीष्ट-साधन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पुनि-पुनि कर-लाघवनि हरि, गेंदनि रहे उछारि।
तिनहिं धरन लौं कर अधों, करि न सकहिं सब ग्वारि॥

यहाँ रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण महाराज का अत्यंत हस्त-लाघवता (फुर्ती) से वार-वार गेंदों को उछालने के छल से व्रजांगनाओं के उरस्थल निरीक्षण रूपी इष्ट-साधन वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

सखियन ढिग हू रह्यौ न गो, कर्यौ पसारिय बाहु ।
तनिक खिलावन लौं ललन !, लरिका घर लै जाहु ॥

यहाँ भी नायिका ने सखियों के समक्ष श्रीकृष्णजी से परिरंभण रूप इष्ट इस छल से सिद्ध करना चाहा है कि आप भुजा पसारकर मेरी गोद से थोड़ी देर के लिये इस लड़के को घर ले जाइए ।

३ पुन. यथा—दोहा ।

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाइ ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी मुरली छिपाकर श्रीराधिकाजी द्वारा अनेक चेष्टाओं के मिस से श्रीकृष्ण की बातों का रस लेने के इष्ट-साधन का वर्णन है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'कैतवापह्नुति' में उपमेय को छिपाने के लिये 'व्याज' आदि शब्दों द्वारा उपमान स्थापित किया जाता है, और 'द्वितीय पर्यायोक्ति' में किसी क्रिया रूपी छल से इष्ट साधन किया जाता है तथा 'व्याज' आदि शब्दों का होना नियमित नहीं है । इनमें यही अंतर है ।

---

(३१) व्याज-स्तुति

जहाँ निंदा के शब्दों से स्तुति या स्तुति के शब्दों से निंदा प्रकट हो, वहाँ 'व्याजस्तुति'[1] अलंकार होता है । इसके दो भेद हैं—

[1] कई ग्रंथकारों ने इस अलंकार के 'व्याज स्तुति एवं व्याज निंदा' नामों से दो भिन्न-भिन्न अलंकार माने हैं ।

'मोहन' भगत स्याम भावतौ भयौ है [illegible],
[illegible] लीन्हीं तानि-तानि [illegible] [illegible] हैं।
गोपिन के लीने मन चीर चोरि-चोरि ब्रज,
जोरि-जोरि [illegible] लागे द्रौपदी के पट हैं ॥
—मोहन।

यहाँ भी "कपड़े खरीदने आप कब गए थे ?" आदि निंदा के वर्णन से वास्तव में द्रौपदी के चीर बढ़ाने के रूप में श्रीकृष्ण की प्रशंसा ही व्यक्त की गई है।

४ पुन. यथा—सवैया।

अघ किएँ जहँ कोटिक छीन ह्वै सो कुरखेत में जाइ अन्हाइय।
तीरथ-राज प्रयाग कहें मन-वांछित के फल पाइ अघाइय ॥
श्रीमथुरा वसि 'केसवदासजू' ह्वै भुज तें भुज चार ह्वै जाइय।
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिएँ पुनि देह न पाइय ॥
—केशवदास (द्वितीय)।

यहाँ भी "कासीपुरी की कुरीति बुरी" आदि निंदा के शब्दों से मोक्ष प्रदान करने की बात कहकर उसकी स्तुति की गई है।

२ द्वितीय भेद (स्तुति के शब्दों में निंदा)

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दृग रंजन अंजन अचल, मद गज गंजन गाज।
धनि जग जल जाचक जुगल चातक मोर समाज ॥

यहाँ शब्दार्थ में तो कज्जल गिरि की श्लाघा प्रतीत होती है, किंतु वास्तव में बादल का आकार और लक्षण रखकर जल के लिये चातक-मयूरों को धोखा देने की बात से उसकी निंदा ही ध्वनित की गई है।

२ पुनः यथा—सवैया।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—[illegible]

यहाँ भी रावण के प्रति अंगद की उक्ति में "[illegible] रावन की प्रभु-सेवी" आदि रावण की प्रशंसा के वाक्य हैं, किंतु वस्तुतः उनसे निंदा ही प्रकट होती है।

सूचना—कुछ ग्रंथों में इस 'व्याज-स्तुति' अलंकार के दो भेदों के अतिरिक्त "अन्य की निंदा से अन्य की निंदा", "अन्य की स्तुति से अन्य की स्तुति", "अन्य की निंदा से अन्य की स्तुति" और "अन्य की स्तुति से अन्य की निंदा" ये चार भेद और भी माने गए हैं, किंतु प्रायः अलंकार ग्रंथों में ये भेद नहीं माने गए हैं; और हमें भी ये अनावश्यक प्रतीत होते हैं।

(३२) आक्षेप

जहाँ विवक्षित अर्थ का किसी प्रकार से निषेध सूचित हो, वहाँ 'आक्षेप' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ उक्ताक्षेप

जिसमें अपने कथितार्थ का उत्कर्ष-सूचक निषेध किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

तजिबे लौं खलता खलन, कह्यौ सुजन किहि बीज ।
पै पुनि कह्यौ कि फल कहा ?, ऊपर बोएँ बीज ॥

यहाँ किसी सज्जन ने दुष्टों के प्रति दुष्टता छोड़ने के लिये कहे हुए अर्थ का "फल कहा ? ऊपर बोएँ बीज" वाक्य द्वारा निषेध किया है, जिससे उनकी दुष्टता का उत्कर्ष सूचित होता है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

मृदु पाँयन जावक को रँग, नाह को चित्त रँगै रँग जातें ।
अंजन दै करौ नैननि मैं सुखमा बढ़ि स्याम-सरोज-प्रभा तें ॥
सोने के भूषन अंग रचौ, 'मतिराम' सबै बस कीबे की घातें ।
यौं ही चलौ न ! सिंगार सुभावहि मैं सखि ! भूलि कहीं सब बातें ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी पहले तीन चरणों में अनेक शृंगार करने का जो वर्णन है, उसका निषेध चतुर्थ चरण के द्वारा हुआ है, जिससे नायिका के सौंदर्य का उत्कर्ष सूचित किया गया है ।

३ पुनः यथा—मालिनी छंद ।

मधुकर ! मदिराक्षी[1] तू बता वो कहाँ है ? ।
नयन-पथ उसे की ? किंतु तूने नहीं है ॥
सुरभित उसका तू जा मुखाम्बुज पाना
फिर इस नलिनी में क्या कभी जी लगाना ? ॥
—पं० कन्हैयालाल पोद्दार ।

यहाँ भी विरह-व्यथित राजा पुरूरवा ने किसी भ्रमर से पूछा

१ मतवाले नेत्रोंवाली ।

है—"तूने उर्वशी को देखा है ?" जिसका निषेध "किंतु नहीं देखा" वाक्य में करके (उत्तरार्द्ध में) उत्कर्ष सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

'तुलसी' रेखा करम की, मेट न सकै राम।
मेटे तो अचरज नहीं, (पर) समुझि कियो है काम॥
—तुलसीदास।

यहाँ भी 'कर्म-रेखा को राम भी नहीं मिटा सकते'। कथन का उत्तरार्द्ध-वाक्य से विशेषता-सूचक निषेध हुआ है।

२ निषेधाक्षेप

जिसमें विवक्षितार्थ का वास्तविक निषेध न हो, वे निषेध का आभास मात्र हो।[1]

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मधुर सुधा निय-रूप तिहिं, कत कवि कहत सलोन?।
पै इहिं निरखत ही लगत, विरह जरे उर लोन॥

यहाँ नायिका के "मधुर रूप का सलोना न होना" कथि है, जिसका उत्तरार्द्धगत वाक्य में निषेधाभास मात्र हुआ है।

२ पुन यथा—दोहा।

सकट-जनम विनास कहि, सकै न समुचित कोइ।
पै रवि ससि उदयास्त गनि, लखि कछु अनुभव होइ॥

यहाँ भी 'जन्म-मरण-समय के सकट का अनुभव अकथनीय है" कथित र्थ है, जिसका 'उदयास्त-काल में सूर्य एव

१ किसी किसी ग्रंथ में इसका लक्षण यों भी लिखा है—"प्रथम निषेध की हुई बात को फिर स्थापित करे" किंतु दोनों का भाव एक ही हुआ होता है।

चंद्रमा की निष्प्रभता देखकर कुछ अनुभव हो सकता है" वाक्य से निषेध सा किया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

हौं न कहत, तुम जानिहौ, लाल! बाल की बात।
अँसुवा-उडुगन परत हैं, होन चहै उतपात॥
—मतिराम।

यहाँ भी नायक के प्रति दूती का वचन है कि मैं नायिका की विरह-व्यथा नहीं कहती, पश्चात् इस कथितार्थ का वास्तविक निषेध न करके उत्तरार्द्धगत वाक्य द्वारा निषेध सा किया है।

३ व्यक्ताक्षेप

जिसमें अनिष्ट अर्थ की ऐसी विधि (आज्ञा) हो, जो निषेध के तात्पर्य से गर्भित हो। इसे 'अनुज्ञाक्षेप' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पान-पीक की लीक दृग, डगमगात सब गात।
रमहु रमन! मन रमत जहँ, कत सकुचत बतरात?॥

यहाँ सपत्नी के स्थान पर अति-काल पर्यंत विलास करके आनेवाले पति के प्रति कहे हुए खंडिता नायिका के "रमहु रमन मन रमत जहँ" वाक्य में अनिष्ट अर्थ की जो आज्ञा (सम्मति) है, उसमें निषेध का तात्पर्य गर्भित है।

२ पुन यथा—दोहा।

कीबो काज सु कीजिए, कहा रहे बँधि लाज?।
जब मिलिहो तब लेहुँगी, दरसन करि जल नाज॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी प्रथम चरण में प्रवत्स्यत्पतिका नायिका की पति के प्रति विदेश-गमन रूपी अभिलाषा की विधि (आज्ञा) है, किंतु यथार्थ में उसके निषेध के तात्पर्य गर्भित है।

(३३) विरोध

जहाँ विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाय, वहाँ 'विरोध' अलंकार होता है। इसके जाति[1], गुण, क्रिया और द्रव्य[2] द्वारा दस भेद माने गए हैं—

---

१ जिस शब्द से एक ही प्रकार के बहुत से व्यक्तियों का बोध होता है, उसे जाति-वाचक-शब्द कहते हैं। जैसे—देव, मनुष्य, गाय, कोकिल, पहाड़, नदी, आम्र, पुस्तक इत्यादि।

२ जिस शब्द से किसी एक व्यक्ति का बोध होता है, उसे नाम कहते हैं; और जिस व्यक्ति का वह शब्द नाम होता है, उस व्यक्ति को द्रव्य कहते हैं। जैसे—'विष्णु' शब्द लीजिए, यह शब्द तो नाम है, परंतु जिस देवता का यह नाम है, वह देवता द्रव्य है। इसी प्रकार सूर्य, चंद्र, दिलीप, कामधेनु, हिमालय, भागीरथी आदि के संबंध में भी समझना चाहिए।

भाषा के कुछ अलंकार-ग्रंथों में ऐसे अवसर पर 'द्रव्य' शब्द से महर्षि कणाद कृत वैशेषिक-दर्शन में बतलाए हुए पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा इन नौ द्रव्यों का ग्रहण किया गया है, किंतु अलंकार-शास्त्र में वैशेषिक के ये द्रव्य गृहीत नहीं हो सकते। साधारणतः शब्दानुशासन (व्याकरण) शास्त्र के अनुसार 'द्रव्य' का जो अर्थ होता है, वही साहित्य में ग्रहण किया जाना चाहिए, अतः हमने गुण और क्रिया के अतिरिक्त जाति और द्रव्य का भी वही अर्थ लिया है जो भगवान् पतंजलि के महाभाष्य में है।

१ जाति का जाति से विरोध

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

स्याम-घन-अंक में चमंक चपला की चारु,
पंकज-प्रतीक[1] रानो राधिका रही विराज।
नाचत मयूर जल जाचत पपीहा पेखि,
गुंजत मलिंद कल कोकिल करै अवाज॥
बरसत स्वेद-श्रम सीकर बसीकरन,
त्रिविध समीर असरीर को सज्यौ समाज।
देख्यौ विसमय एक देस एक ही समय,
एक साथ पावस-बसंत-ऋतु आई आज॥

यहाँ पावस-ऋतु और वसंत-ऋतु, इन दो विरोधी (भिन्न-भिन्न कालों में रहनेवाली) जातियों का एक साथ आना (संसर्ग) कहा गया है।

२ पुन यथा—सवैया।

अपने दिन-रात हुए उनके, क्षण ही भर में छवि देख यहाँ।
सुलगी अनुराग की आग वहाँ, जल से भरपूर तड़ाग जहाँ॥
किससे कहिए अपनी सुधि को?, मन है न यहाँ तन है न वहाँ।
अब आँख नहीं लगती पल भी, जब आँख लगी तब नींद कहाँ॥

—कविवर प० रामनरेश त्रिपाठी।

यहाँ भी द्वितीय चरण में विरहिणी नायिका के जल (जाति)-पूरित-नेत्र-सरोवर में प्रेम की अग्नि (जाति) के अस्तित्व का वर्णन है, जिससे विरोधी जातियों का संसर्ग हुआ है।

---

१ कमल के समान अंगोंवाली।
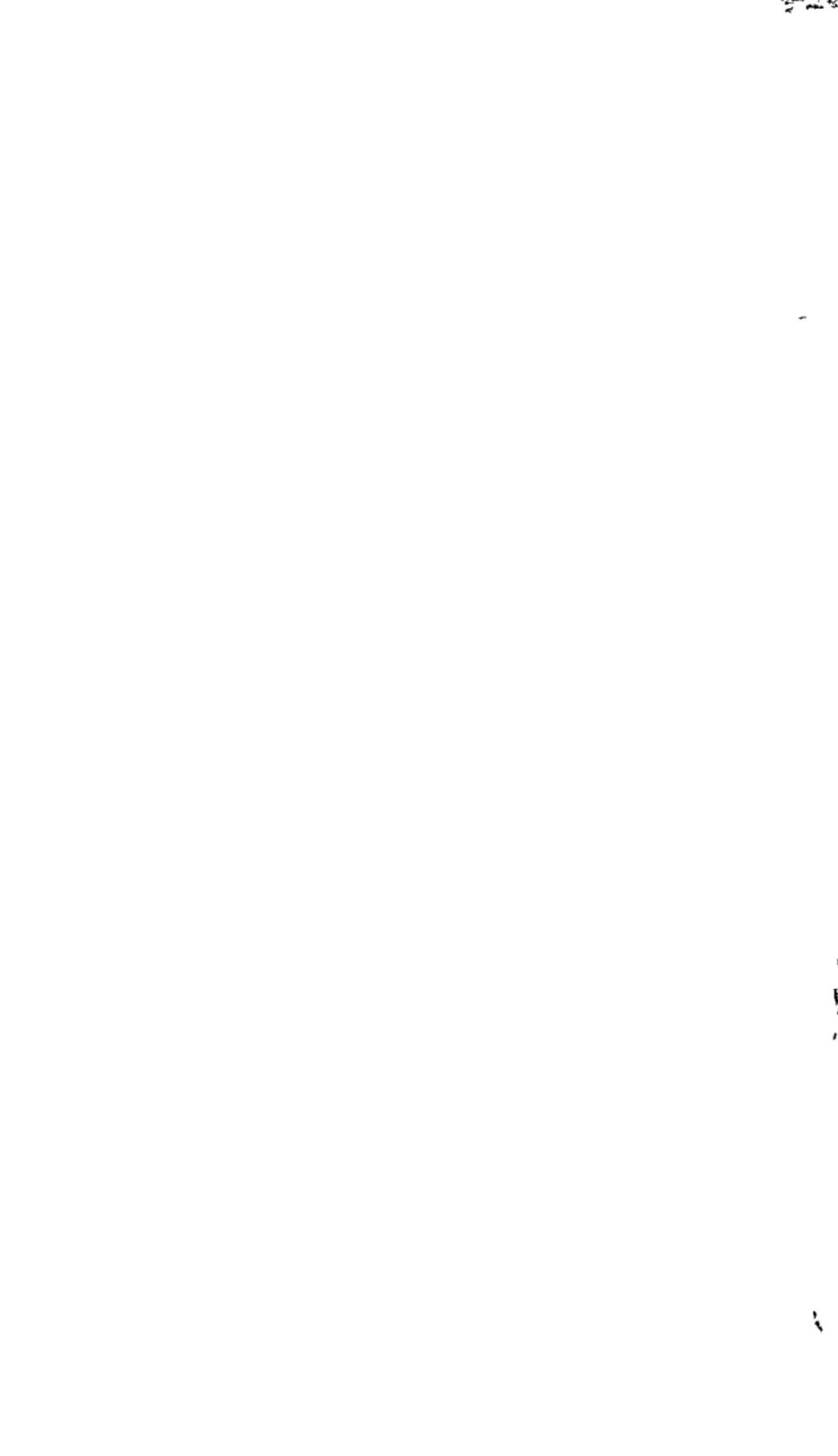
यहाँ श्मशान जाति का ब्रह्म-लोक द्रव्य विरोधी का संसर्ग कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अलि ! अद्भुत अरविंद हरि,—बदन मदन-दुख द्वंद।
चंद-मुखिनि-मधुपिनि पियो, राका[1] जासु मरंद॥

यहाँ भी श्रीकृष्ण-मुख-अरविंद जाति का (मकरंद [illegible] करने में) गोपियों के मुख-चंद्र द्रव्य से विरोध होते हुए संयोग कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मेरु समूलहिं तूल तृन, तृन तूलन गिरि थूल।
करमन ज्यों करि देत ते, सुकवि रहौ अनुकूल॥

यहाँ भी तूल और तृण जातियों का मेरु द्रव्य से (हलके और भारी होने के कारण) विरोध है; तथापि इनका संसर्ग कहा गया है।

५ गुण का गुण से विरोध

१ उदाहरण यथा—वसततिलका छंद।

श्रीराधिका - रमन - पाद - प्रसाद पायौ।
तो मैं मलीन-मति निर्मल-गीत गायौ॥
वर्नें जथा-मति तथापि ब्रजेस्वरी के।
सोपांग[2] अंग जन - रंजन श्रीहरी के॥

यहाँ मलिन और निर्मल विरोधी गुणों का संसर्ग कहा गया है।

---

१ पूर्णिमा की रात्रि। २ उपांगों-सहित।

यहाँ भी 'करत' क्रिया का उसके विरुद्ध 'अकारी' (न .. वाला) गुण से संसर्ग कहा गया है।

३ पुनः यथा—शेर। तर्ज़ (समस्या)।

"रंग लाया है दुपट्टा तेरा मैला होकर।"
गुरू गोरख का रहा जब से, तू चेला होकर॥
ख़ाक[1] मल घूमा बियाबाँ[2] में अकेला होकर।
पालिया नूरेख़ुदा जिस्म घिनैला होकर॥
रंग लाया है दुपट्टा तेरा मैला होकर।[*]

यहाँ भी 'घिनैला' गुण और 'नूरे ख़ुदा (ब्रह्म-ज्योति) प्राप्त कर लेना' क्रिया का विरोध होने पर भी संसर्ग है।

४ पुनः यथा—छप्पय।

मेरु मरुत-मति नहिन, मेरु-मति मरुत न मानिय।
भानु हिमाकर भो न, हिमाकर भानु न जानिय॥
वारिधि मरु नहिं बनिय, मरु न वारिधि-विधि ठानिय।
गगन न भुव-सिर गनिय, भुव न सिर-गगन पिछानिय॥
इन बिच न इक इत की उतै, कर न सक्यौ अकरन-करन।
कहि! करन-मरन नर-करन तें, मानै किहिं विधि मोर मन?॥
—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश)

यहाँ भी राजा धृतराष्ट्र के कथन में 'अकरन-करन' (न करने योग्य कार्य भी कर देनेवाला) गुण का 'कर न सक्यौ' क्रिया से विरोध होने पर भी संसर्ग हो गया है।

१ भस्म। २ निर्जन वन। ३ मारवाड़ देश। ४ अर्जुन के हाथों से।
* यहाँ विरक्त भर्तृहरि के प्रति कवि का कथन है।

(३४) विभावना

जहाँ कारण और कार्य के संबंध का किसी ...त्रता से वर्णन हो, वहाँ 'विभावना' अलंकार होता ... इसके ६ भेद हैं—

१ प्रथम विभावना

जिसमें कारण के अभाव में भी कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

मन हु न फुरे वचन हु न जाचे। तेउ सुख दीन्ह ...
तुमतें उऋन होहुँ किहिं करमन। ज्ञान न भक्ति न ध्यान ...

यहाँ पूर्वार्द्ध में अपने इष्ट श्रीशंकरजी से ग्रंथकर्ता के ...सिक स्फुरणा होने एवं याचना रूप कारणों के अभाव में सुख-प्राप्ति रूप कार्य होने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

साहि-तनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि-सैन॥
—भूषण।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी के रीझने एवं खीझने कारण ... विना ही दारिद्र्य-हरण एवं शत्रु-सेना का संहार रूपी ... उत्पन्न हुए हैं।

२ द्वितीय विभावना

जिसमें कारण की अपूर्णता में भी कार्योत्पत्ति हो।

३ तृतीय विभावना

जिसमें प्रतिबंधक[1] के होते हुए भी कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

माई मन माहिँ ना दुराई हू उझलि आई,
कीधौं प्रान-प्रीतम की प्रीति पटु प्यारी के।
विजय-पताका कै विचित्र रंग राची रंग,
जंग जग-जीत लौं अनंग-असवारी के॥
लाज की कनात कीधौं काया छिति-जात[2] की है,
कीधौं कोउ माया मन-मोहिनी मुरारी के।
कंचन-किनारी मृगमद की महकवारी,
कीधौं इकतारी सील सारी सुकुमारी के॥

यहाँ प्रथम चरण में 'नायिका द्वारा छिपाए जाने' का प्रतिबंध होते हुए भी 'पति-प्रेम प्रकट हो जाना' कार्य हुआ है।

२ पुन. यथा—कवित्त।

पाँय परि सौंहें खाइ क्यों हूँ रुख पाइ जाइ,
लालहिं लवाइ लाई सादर दरीची मैं।
गंधक औ लोह पाइ पारद औ चुंबक लौं,
भेटे बिरहाधि-व्याधि-कादर दरीची मैं॥
राजत सनेह-सुख-साने दोउ ताने स्याम[3],
चौलर चहूँयाँ चारु चादर दरीची मैं।
तो भी चहुँ ओर ताके छहरे छटा के छोर,
थिरकि रही है[4] विज्जु बादर-दरीची मैं॥

---

१ रोकनेवाला। २ मगल। ३ नीले रंग की। ४ चमक रही है।

यहाँ कमल नाल (कारणांतर) से चंपक-कलियों (कार्य) का उत्पन्न होना कहा गया है।

२ पुन यथा—दोहा।

हिमन नाम के बाग में, यों सुधि कछू अतूल।
फूली चंपक-बेलि तें, झरत चमेली-फूल॥
—मतिराम।

यहाँ भी चंपक-बेलि कारणांतर से चमेली के फूल झड़ने कार्य हुआ है

५ पंचम विभावना

जिसमें विलोम (विपरीत) कारण से कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बदन-सुधाधर श्रवत तव, सविष विसिख से बैन।
कढ़त कमल-दल-जीह तें, वचन कठेठे ऐन॥

यहाँ नायिका के मुख-सुधाधर और जिह्वा-कमल-दल रूपी विरुद्ध कारणों से विषैले बाण एवं कठोर वचन कार्यों का उत्पन्न होना वर्णित है। दो होने से माला है।

२ पुन. यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पान कीन्ह विष विषम असेषा। किंतु कंठ-श्री भई विशेषा॥

यहाँ भी श्रीमहादेवजी के विष पान करने के विपरीत कारण से कंठ श्री (शोभा) होना कार्य हुआ है।

३ पुन यथा—सवैया।

सावन आवन हेरि सखी! मन भावन आवन चोप विसेखी।
छाए कहूँ 'घनआनँद' जान सँभार की ठौर लै भूलनि लेखी॥

३ पुनः यथा—दोहा ।

चतुराई तेरी हरी !, मोपै कहत बनै न ।
निकसन सुत [illegible] सों मथन, रस-सागर सुधांत ॥

—राजा रामसिंह (नरवलगढ़) ।

यहाँ भी चंद्रमा कार्य से समुद्र कारण की उत्पत्ति कही गई है।

सूचना—इस 'विभावना' अलंकार से पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार मिलता-जुलता है, किन्तु भेद यह है कि 'विरोध' में विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाता है एवं कारण-कार्य के होने का नियम नहीं होता, और यहाँ कारणकार्य नियमित होते हैं।

(२५) विशेषोक्ति

जहाँ पूर्ण कारण के होने पर भी कार्य का अभाव वर्णित हो, वहाँ 'विशेषोक्ति' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ उक्तनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त कहा जाय।

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

एक हि चक्र[1] अचक्र[2] किए सुर-सत्रुन चक्रत सक्र के वेरे।
तैं दुइ तैसे हि पाइ सुदर्सन न्याय किए वस मोहन मेरे॥
घेरे रहैं घघरा हु के घेरन नेरे रहे हु न पावत हेरे।
काम के तंबु कि तुंबुरु[3] ही के तँबूरे नितंब नितंबिनि ! तेरे॥

यहाँ नायक का नायिका के नितंबों के निकट रहना कारण है और इस कारण के होते हुए भी नितंबों के दिखाई पड़ने के

१ सुदर्शन। २ सैन्य-रहित। ३ गंधर्वराज तुंबुरू।

कार्य का अभाव है। इसका निमित्त "[illegible]" कहा गया है, इससे 'उक्तनिमित्ता' है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी,[1]
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधिरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हारे मार,
हारी झकझोरति त्रिबिध गति बात की॥
दई ! निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति,
जारत जो रैन-दिन दाह ऐसे गात की।
कैसे हू न मानै हौ मनाइ हारे 'केसौदास',
बोलि हारी कोकिला बुलाइ हारी चातकी॥
—केशवदास।

यहाँ भी नायिका के मान मोचन के 'सिखै हारी सखी' आदि अनेक कारण होते हुए भी मान-मोचन कार्य न होने का निमित्त "दई ! निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति" कहा गया है।

३ पुन यथा—सवैया।

वारिधि तात हुतो विधि सो सुत आदित-सोम सहोदर दोऊ।
रंभ रमा भगिनी जिनके मघवा मधुसूदन से बहनोऊ॥
तुच्छ तुषार परे जल-भार इतो परिवार सहाय न कोऊ।
टूटि सरोज गिरे जल में सुख-संपति मैं सबके सब कोऊ॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी कमल के समुद्र आदि अनेक संबंधी कारण हैं, इनके होते हुए भी उसकी तुषार-जन्य विपत्ति में सहाय रूपी कार्य न होने का निमित्त "सुख-संपति मैं सबके सब कोऊ" कहा गया है।

[1] मेघमाला।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

यहाँ भी [illegible] कारण है, [illegible] होते हुए भी पलक खोलने के कार्य का अभाव है, और इसका हेतु "सुगत-रूप का दर्शन न होना" कहा गया है।

२ अनुक्तनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त न कहा जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तीन उपाय किए तदपि, छुट्यो न तिनको कुसंग।
सखि! सुर-साधन साम नं, सजन न देत सुरंग॥

यहाँ प्रौढ़ा-अधीरा नायिका की सखी से उक्ति है कि [illegible] दान एवं भेद तीन उपाय करने पर भी नायक ने कुसंग नहीं [illegible], इस प्रकार कारण के होते हुए भी कार्य का अभाव, बिना कि[illegible] निमित्त के, बतलाया गया है।

२ पुन यथा—दोहा।

बसे न सर, विकसे निरखि, मन-मोहन मुख-चंद।
रवि लखि हँसे न कंज यह, राधा मुख सुख-कंद॥

यहाँ भी सूर्य कारण के होते हुए कमल के विकसित होने के कार्य का न होना, किसी निमित्त के बिना कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

नेम धरम आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान ।
भेषज पुनि कोटिक, नहीं, रोग जाहिं हरि-जान ! ॥
—रामचरित मानस ।

यहाँ भी नियम, धर्मादि अनेक औषधियों रूपी कारणों के होते हुए मानस-रोग-निवृत्ति कार्य का न होना, किसी निमित्त के बिना कहा गया है ।

४ पुनः यथा—दोहा ।

सोवत जागत सपन-बस, रस रिस चैन कुचैन ।
सुरत स्याम-घन की, सुरत, बिसरे हू बिसरै न ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी प्रोषित-पतिका नायिका के (वियोग-व्यथा से) स्मृति-शून्य (बेहोश) हो जाने पर भी श्रीघनश्याम की सूरत भूलने के कार्य का अभाव किसी निमित्त के बिना वर्णित है ।

३ अचिंत्यनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त अचिंत्य[1] हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

उर तन मन दाहन जदपि मान निदाघ[2] मनोज ।
तउ तनकउ तिय तरुनि के, तपत न अहो ! उरोज ॥

यहाँ मानवती नायिका के उर, तन एवं मन तप्त होने के रूप में समुचित कारण विद्यमान है, तथापि कुच तप्त होने के कार्य का अभाव है, और 'अहो' शब्द आश्चर्य-वाची है, इससे यह 'अचिंत्यनिमित्ता' है ।

१ समझ में न आनेवाला । २ ग्रीष्म ।

२ पुनः यथा—दोहा।

कृस तन पर घन करत विष,[1]-सीकर-सर-संपात।
तउ तजि गात न जात जिय, अचरज उर न समात॥

यहाँ भी विरहिणी नायिका के कृश शरीर पर बादल 'विष-शीकर (जल-बूँद) रूपी बाणों का आघात कारण है, होते हुए भी प्राणांत कार्य के अभाव का निमित्त 'अचरज उर न समात' वाक्य से अचिंत्य रूप में वर्णित हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा।

प्यौ राख्यौ परदेस तें, अति अद्भुत दरसाइ।
कनक-कलस पानिप[2] भरे, सगुन[3] उरोज दिखाइ॥
—मतिराम।

यहाँ भी भाव यह है—"प्रवत्स्यत्पतिका नायिका ने अपने (पानिप से परिपूर्ण) कनक-कलश रूपी उरोजो का शुभ शकुन दिखाकर पति को विदेश जाने से रोक लिया" यही अद्भुत (अचित्य) निमित्त है, और उक्त शुभ शकुन रूपी कारण के होते हुए भी विदेश-गमन का कार्य नहीं हुआ, यही 'विशेषोक्ति' है।

सूचना—यह 'विशेषोक्ति' अलंकार पूर्वोक्त 'विभावना' अलंकार के प्रथम भेद का विरोधी है।
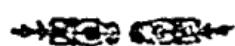
(३६) असंभव

जहाँ किसी पदार्थ की असंभवता बतलाई जाय, वहाँ 'असंभव' अलंकार होता है। इसके वाचक प्राय

---

१ जल। २ जल एवं सौंदर्य। ३ शकुन एवं गुणवाले।

...द मनाया जाना कार्य श्रीनंदराय के घर
...र होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

... टूटत कुटुम, जुरति चतुर-सँग प्रीति।
...ठि दुरजन हिये, दई! नई यह रीति॥

—विहारी।

...ी दृग के उलझने में कुटुंब का टूटना, चतुर से प्रीति
... दुर्जन के मन में गाँठ पड़ना। इस प्रकार कारण-कार्य
...ाता वर्णित है।

३ पुनः यथा—दोहा।

...खिज-माली की उपज, कहो रहीम न जाइ।
...ल स्याम के उर लगे, फल स्यामा-उर आइ॥

—रहीम।

यहाँ भी फूल (फूलना = आनंद) कारण का तो कृष्ण के
... और फल (कुच) कार्य का नायिका के ...
...क साथ) होना कहा गया है।

सूचना—(१) यहाँ लक्षण में 'अत्यंत' शब्द लिखने का तात्पर्य
है कि साधारण भिन्नदेशता में चमत्कार नहीं होता। जैसे यदि कहा
—"मोतियों की माला तो कंठ धारण करता है, किन्तु ... होते हैं
... तो इस वाक्य में यह ... नहीं होगा, क्योंकि ... है ...
... में नेत्रों का तृप्त होना ... है।

... २) पूर्वोक्त 'विरोध ... में भिन्न ... में रहनेवाले
...दार्थों (जाति, ... द्रव्य) ... में स्थिति
... बताई जाती ... है पर ... वाले कारण कार्य
...रा देशों में भि... ...नी है।

यहाँ भी सीतान्वेषण का [illegible] और [illegible] [illegible] सामान्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की पार कहा कहिए" वाक्य द्वारा वर्णित हुआ है।

(२७) असंगति
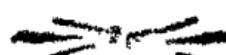
जहाँ कारण कार्य का या केवल कार्य का संगति के बिना (स्वाभाविक संबंध के विपरीत) किसी प्रकार उलट-फेर से वर्णन हो, वहाँ 'असंगति' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम असंगति

कारण-कार्य का एकाधिकरण्य[1] (एक स्थल में संगति) अग्नि-धूम की भाँति स्वभाव-सिद्ध होता है; परंतु जिसमें इसके विरुद्ध एक ही समय में अत्यंत वैयधिकरण्य[2] (कारण कहीं और कार्य कहीं) इनकी स्थिति कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मथुरा जायो देवकी, जदु-कुल-कैरव-चंद।
गोकुल भो ताको नवहि, नंद-सदन आनंद॥

यहाँ पुत्र जन्म रूपी कारण तो माता देवकी के यहाँ मथुरा

१ एकदेशता को एकाधिकरण्य कहते हैं। २ भिन्नदेशता को वैयधिकरण्य कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सोरठा ।

बनि बामन बलि गेह, हरन गए सरवस्व हरि ।
दै आए निज देह, चार मास प्रतिहार है ॥

यहाँ दैत्यराज बलि का सर्वस्व लेने के लिये जानेवाले श्रीवामन गवान् का चातुर्मास्य के लिये उसके द्वारपाल बनकर अपना रीर दे आने का विपरीत कार्य वर्णित हुआ है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

द-विधान बिजै-वर-हेतु बड़ी बिधि सौं द्विज-देव निहोर्यौ ।
चौचक बानर को दल आइ हुतासन-कुंडहि बारि सौं बोर्यौ ॥
क्रोध भयौ 'लछिराम' तहीं जिहि सामुहे मंगल को घट फोर्यौ ।
रावन श्रीमख-साधन छोड़ि बली लै गदा हनुमान पै दौर्यौ ॥
—लछिराम ।

यहाँ भी रावण का यज्ञ (सत्कार्य) छोड़कर हनुमान आदि की हिंसा करने के लिये गदा लेकर दौड़ने का वर्णन हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

यह ऊलट कासौं कहौ, निकट सुनाइ सु बैन ।
आए जीवन दैन घन, लगे सु जीवन लैन ॥
—हिंदी-अलंकार-प्रबोध ।

यहाँ भी जीवन देने के लिये आए हुए मेघों द्वारा वियोगिनी के जीवन लेने का विपरीत कार्य किया जाना कहा गया है ।

यहाँ भी सुख स्वरूप, रघु-वंश-मणि और मंगल-निधान श्री-रामचंद्रजी का पृथ्वी पर बिछी हुई कुश-साँथरी से अयोग्य संबंध बतलाया गया है।

३ पुन: यथा—

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
दो घड़ा तय्यार दूधों का तभी उसने किया॥
आपदा टालीं अनेकों बुद्धि, बल, विद्या दिया।
को भलाई की न जाने और भी कितनी किया॥
तीनपन है बीतता तो भी तनिक चेते नहीं।
हम पतित ऐसे हैं उसका नाम तक लेते नहीं॥
—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय।

यहाँ भी मनुष्य के जन्म से पहले ही दुग्ध के दो घड़े तय्यार करने आदि अनेक उपकारों के कर्ता परमात्मा का और जिसने परमात्मा का स्मरण तक नहीं किया, ऐसे मनुष्य का विषम संबंध वर्णित हुआ है।

४ पुन यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरघुनाथजी के मृदु गात का महा कठोर धनुष से अयोग्य संबंध बतलाया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में उन पदार्थों का वर्णन कहा जाता है, जिनमें परस्पर विरोध होता है और यहाँ जिन पदार्थों का पारस्परिक संबंध अयोग्य होता है, उनका वह संबंध कहा जाता है। यही भिन्नता है।

१ घड़का।

२ द्वितीय विषम

जिसमें कारण और कार्य की गुण-क्रियाओं के विषमता का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

कारन आदि निहारो कहौ, कमलासनजू को कमंडलु रूरे
दूजो भयौ घन स्याम जबैं, पद्मापति को पद पूत पगारे
त्यौं ही तृतीय भयौ है त्रिलोचन-जूट-जटान को घोर अँधारे
तीनहुँ अंब! अचंभित हैं लखि कंबु-कदंबक-अंबु निहारे

यहाँ श्रीगंगाजी के उत्पादक कमंडलु आदि कारणों के रंग और गंगाजल कार्य के श्वेत रंग (गुण) होने की विषमता का वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त-चरण।

सुकुमारी सुंदरी कृसोदरी सिवा पै सज्यौं,
थूल विकराल लंब-उदर कुमार है।*

यहाँ भी श्रीपार्वतीजी (कारण) के सुकुमारी, सुंदरी एवं कृशोदरी गुणों से विपरीत श्रीगणेशजी (कार्य) के क्रमशः स्थूल, विकराल एव लंबोदर गुणों का वर्णन है।

३ पुनः यथा—दोहा।

सेत पीत हर-गौरि-तनु, रस गंधक अनुरूप।
तिहि तिनकर सुमिरन-रगर, करत स्याम तनु रूप॥

१ अत्यंत श्याम। २ विष्णु। ३ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और त्रिलोक। ४ शंख-समुदाय जैसा जल। ५ पार्वती। ६ उत्पन्न किया। ७ पारा।
* पूरा पद्य 'मंगलाचरण' में देखिए।

३ पुनः यथा—दोहा ।

बिथुर्यो जावक सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँस ।
सलज हँसौंहीं लखि, लियो, आधी हँसी उसास ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी सपत्नी के पैर का फैला हुआ जावक दे[खकर]
नायिका को केवल सौत के फूहड़ सिद्ध होने के इष्ट की अप्राप्[ति]
नहीं हुई; प्रत्युत् अपने नायक से सपत्नी का प्रेम ज्ञात हो[ने]
अनिष्ट भी प्राप्त हुआ है ।

४ पुनः यथा—सवैया ।

छीन भई तन काममई जिनके हित बाट इते दिन हेरी
आगम[१] जोतिष बूझत ही नित देव मनावत साँझ सवेरी
आयउ प्रान-पिया परदेस तें देहु बधाई कहै सुन मेरी
'वृंद' कहै उन गारी दई औ निकार दई तस अंतर[२] चेरी
—[वृंद]

यहाँ भी नायिका को उसके पति के विदेश से आने
सूचना देनेवाली दासी को बधाई न मिलने का अलाभ [ह]
गाली मिलने एव घर से निकाले जाने का अनिष्ट भी प्राप्त हु[आ]
है, जिसका स्पष्टीकरण वृंद कवि ने इस प्रकार किया है—

१ शास्त्र । २ अंतरंग ।

* सौत के पैरों में जावक फैला हुआ देखकर (उसे फूहड़ समझ[कर])
नायिका हँसी, पर जब सौत को लज्जा-युक्त और मुसकुराते देखा
नायिका ने (अपने मन में यह समझकर कि मेरा पति ही जब
जावक लगाने लगा था, तब सात्विक भाव हो जाने के कारण उसीसे
फैल गया है ।) अपनी हँसी के बीच में ही विषाद से उच्छ्वास लि[या]

यहाँ श्रीराधा-गोविंद का 'ऐसा बनिता है तो ... फूल-छरी' आदि वाक्यों द्वारा अनेक प्रकार से समुचित बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

नैन सलोने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन।
मीठो भावै नोन पै, मीठे ऊपर नोन॥
—रहीम।

यहाँ भी सलोने नेत्र एवं मधुर ओठों के योग्य (सरा(हनीय)) संबंध का वर्णन है।

३ पुनः यथा—सवैया।

भाग जगे ब्रज-मंडल के उमग्यो दुहुँ ओर अनंग-अजायं।
साहिबी सील सिरोमनि रूप बनो रह्यो भू पर ओज अमायं।
डोलनि बोलनि काम-कलोलनि जोग-जथा 'लछिराम' लखायं।
राधिका जैसी सुहाग भरी अनुराग भरो तिमि नंद को जायं।
—लछिराम

यहाँ भी श्रीराधिका महारानी और श्रीनंदकिशोर के योग्य संबंध का वर्णन किया गया है।

२ द्वितीय सम

जिसमें कारण के अनुकूल ही कार्य का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

सिव सब सुरन प्रधान, जैसे हि जन-रंजन बरद।
तैसो हि तिन्हकर दान, —ज्ञान-मुक्ति वारानसिहिं॥

३ तृतीय सम

जिसमें विना किसी विघ्न के उस कार्य की सिद्धि का वर्णन हो जिसके लिये उद्यम किया जाय।

१ उदाहरण यथा—भुजंगप्रयात।

उदै है उदै आसल लौं नाम जिन्का,
रहा ग्राम लो काम संग्राम जिन्का[1]।
जुरे जाइ जोधा जहाँ जीति पाई,
फिरी है सताईस सो में दुहाई[2]॥

यहाँ श्रीबीकानेर-नरेश के पूर्वजों द्वारा अपने सैनिकों-द्वारा युद्ध (उद्यम) करके निर्विघ्न विजय प्राप्त करने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

राधा। पूजी गौरजा, भर मोतीडाँ थाल।
मथुरा पायौ सासरो, वर पायौ गोपाल॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के सुयोग्य वर-प्राप्ति के लिये गौरी-पूजन रूप उद्यम करने से मथुरा पुरी में ससुराल एवं नंदलाल वर की प्राप्ति विना विघ्न के हुई है।

सूचना—इस 'सम' अलंकार के तीनों भेद पूर्वोक्त 'विषम' अलंकार के तीनों भेदों के परस्पर विरोधी हैं।

---

१ राज्य-वृद्धि के अर्थ संग्राम करना ही जिनका कार्य था। २ अर्थात् सत्ताइस सौ ग्रामों का राज्य हो गया।

राव भावसिंह ! सत्रुसाल के सपूत यह,
अद्भुत बात 'मतिराम' के विचार मैं।
आइकै मरत अरि चाहत अमर भयौ,
महा वीर ! तेरी खंग-धार-गंग-धार मैं॥
—मतिराम।

यहाँ शत्रुओं का तेज ठंढा करने के लिये राजा भाऊसिंह का अपने प्रताप का ताप करना एवं उनके मुख में अंधकार करने के लिये अपने यश का प्रकाश फैलाना और शत्रुओं का अमर होने के निमित्त राजा भाऊसिंह की खड्ग-धार रूप गंगा में मरना ये विपरीत प्रयत्न हुए हैं। तीन जगह यही अलंकार है; अतः माला है।

(४१) अधिक

जहाँ आधेय[1]-आधार[2] की अधिकता (उत्कर्ष) का वर्णन हो, वहाँ 'अधिक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं-

१ प्रथम अधिक

जिसमें आधार से छोटे आधेय को वड़ा बतलाया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

लोक-अभिराम राम राजा ! राज रावरे मैं,
देखे सचराचर पै दुखिया न पाइए।
एक जन्म आपके की सिगरी सुनाऊँ व्यथा,
करुना-निधान ! बाकी बिगरी बनाइए॥

---

१ जो वस्तु किसीके आश्रय में हो। २ जिसके आश्रय में कोई वस्तु

भौन चौदहूँन मैं न मावै सकुचावै अंग,
भूरि अकुलावै वाहि अब तो बचाइए।
बेगी बगराइए न बस मैं रहैगी बात,
बसिदे लौं वाके और भुवन बसाइए॥

यहाँ राजा रामचंद्र का यश (आधेय) चौदह लोकों (आधार) से छोटा होने पर भी बड़ा बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अति बिसाल हरि-हृदय कों, राधा पूरन कीन।
यातें सौतिन के लिये, यामें ठौर रही न॥
—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी माया-मनुज श्रीकृष्ण के हृदय (आधार) से श्रीराधिका (आधेय) के स्वल्प होने पर भी उनका उत्कर्ष वर्णित हुआ है।

२ द्वितीय अधिक

जिसमें आधेय से छोटे आधार को बड़ा बतलाया जाय।

१ उदाहरण यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

उदर-उदधि[1] बलि-बलित अथाहा। जीव-जंतु जहँ कोटि कटाहा[2]॥

यहाँ कोटि ब्रह्मांड (आधेय) से श्रीशंकर का उदर (आधार) स्वल्प होने पर भी बड़ा बतलाया गया है।

२ पुन यथा—सवैया।

श्रीब्रजराजै विराट सरूप कहै जिन वेदनि कों रस चाख्यौ।
देखि सक्यौ नहिं देखिबे कों चतुरानन आपु कितौ अभिलाख्यौ॥

१ समुद्र। २ ब्रह्मांड।

बावल[1] बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बाँहिं[2] ।
मूरख बैद भरम नहिं जानै, करक कलेजै माहिँ ॥
मांस गलि-गलि छीजिया रे, करक रह्या गल माहिं ।
आँगलियाँ की मूँदड़ी म्हारै, आवन लागी बाँहि ॥

म्हारै नातो नाम को रे, और न नातो कोय ।
'मीराँ' व्याकुल विरहिनी रे, (पिय) दरसन दीजौ मोय ॥
—मीराँबाई ।

यहाँ भी अँगुली की मुँदरी (सूक्ष्म आधेय) से बाँह (आधार) के अधिक या बड़ी होने पर भी इसे सूक्ष्म बतलाया गया है ।

सूचना—यह अलंकार पूर्वोक्त 'अधिक' अलंकार के द्वितीय भेद के ठीक विपरीत है ।

(४३) अन्योन्य

जहाँ दो पदार्थों का अन्योन्य (परस्पर) समान संबंध वर्णित हो, वहाँ 'अन्योन्य' अलंकार होता है । इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम अन्योन्य

जिसमें पारस्परिक कारणता (एक दूसरे के कारण होने) का वर्णन हो ।

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

मोतिन को बिनु पानी प्रसिद्ध है औ तिनमें प्रगटै पुनि पानी ।
वृच्छ तें बीजरु बीज तें वृच्छ हू दान तें द्रव्य औ द्रव्य तें दानी ॥

१ पिता । २ नाडा ।

३ तृतीय अन्योन्य

जिसमें परस्पर समान व्यवहार (जैसा को उसके साथ वैसा) करने का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

आजु प्रसून बिछाइ बिराजत राधिका-श्रीव्रजराज रसौं
दोऊ दुहूँन पै रीझि रहे दुहुँ ओर के दौरि कटाछ करौं
हौं अब ही लखि आवति बेनु बजावत गावत गीत सुरौं
यौं बिलसैं बन माहिं दिए गल बाँहि कदंब की छाँहि छ

यहाँ द्वितीय चरण में श्रीराधा-माधव का परस्पर री एवं कटाक्ष-संपात करना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सकल सिँगार साजि साथ लै सहेलिन कौं,
सुंदरी मिलन चली आनँद के कंद कौं।
कवि 'मतिराम' मग करत मनोरथन,
पेख्यौ परजंक पै न प्यारे नँद-नंद कौं॥
नेह तें लगी है देह दाहन दहन गेह,
बाग के बिलोकें द्रुम बेलिन के वृंद कौं।
चंद कौं हँसत तब आयौ मुख-चंद, अब,
चंद लाग्यौ हँसन तिया के मुख-चंद कौं॥
—मतिराम।

यहाँ भी संकेत-स्थल को जाती हुई अभिसारिका नायिका के मुख-चंद्र द्वारा चंद्रमा का और वहाँ से निराश लौटते समय चंद्रमा द्वारा उसी (विप्रलब्धा) के मुख-चंद्र का उपहास किया जाना वर्णित है।

तृतीय अन्योन्य-माला १ उदाहरण यथा—सवैया ।

मैं मुरलीधर को मुरली लई, मेरी लई मुरलीधर माला ।
मैं मुरली अधरान धरी, उर माहिं धरी मुरलीधर माला ॥
मैं मुरलीधर कों मुरली दई, मोहिं दई मुरलीधर माला ।
मैं मुरलीधर की मुरली भई, मेरे भए मुरलीधर माला ॥

—अज्ञात-कवि ।

यहाँ श्रीराधाजी का श्रीकृष्ण की मुरली लेने एवं श्रीकृष्ण का उनकी माला लेने आदि के पारस्परिक चार समान व्यवहार वर्णित हुए हैं; अतः माला है ।

२ पुनः यथा—

मैं ढूँढता तुझे था जब कुंज और वन में ।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ॥
आह बन किसीकी मुझको पुकारता था ।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में ॥
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू ।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ॥

—कविवर प० रामनरेश त्रिपाठी ।

यहाँ भी भक्त और परमात्मा के एक दूसरे को ढूँढने आदि के तीन समान व्यवहारों का वर्णन होने के कारण माला है ।

---

(४४) विशेष

जहाँ कोई विशेष (आश्चर्योत्पादक) अर्थ (घटना) का वर्णन हो, वहाँ 'विशेष' अलंकार होता है । इसके तीन भेद हैं —

१ प्रथम विशेष

जिसमें बिना आधार के ही रमणीयता पूर्वक आ
की स्थिति कही जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अति अद्भुत अंबुज-वदनि ! कंठ-कंबु को अंग।
स्वर-अंबुधि[1] लहरात नभ,-मंडल राग-तरंग॥

यहाँ पृथ्वी आधार के बिना ही आकाश में 'स्वर-अं
आधेय की शोभन स्थिति कही गई है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

सूर-ससी न मरीचि प्रकासिन आठहुँ जाम रहै उजिया
जोग न भोग अलोक कला सुख सोक नहीं तिहुँ लोक तें न्या
वेद-पुरान प्रमान बखानत, जानहिगो कोउ जाननहा
सागर ! अंबर है न धरा पर, प्रेमहु को अधवीच अखा
—प्रवीण ह

यहाँ भी किसी आधार के विना प्रेम के अखाड़े आधेय
रमणीय स्थिति वर्णित हुई है ।

२ द्वितीय विशेष

जिसमें एक पदार्थ की एक ही समय में अनेक स्थ
पर स्थिति होने का वर्णन हो ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

कलह कुचाल लै कराल कलिकाल पैहै,
यातें विधि-लोक तें भो आवन तिहारो है।
गाजै उत घोर अघ-ओघ चहुँ ओर लिएँ,
वाजै इत श्रेय-स्रोत[2]-विजय-नगारो है॥

---

१ संगीत के सप्त स्वर रूपी समुद्र । २ कल्याण का प्रवाह ।

आवै काल-किंकर कराल, पै न पावै जीव,
तेरी दया संकर-स्वरूप सब धारो है।
द्वारन दरीचिन दरीन[1] में मरीचिन[2] में,
बीचिन[3] में भागीरथी-कीरति-उजारो है॥

यहाँ चतुर्थ चरण में श्रीगंगाजी की कीर्त्ति के प्रकाश की एक ही काल में द्वारन आदि अनेक स्थलों पर शोभन स्थिति का वर्णन है।

२ पुनः यथा—

हे मेरे प्रभु! व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में।
तेरी ही छवि का विकास है कवि की वाणी में मन में॥
माता के निःस्वार्थ नेह में प्रेममयी की माया में।
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में॥
पतिव्रता नारी के बल में वृद्धों के लोलुप मन में।
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय, यौवन में॥
तृण की लघुता में पर्वत की गर्व भरी गौरवता में।
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में॥
ऊषा की चंचल समीर में खेतों में खलियानों में।
गाते हुए गीत सुख दुख के सरल-स्वभाव-किसानों में॥
—कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी।

यहाँ भी परमेश्वर की छवि के विकास का कवि की वाणी आदि अनेक स्थलों पर एक ही काल में स्थित रहना वर्णित हुआ है।

३ पुन' यथा—कवित्त।

द्वारे पर झूँठ पछवारे पर झूँठ झुक्यौ,
दोहुँन किनारे पर झूँठ उलहत है।
अगन में झूँठ औ दलान माहिं झूँठ बसै
कोठे माँहि झूँठ छत ऊपर बहत है॥

१ गुफाओं। २ किरणों। ३ तरगों।

'ग्वाल' कवि कहत सभासन में झूँठे झूँठ,
सोनन में सोवन में झूँठ ही कहत है।
हाथी-भर झूँठ जाके उर में मगन सदा,
ऊँट-भर झूँठ जाके मूड़ में रहत है॥
—काव्य।

यहाँ भी झूठ का एक ही समय में चार आदि बहु स्थानों में रहना कहा गया है।

३ तृतीय विशेष

जिसमें कोई कार्य करने में किसी दूसरे दुर्लभ का लाभ हो।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध।

पूजे पितर भए सबै, सुकृत याग तप त्याग।*

यहाँ पितृ-पूजा करने में याग, तप एवं त्याग इन दुर्लभ कार्यों का भी लाभ होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जाहि विलोकि डरै जमराजउ, दूत विचारे विचार अधीर हैं।
नाम न जानत हैं रघुवीर को, यों 'लछिराम' गुमान गँभीर हैं।
साधन थोरे कहाँ लों कहों, मतवारे न डारत हैं पग नीर हैं।
तीर में आवत ही सरजू के, फलें फल चारयौं सुरापिन-भीर हैं।
—लछि०

यहाँ भी मद्यपान करनेवाले महा पापियों को श्रीसरयू-तीर पाँव रखने मात्र से चतुर्वर्ग-फल प्राप्त होने का वर्णन है।

---

* पूरा पद्य 'लाटानुप्रास' में देखिए।

(६५) व्याघात

जहाँ किसी कर्ता की क्रिया का अन्य द्वारा किसी प्रकार से व्याघात[1] किया जाय (बाधा पहुँचाई जाय), वहाँ 'व्याघात' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम व्याघात

जिसमें एक व्यक्ति कोई कार्य जिस क्रिया से सिद्ध करे, अन्य व्यक्ति उससे विपरीत क्रिया द्वारा वही कार्य सिद्ध करे।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

प्रीतम पावति जग जुवति, जिमि जागत सब कोइ।
तिमि पायौ अलि! आजु निसि, स्यामिनि साजन सोइ॥

यहाँ अन्य स्त्रियों का जाग्रत रहने की क्रिया से और श्रीराधाजी का इसके विपरीत निद्रित होने की क्रिया से पति-संयोग का कार्य सिद्ध करना वर्णित है।

२ पुन यथा—सवैया।

जन्म लिया जब तें जग में, तब तें सुक ने सब आस पौं त्यागी।
पुत्र कलत्र धरा धन धाम, जनक भया तिनमें अनुरागी।
क्रोधी महा दुरवासा भयो, जड़भर्त रह्यो नित सान्ति में पागी।
'दीपक' कर्म हुते सबके पर पाइहैं मुक्ति पै चारो सुभागी॥

—[illegible]।

१ [illegible]।

[illegible]

२ द्वितीय व्याघात

जिसमें एक व्यक्ति जिस निमित्त (उद्देश्य) से किसी क्रिया का समर्थन करे, अन्य व्यक्ति उसी निमित्त से उसके विपरीत क्रिया का युक्ति पूर्वक समर्थन करे।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुरन सहित हित-जगत कौं, पियो पियूष सुरेस।
तिहि जग-हित सौं जगत पति, गरल पियो गिरिसेस॥

यहाँ जगत का कल्याण करने के एक ही उद्देश्य से देवताओं-सहित इंद्र ने अमृत पान करने की क्रिया का और शंकर ने उसके विपरीत विष पान करने की क्रिया का समर्थन किया है।

२ पुन यथा—सवैया।

दानी कहै सुन सूम जो तू धन देइ न खाइ कहा मन पावै।
सूम कहै धन देहौं न तोहि सु दारिद के डर कौं डरपावै।
तू जु लुटावत [illegible] दिनौं कर दान करौ किन है बहकावै।
दानी कहै धन देत हौं याहि तें मोहि कौं दारिद को डर आवै।

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी दारिद्र्य-भय-निवृत्ति के उद्देश्य से कृपण दान न देने की क्रिया का और दातार दान देने की क्रिया का समर्थन करता है।

सूचना—(१) इस 'व्याघात' अलंकार के उक्त भेदों से पहले
ई ग्रंथकारों ने एक और भेद इस लक्षण से माना है—"जो जिस कार्य
ा कर्ता हो, वह उससे विरुद्ध कार्य करे" किंतु हमें पूर्वोक्त 'विरोध' अलं-
ार से उसमें कुछ भिन्नता नहीं ज्ञात होती; अत: वह नहीं लिखा गया।
(२) कुछ ग्रंथकारों ने ऊपर के दो भेदों में भी कोई अंतर न
ानकर उनको एक कर दिया है; परंतु अधिकांश ग्रंथकारों ने ये दोनों
ेद माने हैं, और वास्तव में इन दोनों में इतना अंतर वर्तमान भी है
ितना एक अलंकार के दो भेदों में होना चाहिए।

(४६) कारणमाला

जहाँ एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ उत्तरोत्तर (शृंखला-बद्ध-विधान पूर्वक) कारण-भाव से वर्णित किया जाय, वहाँ 'कारणमाला' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम कारणमाला

जिसमें पूर्व-पूर्व कथित पदार्थ उत्तरोत्तर कथित पदार्थों के कारण हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम-कृपा बिनु सपने हुँ, जीव न लह बिस्राम॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ पूर्व कथित विश्वास उत्तर कथित भक्ति का, भक्ति राम-कृपा का एवं राम-कृपा जीव की शांति का कारण कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

विद्या पढ़ि तातें तेरो जग जस बास बढ़ै,
जस हू तें बड़न में आदर लहतु हैं।
आदर तें मानत हैं बचन-प्रमान सब,
बचन तें जग माँझ संपति कहतु हैं॥
संपति के होत ही धरम सों सनेह करै,
धरम के प्रताप पाप दूर ही रहतु हैं।
पाप दूर रहे तें सरूप सुद्ध ताको पावै,
पाए सुद्ध रूप होत सबतें महतु हैं॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी पूर्व कथित विद्या उत्तर कथित यश का और आदर का कारण वर्णित हुआ है। इसी प्रकार अन्य सब हैं।

३ पुनः यथा—

सच्चा जहाँ है अनुराग होता। वहाँ स्वयं ही बस त्याग होता।
होता जहाँ त्याग वहीं सुमुक्ति। है मुक्ति के सन्मुख तुच्छ भुक्ति
—हिंदी अलंकार-प्रवेश।

यहाँ भी पूर्व कथित अनुराग उत्तर कथित त्याग का, त्याग मुक्ति का और मुक्ति भुक्ति की तुच्छता का कारण वर्णित है।

२ द्वितीय कारणमाला

जिसमें उत्तरोत्तर कथित पदार्थ पूर्व-पूर्व कथित पदार्थों के कारण हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान।
सो जग में जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान॥
—भूषण।
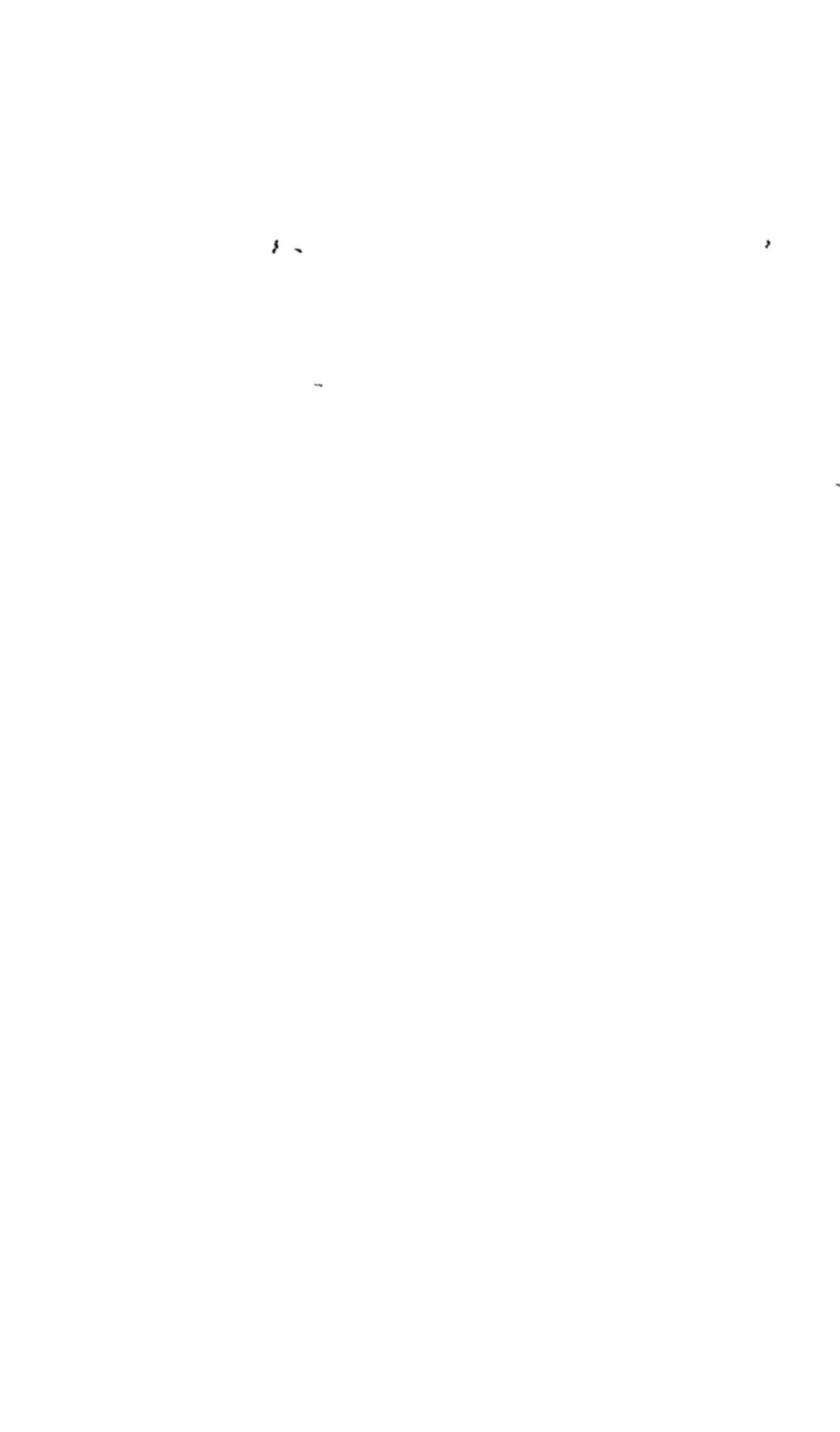
यहाँ पूर्वार्द्ध में पूर्व कथित 'तोष विन' (असंतोष) .. कथित वित्त-वासना का, वासना उद्यम का, उद्यम फल-प्राप्ति एवं फल-प्राप्ति रक्षा करने का कारण कहा गया है; अतः कारणमाला है; तथा तृतीय चरण में पूर्व कथित भीति का कथित धन-संग्रह एवं धन-संग्रह का शरीर सूख जाना वर्णित हुआ है, इससे द्वितीय कारणमाला है।

(४७) एकावली

जहाँ पूर्व-पूर्व कथित विशेष्य अर्थों में उत्तरोत्तर कथित अर्थों का विशेषण-भाव से गृहीत-मुक्त-रीति[1] पूर्वक स्थापन या निषेध किया जाय, वहाँ 'एकावली' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम एकावली, स्थापन की

१ उदाहरण यथा—सवैया।

सोहत सर्वसहा[2] सिव-सैल तें, सैल हु कामलतान-उमंग तें।
कामलता विलसै जगदंब तें, अंब हु संकर के अरधंग तें॥
संकर-अंग हु उत्तमअंग तें, उत्तमअंग हु चंद-प्रसंग तें।
चंद जटान के जूटन राजत जूट जटान के गंग-तरंग तें॥

यहाँ पूर्व कथित सर्वसहा आदि विशेष्य-शब्दों में उत्तर कथित शैल आदि शब्दों का विशेषण-भाव से गृहीत-मुक्त-रीति पूर्वक स्थापन हुआ है।

१ शृंखला-बद्ध-विधान अर्थात् साँकल की कड़ियों की भाँति शब्दों का परस्पर सबद्ध होना। २ पृथ्वी।

२ पुनः यथा—सवैया ।

विद्या वही जातें ज्ञान बढ़ै अरु ज्ञान वही करतव्य सुझावै।
करतव्य वही जग में दुख आपने बंधुन को विनसावै॥
साधु वही जो विपत्ति हरै औ विपत्ति वही जो कि वीर बनावै।
वीर वही अपने तन कों धन कों मन कों पर हेत लगावै॥

—हिंदी-अलंकार-प्रबोध ।

यहाँ भी पहले कहे हुए विद्या आदि विशेष्यों में उनके पश्चात् कहे हुए ज्ञान आदि विशेषण रूप से उत्तरोत्तर स्थापित होते चले गए हैं।

२ द्वितीय एकावली, निषेध की

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

गेह न कछु बिन तनय जो, तनय न विनय विहीन।
विनय न कछु विद्या बिना, विद्या बुधि बिन खीन॥

यहाँ पूर्व-पूर्व कथित गेह आदि विशेष्य-शब्दों के उत्तरोत्तर कथित तनय आदि शब्द विशेषण रूप से वर्णित हुए हैं, और 'न कछु' पद से निषेध हुआ है।

२ पुन यथा—छप्पय ।

धिक मंगन बिन गुनहि, गुन सु धिक सुनत न रीझै।
रीझ सु धिक बिन साँच, साँच धिक देत जु खीझै॥
देबो धिक बिन मौज, मौज धिक धरम न लावै।
धरम सु धिक बिन दया, दया धिक अरि पर आवै॥
अरि धिक चित्त न सालही, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक 'केसव' ग्यान बिन, ग्यान सु धिक बिन हरि-भगति॥

—[illegible]

(४६) यथासंख्य

जहाँ प्रथम कथित अर्थों का उत्तर कथित अर्थों से यथा-क्रम संबंध वर्णित हो, वहाँ 'यथासंख्य' अलंकार होता है। इसको 'क्रम' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

मुख-मुसकान-मनोहरताई। सीत प्रकास सुबास हुताई॥
समुझि स्वयंभु अमाकृत सोभा। चतुर बिरंचिहि भा चित छोभा॥
बिरचेउ रुचिर प्रचुर अनुहारा। चारु चंद्रिका मंजुल मारा॥
चंद गुलाब सुगंधन पूरे। तदपि रहेउ अमिताय अधूरे॥
तब ते बिधि रिसाइ, करि डारे। अनित अनंग सरुज कटियारे॥

यहाँ शंकर के मुखारविंद की मुसकान, मनोहरता, शीत, प्रकाश एवं सुवास प्रथम कथित अर्थों का क्रमशः उत्तर कथित चाँदनी, मार (काम), चंद एवं गुलाब अर्थों से और इन सब का अनित, अनंग, सरुज एवं कटियारे से संबंध वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुरगन हू के श्रवन सब, उरगन के दृग लाल।
अध ऊरध ह्वै जात जब, बाजति बेनु रसाल॥

यहाँ भी 'श्रवन' और 'दृग' का 'अध' और 'ऊरध' से अन्वय हुआ है।

३ पुनः यथा—श्लोक (अनुष्टुप्)।

या लोभाद्या परद्रोहाद्यः पात्रे यः परार्थके।
प्रीतिर्लक्ष्मीर्व्यय. क्लेशः सा किं सा किं स किं स किम्॥*

—अज्ञात कवि।

* लोभ से की हुई प्रीति, पर-द्रोह-जन्य लक्ष्मी, पात्र के प्रति किया हुआ व्यय और परार्थ के लिये किया हुआ क्लेश कुछ भी नहीं समझना चाहिये।

२ पुनः यथा—दोहा ।

नृत्य-कला-सिख दै ललित, लतिकनि जमुना-तीर ।
सुमन-गंध उनको मधुर, लेवत धीर समीर ॥
—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।

यहाँ भी वायु का लताओं को नृत्य-कला की शिक्षा देकर उनसे पुष्पों की सुवास लेना (उत्तम का विनिमय) वर्णित है ।

(ख) न्यून के साथ न्यून का

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अघ लीजतु दीजतु नरक, कीजतु यह व्यवहार ।
याही तें जम ! राउरे, काम नाम इकसार ॥

यहाँ यमराज का जगज्जीवों के पाप लेने एवं उनको नरक देने के रूप में न्यून के साथ न्यून का विनिमय वर्णित है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

मृतक अस्थि लै गंग ! तुम देत प्रेत-गन-संग ।
मुंड-माल मृग-छाल अरु भूषन भस्म भुजंग ॥

यहाँ भी श्रीगंगाजी द्वारा जीवों की हड्डियाँ लेकर उनको प्रेत-गन-संग मुंड-माल मृग-छाल भस्म एवं सर्पों के प्रदान करने के रूप में न्यून से न्यून का विनिमय वर्णित है ।

२ द्वितीय परिवृत्ति

जिसमें विषम पदार्थों के विनिमय का वर्णन हो ।
इसके भी दो भेद होते हैं—

(क) उत्तम के साथ न्यून का

१ उदाहरण यथा—सवैया।

देत महेस-जटा-निकसी[1] न किसी तपसी सन लेत हौं पा
जैसो करै तिहिँ तैसो मिलै यह राउरी वान पुरानन ग
पार करौ भव-सागर तें करि चौगुनी चाकरी चाहौं चौ
लेत मलाह मलाह तें हौं सोइ चाहत हौं तुमतें रघुरा

यहाँ श्रीरघुनाथजी से नाविक का कथन है—"आर
(राम, लक्ष्मण, जानकी और गुह) को पार उतार कर
अकेला पार होना चाहता हूँ" अतः अधिक (चौगुने) दे
(चौथाई) का विनियम वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

दीन्हो होइ सु पाइए, कहते वेद - पुरान।
मन दै पाई वेदना, वाह ! हमारे दान॥
—अज्ञात।

यहाँ भी मन उत्तम पदार्थ देकर वेदना (पीड़ा) न्यून
लेना वर्णित है।

(ख) न्यून के साथ उत्तम का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तस्कर ! तेरे करन की, कहँ लगि करिय सराह।
दीन्हो दारिद द्रव्य लै, अब सुख सोवत साह॥

यहाँ चोर का साहूकार को दरिद्रता (न्यून पदार्थ) दे
बदले में द्रव्य (उत्तम पदार्थ) लेने का वर्णन है।

1 श्रीगंगाजी।

यहाँ, द्यूत आदि जो छल के योग्य स्थान होते हैं, इसका निषेध करके केवल मध्या नायिका के पति-प्रेम एवं दंपति के परिहास में स्थापित किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कानन-चारिन[1] मैं कुटिल, केवल कामिनि-नैन।
रहे अनुज सिय सहित जब, राम किएँ बन ऐन[2]।

यहाँ भी कुटिलता को उसके योग्य स्थान कानन-चरों (व्याध, किरात, सिंह, सर्पादि) से हटाकर केवल स्त्रियों के नेत्रों में उसका स्थापन किया गया है।

परिसंख्या-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

छीन तनवारे हैं मतंग मद-मत्त जहाँ,
माँगत निहारी है पपीहन की पंत को।
कुटिल मयंक बार-अंगना में ब्याज वस्यौ,
दोष-अंगीकार काव्य-रसिक अतंत को॥
धूजन धुजा में, मुँह-मलिन तिया के कुच,
अंग-छेद अंगना दिखावै गज-दंत को।
चोरी मन की है, 'नाहीं' नवल-किसोरी-मुख,
आज अवनी में राज राजै जसवंत को॥

—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ कृशता आदि को इनके योग्य स्थान वियोगी आदि से हटाकर केवल मतवाले हस्तियों आदि में स्थापित किया गया है। यहाँ दस परिसंख्याएँ होने के कारण माला है।

---

१ वनचर और कानों तक विचरनेवाले। २ स्थान।

(५३) विकल्प

जहाँ दो समान बलवाले विरोधी पदार्थों का एक काल में एक ही स्थान पर रहना असंभव होने के कारण चातुर्य-गर्भित विकल्प (यह वा वह) का वर्णन हो, वहाँ 'विकल्प' अलंकार होता है। इसके वाचक-शब्द कै, कि, अथवा, आदि देखे जाते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कहँ उरझै किहि काज ? उर, लगी लगन की लाइ।
सखि ! देखिय किहिं विधि मिलहिं, पिय आइ कि जिय जाइ॥

यहाँ उत्कंठिता नायिका के पति-मिलाप में पति का आना एवं प्राण-वियोग होना, दोनों समान बलवाले कारणों का एक नायिका (स्थान) में एक ही समय में स्थित रहना असंभव है; अतः "पिय आइ कि जिय जाइ" विकल्प-वाक्य चातुर्य-भाव से कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

की तजि मान अनुज इव, प्रभु - पद - पंकज - भृंग।
होहि कि राम - सरानल, खल ! कुल - सहित पतंग॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी शुक दूत का रावण से कथन है कि या तो श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों के भ्रमर बनो, अथवा अपने परिवार-सहित उनके बाणाग्नि में पतंग हो जाओ। इन दोनों तुल्य बलवान् अर्थों की एक जगह स्थिति असंभव होने के कारण एक की स्थिति के लिये 'विकल्प' वर्णित हुआ है।

यहाँ नवोढ़ा नायिका में (पति-सहवास की बात अपनी ननँद से सुनते ही) सहमने, सकुचने, कंपित होने एवं त्रस्त होने के रूप में अनेक भावों का एक ही समय में गुंफन हुआ है।

२ पुनः यथा—

चित्र-कला-कौसल्य सिखे बिन हस्त लेखनी धारी।
बैठहि तत्प्रतिरूप उतारन करि अभिलाषा भारी॥
चित्र-दुर्दसा देखि उड़े सब मेरे होस-हवास।
उमँगे एक बार ही तीनों क्रोध सोक उपहास॥

—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

यहाँ भी निकृष्ट कवि की कविता देखकर उक्त कवि के हृदय में क्रोध, शोक और उपहास इन तीनों भावों का एक साथ उदित होना वर्णित है।

३ पुनः यथा—दोहा।

सहित सनेह सकोच सुख, स्वेद कंप मुसुकानि।
प्रान पानि करि आपने, पान दए मो पानि॥

—बिहारी।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध में नायिका के स्नेहादि भावों का एक ही समय में होना कहा गया है।

सूचना—यहाँ गुण, क्रिया आदि भावों का एक साथ होना वर्णित होता है, पूर्वोक्त 'कारक दीपक' अलंकार में केवल क्रियाओं का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है और पूर्वोक्त 'पर्याय' अलंकार के द्वितीय भेद में अनेक वस्तुओं का क्रम पूर्वक एक आश्रय होना है। यही इनमें भेद है।

२ द्वितीय समुच्चय

जिसमें, किसी कार्य के करने को एक साधक पर्याप्त होने पर भी ईर्ष्या-भाव से साधकांतर उपस्थित हो।

३ पुनः यथा—सवैया ।

एती सुवास कहाँ अनते यह को इहि भाँतिन को घर छ्वैहैं ।
आवत है यह गोज समीर लिए री ! सुगंधन को जु दलै हैं ॥
देखि अली! इन भाँतिन की अलि-भीरन और सु कौन न ह्वैहैं ।
कै उत फूलन को वन होइगो, कै उन कुंजन राधिका ह्वैहैं ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी सुगंधित वायु का स्पर्श होने पर श्रीकृष्ण का किसी सखी से कथन है कि यह वायु जिधर से आता है, उधर पुष्प-वाटिका वा श्रीराधिका महारानी होंगी। इन दो पदार्थों में से एक के होते हुए दूसरे की स्थिति अनावश्यक होने के कारण दोनों विरोधी और तुल्य बलवान हैं ।

---

(५९) समुच्चय

जहाँ अनेक पदार्थों का समुच्चय (समूह) एक समय में एक साथ होना वर्णित हो, वहाँ 'समुच्चय' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम समुच्चय

जिसमें अनेक गुण, क्रिया आदि भावों का गुंफन (गठन) हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

आजु अवसि इहि ननद मुँह, सुनन हि भरी उसास ।
सहमि सकुचि दंपति त्रसति, सपदि गई हिग-सास ॥

यहाँ नवोढा नायिका में (पति-सहवास की बात अपनी ननँद से सुनते ही) लजाने, सकुचाने, चकित होने और प्रसन्न होने के रूप में अनेक भावों का एक ही समय में संकुलन हुआ है।

[illegible]

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अघ-अनेक-मय एक ही, नगर-नारि को नेह ।
पुनि मदिरादि प्रमाद जहँ, धरम रहै किमि गेह ? ॥

यहाँ धर्म को ध्वंस करने में वेश्या से प्रेम करना ही बहुत है; पर मद्यपान आदि प्रमादों का होना भी कहा गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

धार बराबर बारि है, तापर बहत बयारि ।
रघुपति पार उतारिहैं, अपनी ओर निहारि ॥

—अज्ञात कवि ।

यहाँ भी समाहृत नौका के डुबाने में उसकी बाड़ (ऊपर का हिस्सा) के बराबर जल हो जाना ही साधक पर्याप्त था; किंतु ऊपर से हवा का आ जाना भी वर्णित किया गया है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

मुनि-गन मिलनु बिसेषि बन, सब हि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु-आयसु, बहुरि, संमत जननी ! तोर ॥

—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी श्रीरघुनाथजी के वन-गमन में केवल मुनियों का समागम ही कल्याण करने के लिये पर्याप्त था, किंतु पिता की आज्ञा एवं माता के मत रूपी अन्य साधकों का उपस्थित होना भी कहा गया है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'सहोक्ति' अलंकार में भी एक क्रिया में दो अर्थों का अन्वय होता है, पर वहाँ एक का प्रधानता से और दूसरे का गौणता से होता है, तथा यहाँ सबका प्रधानता से ही अन्वय होता है और 'सह' आदि वाचक शब्द भी नहीं होते । यही इनमें अंतर है ।

(५५) समाधि

जहाँ किसी कार्य के कर्त्ता को अकस्मात् प्राप्त होने-वाले किसी दूसरे कारण की सहायता से कार्य करने में सुगमता हो, वहाँ 'समाधि' अलंकार होता है। इसका दूसरा नाम 'समाहित' भी है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

असुरन हनि पुनि जदुन लौं, जतन रहे हरि हेर।
मुनि दुरवासादिकन तें, तब हि करी तिन छेर॥

यहाँ माया-मनुष्य श्रीकृष्ण असुर-संहार करके यदुकुल-विनाश का विचार कर ही रहे थे कि दैवात् यादवों ने श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को गर्भवती स्त्री बनाकर दुर्वासादि मुनियों से परिहास किया। इस आकस्मिक कारणांतर की प्राप्ति से उक्त कार्य का सुगमता से सिद्ध होना वर्णित है।

२ पुन यथा—कवित्त।

हँसत खेलत खेल मंद भई चंद-दुति,
कहत कहानी अरु बूझत पहेली-जाल।
'केसोदास' नींद मिस आपुने-आपुने घर,
हरे हरे उठि गईं गोपिका सकल बाल।
घोर उठे गगन सघन घन चहुँ दिसि,
उठि चलें कान्ह [illegible]
आधी रात अधिक अँधेरी मांझ [illegible]
राधिका की आधी [illegible]

—[illegible]।

यहाँ भी धाय को श्रीराधा-माधव का संयोग कराने में बादलों का घटा-टोप हो जाने रूप अकस्मात् कारणांतर की प्राप्ति होने के कारण सुगमता होना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'समुच्चय' अलंकार के द्वितीय भेद में अन्य कर्त्ता स्पर्द्धा भाव से वही कार्य सिद्ध करने में सम्मिलित होते हैं; पर यहाँ वास्तविक कर्त्ता एक ही होता है अन्य कर्त्ता तो अकस्मात् आ जाते हैं, यही इनमें अंतर है।

(५६) प्रत्यनीक

जहाँ स्वयं शत्रु के अजेय होने के कारण उसके किसी संबंधी को बाधा पहुँचाने का वर्णन हो, वहाँ 'प्रत्यनीक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरन स्याम-तम नाम तम, उभय राहु सम जान।
तिमिरहिं ससि सूरज ग्रसत, निसि-दिन निस्चय मान॥

यहाँ चंद्र और सूर्य के द्वारा अपने अजेय शत्रु राहु के संबंधी तम (अंधकार) को ग्रसना वर्णित है। उसका श्याम वर्ण और तम नाम होने के कारण वह राहु का संबंधी समझा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

एक मनोभव कीन्हौं हुतो हर, पाँच नराच[1] अमोघ दिए कर।
त्यों इक और मनोज कियो हरि[2] हू सर सोरह तासु किए कर॥
वे दोउ प्रान हरैं अबलान के या हित राधिका रोप हिए कर।
नाह तें त्रास तिन्हैं, भुज पास मैं फाँसि इन्है निज दास लिए कर॥

१ बाण। २ वेद में कहा है—'चन्द्रमा मनसो जात.'।

यहाँ भी वियोगिनी स्त्रियों को सतानेवाले काम एवं चंद्रमा को श्रीराधिकाजी अजेय समझकर इनको उत्पन्न करनेवाले शिव एवं कृष्ण को दंड देती हैं जो चतुर्थ चरण में कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

सोवत सीतानाथ के, भृगु मुनि दीन्ही लात।
भृगु-कुल-पति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात॥
—केशवदास।

यहाँ भी विष्णु-भगवान् के हृदय में लात मारनेवाले भृगुजी की जगह उनके वंशज परशुरामजी की विष्णु के अवतार श्रीराम-जी द्वारा सत्ता हरना वर्णित है।

सूचना—(१) यद्यपि यह 'प्रत्यनीक' अलंकार 'हेतूत्प्रेक्षा' (चाहे इसमें 'मनु' आदि वाचक हो या न हो) का ही एक विशेष रूप है, तथापि किसी शत्रु के संबंधी के प्रति पराक्रम करने के चमत्कार-विशेष के कारण यह स्वतंत्र अलंकार माना गया है।

(२) कुछ ग्रंथों में साक्षात् शत्रु के प्रति पराक्रम करने में भी 'प्रत्य-नीक' माना है; परंतु यह तो निश्चित रूप से 'अन्योन्य' अलंकार' के तृतीय भेद का विषय है।

---

(५७) काव्यार्थापत्ति

जहाँ दंडापूपिका-न्याय[१] से एक अर्थ के वर्णन में दूसरा अकथित अर्थ भी सिद्ध हो जाय, वहाँ 'काव्यार्था-पत्ति' अलंकार होता है।

---

१ जैसे—दंड (डंडा) खींचने से उसपर लिपटे हुए (मालपुए) भी खिंच आते हैं।

१ [illegible] यथा—दोहा।

[illegible] पुंज जब ले गई, [illegible]।
[illegible] मिले, रहे कहाँ ? [illegible] ॥

यहाँ [illegible] के वर्णन में [illegible], [illegible] का मिलना ([illegible]) भी 'कहाँ रहे' वाक्य से सिद्ध हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

जिन-जिन सीपन के मोती मढ़े भूषन में,
तरे ते-ते सीप [illegible] करि निज न्हाव कों।
जिन जिन अम्बुज की माल हुती भूषन में,
'सूरति' सु तरे तेऊ छाँडि दुख दाव कों ॥
भीजत पटंबर [illegible] भए हैं कीट,
न्हान तें गैंडा गज तरे निज भाव कों।
सुंदरिन के अन्हान पाऊ तरे ऐसे अब,
तिनको कहा है ? जाने गंगा के प्रभाव कों ॥
—सूरति मिश्र।

यहाँ भी श्रीगंगाजी में स्नान करते हुए स्त्रियों के आभूषणों में जिन सीपों के मोती लगे हुए थे, उन सीपों आदि के तर जाने के वर्णन में गंगा के प्रभाव का जाननेवालों का तर जाना अकथितार्थ भी सिद्ध हुआ है।

३ पुनः यथा—

अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ। रहो किमाकारक तू रसात्मिके! ॥
स्वरूप ही का जब ज्ञान है नहीं। विभूषणों की तब क्या कहें कथा? ॥
—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

यहाँ भी कविता के स्वरूप का ज्ञान न होने के वचन में "विभूषणों (अलंकारों) का ज्ञान न होना" अकथितार्थ भी "क्या कहैं कथा ?" द्वारा सिद्ध हुआ है।
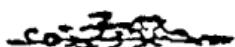
(५८) काव्यलिंग

जहाँ समर्थन के योग्य कथितार्थ का ज्ञापक कारण[१] के द्वारा समर्थन किया जाय, वहाँ 'काव्यलिंग' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—शार्दूलविक्रीडित।

आवासो धवलो धराधरगुरुर्गौरी गृहार्धीश्वरी।
शुक्लोक्षा वहनः कपर्दविलसद्गङ्गाऽवलक्षप्रभा॥
वर्णः श्वेतसितोज्ज्वलास्तु विशदा माला कपालात्मिका।
स त्वं मे न मनोऽमलं न कुरुषे शुभ्रप्रियश्शङ्कर!॥ ८

यहाँ भक्त की शंकर से अंतःकरण निर्मल करने की जो प्रार्थना है वह कथितार्थ है जिसका उनके कैलाश आदि अनेक शुभ्र वस्तु प्रिय होने के सूचक हेतु से समर्थन किया गया है।

१ कारण दो प्रकार के होते हैं—(१) [illegible] हेतु—[illegible] और (२) [illegible]।

८ [illegible]

२ पुनः यथा—दोहा ।

श्री पुर में मग मध्य मैं, तैं वन करी अनीति ।
री मुँदरी ! अब तियन की, को करिहै परतीति ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी माता जानकी का मुद्रिका के प्रति यह कहना—"अब स्त्रियों का विश्वास कौन करेगा ?" विवक्षितार्थ है, जिसका "अयोध्या में राज-लक्ष्मी ने, मार्ग में स्वयं मैंने एवं वन में तूने श्रीराम-जी को त्याग दिया" इस ज्ञापक कारण से समर्थन किया गया है ।

३ पुनः यथा—सवैया ।

जाइ मिले उड़िकै अपं तें, तब ही जब तें नँदलाल निहारे ।
मैं कियौ मान सखी ! मन मैं, छिन ये न भए तन दुःखित भारे ॥
कासौं कहै हलके पल चंचल, हैं इनके अति कातर तारे ।
लाज कहा इन नैनन कों ? जिनके नित कीजत हैं मुख कारे ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी नायिका के नेत्रों की निर्लज्जता कथितार्थ है, जो "जिनके नित कीजत हैं मुख कारे" कारण से सिद्ध किया गया है ।

४ पुनः यथा—सवैया ।

वैद्य की औषध खाओ कछू न करौं व्रत-संयम री ! सुन मोसे ।
तेरो ही पानी पिओं 'रसखानि' सँजीवन-लाभ लहौं सुख तोसे ॥
एरी सुधामई भागीरथी ! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तोउ पोसे ।
आक धतूरे चबात फिरै विष खात फिरै सिव तेरे भरोसे ॥
—रसखान ।

यहाँ भी "गंगाजी द्वारा किसी कुपथ्य करनेवाले तक का भी पोषण किया जाना" कथितार्थ है, जिसका इन्हीं के भरोसे पर श्रीशंकर के आक धतूरा चबाने के कारण द्वारा समर्थन किया गया है ।

सूचना—(१) इस 'काव्यलिंग' को कई ग्रंथकारों ने स्वतंत्र अलंकार न मानकर 'हेतु' अलंकार का प्रकार मात्र माना है; किंतु इसमें अभिलषितार्थ का ज्ञापक कारण द्वारा समर्थन होता है; और 'हेतु' के प्रथम भेद में कारण-कार्य का वर्णन मात्र तथा द्वितीय भेद में इनकी एकात्मता होने के कारण इन दोनों अलंकारों में भिन्नता की स्फूर्ति स्पष्ट होती है।

(२) इस 'काव्यलिंग' के लक्षण में मतभेद है। यथा—(क) "जो समर्थन के योग्य हो, उसका समर्थन किया जाय" (ख) "युक्ति से अर्थ का समर्थन किया जाय" (ग) "प्रत्यक्ष, हेतु अथवा प्रमाण द्वारा युक्ति से समर्थन किया जाय" किंतु तात्पर्य सबका समर्थन से है।

(५६) अर्थांतरन्यास

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थांतर (अन्यार्थ) के न्यास (स्थापन) से समर्थन किया जाय, वहाँ 'अर्थांतरन्यास' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—
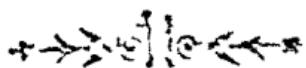
१ प्रथम अर्थांतरन्यास

जिसमें प्रस्तुत विशेष[1] का सामान्य[2] अर्थांतर से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दियो सखन सम्बल, लियो, हर हालाहल [illegible]
पर-उपकारक हीं सदा, बड़ [illegible] ?

१ जिसका किसी एक (विशेष) से सम्बंध हो। २ जिसका अनेक (सर्व-साधारण) से सम्बंध हो।

यहाँ देवताओं को अभय-दान देने के लिये शंकर के विष पान करने के प्रस्तुत विशेष का महात्मा लोगों के परोपकारार्थ अनेक कष्ट सहन करने के सामान्य अप्रस्तुत अर्थांतर से समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तुव दत माला मलिन हू, धरति हरष-जुत बाल।
बसत सदा गुन प्रेम में, नहीं वस्तु में लाल!॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी नायक की दी हुई कुम्हलाई हुई माला भी नायिका के प्रेम पूर्वक धारण करने के विशेष प्रस्तुतार्थ का "गुण सदा प्रेम में रहता है न कि वस्तु में" इस सामान्य अन्यार्थ से समर्थन हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया।

ज्यों करुना परिपूरित नेह सों कोऊ सुभासुभ कर्म निहार न।
भागीरथी! नहिं छोड़ सकौ तुम पापी हजारन को नित तारन॥
त्यों अघ-ओघन सों मोहिं प्रेम है ताहि न हौं हुँ सकौं करि वारन।
काहू सों है न सकै जननी! जग में अपनो ये स्वभाव निवारन॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

यहाँ भी श्रीगंगाजी को पतितपावनता से एवं भक्त को पापों से प्रेम होने के प्रस्तुत विशेषार्थ का किसी से अपना स्वभाव न बदल सकने के सामान्य अर्थांतर से समर्थन किया गया है।

२ द्वितीय अर्थांतरन्यास

जिसमें प्रस्तुत सामान्य का विशेष अर्थांतर से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पलटत ही प्रारब्ध के, सुखद दुखद ह्वै जात ।
रवि पोषत, सोषत वही, जल जात हि जल-जात ॥

यहाँ "भाग्य का उलट-फेर होते ही अनुकूल पदार्थ भी प्रतिकूल हो जाता है" इस प्रस्तुतार्थ सामान्य का "कमलों को पोषण करनेवाला सूर्य उनका जल सूखते ही उनको भी सुखा देता है" इस विशेष अर्थांतर से समर्थन किया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

साहन को तो भै घना, 'सहजो' निरभै रंक ।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥
—सहजो बाई ।

यहाँ भी साह और रंक के सामान्य प्रस्तुतार्थ का कुंजर और चींटी के विशेष अन्यार्थ से समर्थन हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥
—कबीर साहब ।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध के सामान्य प्रस्तुतार्थ का उत्तरार्द्ध के विशेष अर्थांतर से समर्थन किया गया है ।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'दृष्टान्त' अलंकार में भी दो स्वतंत्र वाक्य होते हैं, किंतु वहाँ उनका पृथक् उपमेय-उपमान वाक्य और उनके साधारण धर्मों का बिंब-प्रतिबिंब-भाव होता है और यहाँ सामान्य-विशेष वाक्यों का एक दूसरे से समर्थन होता है ।

(२) पूर्वोक्त 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' में अप्रस्तुत के वर्णन में प्रस्तुत सूचित किया जाता है; और यहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों का स्पष्ट वर्णन, सामान्य-विशेष का संबंध तथा एक से दूसरे का समर्थन होता है।

(३) पूर्वोक्त 'काव्यलिंग' में समर्थन के योग्य कथितार्थ का सूचक-कारण द्वारा समर्थन होता है; और यहाँ सामान्य-विशेष का परस्पर समर्थन उदाहरण के रूप में होता है।

(९०) विकस्वर

जहाँ किसी विशेषार्थ का सामान्यार्थ से समर्थन किया जाने पर भी संतोष न होने पर पुनः किसी विशेषार्थ द्वारा समर्थन किया जाय, वहाँ 'विकस्वर' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विकस्वर

जिसमें उपमान-रीति से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

विमल विरागी त्यागी यागी वड़भागी भक्त,
विषयानुरागी त्यौं कुसंगति-करैया है।
कोऊ पंचकोसी माहिं पंचपन पावै, मुक्ति,
सबको समान देत कासी पुरी मैया है॥
कारक-परोपकार आसय-उदार जेते,
होत सब याही रीति आरति-हरैया है।
तारै करि छोह औ निहारै कनकै न लोह,
ऊँच-नीच-भेद ना विचारै जिमि नैया है॥

यहाँ श्रीकाशीजी के विशेषार्थ का परोपकारी पुरुषों के सामान्यार्थ से समर्थन करने पर भी संतोष न होने पर पुनः उपमान-रीति से नौका के विशेषार्थ द्वारा समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

विघन विदारन प्रजन के, रिपु दारन नृप गंग।
ऐसे हि करन महान, जिमि, पदमन तमन पतंग॥'

यहाँ भी श्रीबीकानेर-नरेश महाराज गंगासिंह के विशेषार्थ का महान् पुरुषों के सामान्यार्थ से समर्थन किया जाने पर भी 'जिमि' वाचक द्वारा पतंग (सूर्य) के विशेषार्थ से पुनः समर्थन किया गया है।

२ द्वितीय विकस्वर

जिसमें अर्थांतरन्यास-रीति से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गहन गुहा तैं आलु-दुलिता दिखाहि लागै,
ताका अरभायौ मन रोम दी हलान है,
सिंधु में सिधारि मारि सत्तासुर लीन्हों सब,
नाग जमुना में नाथि आयौ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

यहाँ [illegible]
[illegible]

१ [illegible]
[illegible]

सामान्य-वाक्य से समर्थन हुआ है; फिर उसका चतुर्थ चरणगत अर्थांतरन्यास-रीति के विशेष-वाक्य द्वारा समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

सरजू-सरिता-तट वाटिका मैं, रहे लागि रह्यौ रसना' पिक पांकहि।
तिहिं ठौं समुझैं नहिं काकिल कौं यों बैठ्यो जु काक रसाल के अंकहि।
सब ही की सराहना होवति है, जब मान कौ आन परे जु अनंकहि।
कसतूरिका जानतिगे जग मैं, नरपाल भुवाल के भाल के पंकहि॥
—जसवंत जसोभूषण।

यहाँ भी "कोकिल के स्थान पर जा बैठने से काक को महत्त्व प्राप्त होना" विशेषार्थ है, जिसका तृतीय चरणगत सामान्यार्थ से समर्थन होने पर भी चतुर्थ चरणगत अर्थांतरन्यास-रीति के विशेषार्थ से पुनः समर्थन किया गया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

पैहौ मृगेंद्र' के अंगन' मस्त-मतंगन-मस्तक-मोती-बिसाला'।
गीदर-गेह परे खर-अस्थि किरातन के तन गुंज की माला॥
पैहो सुपूत के पुस्तक पून कपूत-निकेत' कुनीति कराला।
जैहौ जहाँ फल पैहौ जथा थल ग्वाल के दूध कलाल के हाला'॥
—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी पूर्व के तीन चरणगत विशेषार्थों का "जैहो जहाँ फल पैहो जथा-थल" सामान्यार्थ से और फिर "ग्वाल के दूध कलाल के हाला" विशेषार्थ से समर्थन हुआ है।

---

१ हस्तिनी। २ सिंह। ३ अङ्गण = आँगन। ४ मतवाले हाथियों के मस्तकों के बड़े बड़े मोती। ५ स्थान। ६ मदिरा।

(६१) प्रौढ़ोक्ति

जहाँ किसी कार्य के उत्कर्ष का ऐसा कारण कल्पित किया जाय जो वास्तव में न हो, वहाँ 'प्रौढ़ोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

आसुरी सुरी के हैं न किन्नरी परी के ऐसे,
हैं न हर-ती' के न रती के अति फीके हैं।
मेनका घृताची' तें सची तें इन ही के गुन,
गौरव गोपाल-छिय हेतु अरुची के हैं॥
पाए कर' नीके पै लजाए करनी' के वाल,
मोरि मुख लाएँ लेत आएँ सुधी ही के हैं।
देखि दुलही के जंघ जात खुलि ही के दृग,
उलहे अमी के मनु खंभ कदली के हैं॥

यहाँ, कदली-खंभ (कार्य) के उत्कर्ष का हेतु अमृत से उत्पन्न होना नहीं है, क्योंकि अमृत द्वारा उत्पन्न होने से कदली-खंभों में विशेष रमणीयता नहीं होती तथापि चतुर्थ चरण में इसको उत्कर्ष का हेतु स्थापित किया गया है।

२ पुन यथा—कवित्त।

सुर धुनि धार घनसार पारदनी-पंक्ति,
या विधि अपार उपमा को परसितु है।
भनत मुरार' ने विचार सो दिठोन कंद
आपने नेवारकन ना न टोनिचतु है

१ पार्वती। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible]।

भूप-अवतंस जसवंत ! जस रावरो नो,
अमल अतंत तीनों लोक लोभियतु है।
सरद को पून्यौं-निसि-जाए हंस को है बंधु,
छीर-सिंधु-मुकता समान सोभियतु है॥
—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी हंसों का शरद्-पूर्णिमा का जन्म और मोतियों का क्षीर-सागर से उत्पन्न होना उत्कर्ष का कारण न होने पर भी कारण ठहराया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

अरुन सरस्वति-कूल के, बंधुजीव के फूल।
वैसे ही तेरे अधर, लाल लाल-अनुकूल॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ)।

यहाँ भी नायिका के ओष्ठ के उपमान बंधुजीव-पुष्प का सरस्वती नदी के तट पर उत्पन्न होना उत्कर्ष का कारण न होते हुए भी वही कारण कल्पित किया गया है।

(६२) संभावना

जहाँ 'यदि ऐसा हो' इस प्रकार किसी अर्थ की ... । करके 'तो ऐसा हो' इस प्रकार से किसी संभा-[illegible]तार्थ (संभव अर्थ) की सिद्धि की जाय, वहाँ [illegible]भावना' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

[illegible] अलौकिक श्रीमति के, उपमाहु अपूरब यों मन भावै।
[illegible]-विधानन आनन तें, अलि! जो चतुरानन तें बनि आवै॥

है उलटे कदलीन के पेड़न, पै पचि एक हि पात बनावै।
तो कदली-तरु पीठरु जंघन को पद नीठि निहोरत पावै॥

यहाँ "यदि तृतीय चरणोक्त रीति से विधाता कदली-वृक्ष बना सके" इस अर्थ की कल्पना से कदली-वृक्षों एवं पत्र को श्रीराधिकाजी की जंघाओं एव पीठ की समता प्राप्त होने का संभावितार्थ सिद्ध होना वर्णित है।

२ पुन: यथा—कवित्त।

विद्या-भूमि मैं न अर्थ-बीज होते अंकुरित,
छन्द-धर्म-दादुर दुराकृति दरसतौ।
मेधावी मयूरन को मोद मिट जातो दूर-
बीरन को मान-मीन पंकहि परसतौ॥
अतुर उदार बलवंत! रतलाम-राज!
चातक-चतुर-मन नापन तरसतौ।
याचक-दरिद्र कवि-सागर सुकावतौ जो,
मालवेंद्र! तू न मास बारह बरसतौ॥
—बारहठ महाकवि कृष्णसिंह।

यहाँ भी "जो मालवेंद्र (महाराजा जसवंतसिंह रतलाम) बारहो मास न बरसते" इस अर्थ द्वारा "विद्या-भूमि मैं न अर्थ-बीज होते अंकुरित" आदि संभावितार्थ सिद्ध किए गए हैं।

३ पुन यथा—छप्पय।

जो असार संसार जानि संतोष न गहते।
भीर-भार के भरे भूप की भूरि न सहते।
बुद्धि-विवेक-निधान मान अपनो नहिं देते।
गुनन दिखाले याचि राज संपति नहिं लेते।

(२) यद्यपि इस 'संभावना' अलंकार को काव्य-प्रकाशकार ने स्वतंत्र न लिखकर 'अतिशयोक्ति' का एक भेद ही माना है; और इसमें 'अतिशयोक्ति' का चमत्कार भी है, तथापि 'चंद्रालोक' एवं प्राय. भाषा-ग्रंथों में यह भिन्न माना गया है; और इसमें अन्य अर्थ की सिद्धि के लिये किसी अर्थ की कल्पना की जाती है तथा 'जो' 'तो' शब्दों की विशेषता है।

(३) पूर्वोक्त 'उत्प्रेक्षा' अलंकार में उपमेय में उपमान की तादात्म्य कल्पना की जाती है। जैसे—'मुख मानो चन्द्र है'; और यहाँ किसी अन्य संभावितार्थ को सिद्ध करने के लिये 'यदि ऐसा हो' इस प्रकार से किसी अर्थ की कल्पना की जाती है। यही इनमें विभिन्नता है।

(६३) मिथ्याध्यवसिति

जहाँ किसी अर्थ का मिथ्यात्व[1] सिद्ध करने के लिये किसी अन्य मिथ्यार्थ का वर्णन किया जाय, वहाँ 'मिथ्याध्यवसिति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मूक भेक ज्यों गंग के, गावत सदगुन-व्रात।
त्यों रजनी नभ-उडुगन के, अंध गनत अघरात॥

यहाँ गंगाजी में अवगुण होने (रूप) का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये मूक एवं मेंढक द्वारा उनके सद्गुणों का गान किया जाना और अंधे का अर्द्धरात्रि में गगन-स्थित नक्षत्रों की गणना करना ये अन्य मिथ्यार्थ कल्पित हुए हैं। इन

१ यह मिथ्यात्व 'रूप' अभिप्राय में कल्पित होता है। दूसरा मिथ्यात्व की सिद्धि में चमत्कार नहीं होता। २ मेंढक का जिह्वा नहीं होती

वर्णन में "श्रीगंगाजी में गुण हैं और अवगुणों का सर्वथा अभाव है" यह तात्पर्य गर्भित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

महाराज! तेरी सब कीरति बखानैं, कवि,
'चंद' यह केवल अकीरति बखाने हैं।
आँधरेन देखि-देखि हमकों बताइ दई,
बहिरेन सुनी जैसी हम हू पिछाने हैं॥
कच्छपी के दूध[1] ही के सागर पै ताकी गीत,
बाँझ-सुत गूँगे मिलि गावत यों जाने हैं॥
तामैं केते बड़े सस-सृंग के धनुषधारे,
रीझि-रीझि तिन्हैं मौज दैकै सनमाने हैं॥
—चंद बरदाई।

यहाँ भी भारत-सम्राट् पृथ्वीराज की अपकीर्ति का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये अंधे का देखना आदि अनेक अन्य मिथ्यार्थ वर्णित किए गए हैं।

३ पुनः यथा—दोहा।

खल-बचनन की मधुरता, चाखि साँप निज श्रौन।
रोम-रोम पुलकित भए[2], कहत मोद गहि मौन॥
—मतिराम।

यहाँ भी दुष्टों के वचनों की मधुरता को मिथ्या सिद्ध करने के लिये 'सर्प का उसको कानों से चखकर रोमांचित होकर मौन धारण किए हुए कहना" अन्य मिथ्यार्थ की कल्पना की गई है।

---

१ कच्छपी के दूध नहीं होता। २ सर्प को कान और रोम नहीं होते।

यहाँ भी नायिका के नायक को दृष्टि भर कर देखने के अभीष्टार्थ का, बिना किसी उपाय के, आरसी में प्रतिबिंब द्वारा सिद्ध होना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'समाधि' अलंकार में कर्त्ता के कुछ उपाय करते हुए अकस्मात् कारणांतर की प्राप्ति से सुगमता पूर्वक कार्य हो जाता है; और यहाँ बिना उपाय किए ही वांछितार्थ की सिद्धि होती है। यही इनमें पृथकृता है।

२ द्वितीय प्रहर्षण

जिसमें वांछितार्थ से भी अधिक लाभ हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कछु धन लैं।ने द्वारका, जदपि न करौ लजाइ।
तदपि लखी त्रय-लोक-निधि, सदन सुदामा आइ॥

यहाँ कुछ द्रव्य की इच्छा से द्वारका जानेवाले सुदामाजी को वांछित से अधिक त्रैलोक्य-संपत्ति प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुन: यथा—कवित्त।

साहि-तनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी-वितान छिति-छोर छाइयतु है।
'भूषन' भनत ऐसो भूप-भौंसिला है, जाके,
द्वार भिच्छुकन सों सदाई भाइयतु है।
महादानी सिवाजी खुमान या जहान पर
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है।
रजत की हौंस किए हेम पाइयत जासों
हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है।
—भूषण।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी द्वारा याचकों को चाँदी की इच्छा करने पर सुवर्ण एवं घोड़ों की इच्छा करने पर हाथी प्राप्त होने का वर्णन है।

३ तृतीय प्रहर्षण

जिसमें वांछितार्थ की प्राप्ति के साधन का उपाय करने में ही साक्षात् फल प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सूखत प्रान समान निज, धानन देखि किसान।
पूछन गो जोसिहिं जतन, मग हि मिले मघवान॥

यहाँ किसी किसान के वृष्टि का उपाय पूछने के लिये ज्योतिषी के घर जाते समय मार्ग में ही सक्षात् वृष्टि-फल प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

ताके मुख-चंद करो मंद दुति चंद हू की,
ऐसी ना निहारी कोऊ भूतल में आइकै।
सुरन की कन्या हू न होइहै समान जाके,
देखे ही बनत कह्यौ जात न बनाइकै॥
वाको तन भेटिबे की तालाबेली[1] लागी अति,
मिलिबो सु वाको कहूँ होत सुख दाइकै।
कीन्हों है उपाय तातें दूती के बुलाइबे को,
त्यों ही वह आइ आप मिली मन भाइकै॥

—अलंकार-आशय।

१ घबराहट, बेचैनी।

यहाँ भी नायिका से मिलने के लिये नायक द्वारा केवल दूती को बुलाने का यत्न करने में स्वयं नायिका के आकर मिल जाने के रूप में साक्षात् फल-प्राप्ति होने का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'सम' अलंकार के तृतीय भेद में उस कार्य की सिद्धि होती है जिसके लिये उद्यम किया जाय, और यहाँ (तृतीय भेद में) उसका साधन खोजने में ही साक्षात् अर्थ की सिद्धि हो जाती है।

(६६) विपादन

जहाँ इच्छा के विपरीतार्थ की प्राप्ति हो, वहाँ 'विपादन' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम-सखा! घनस्याम को, हम हेरति रहिं रार।
उन अनन्य-चित-चातकिन, अजिन पठाई वार!॥

यहाँ गोपिकाओं की श्रीश्यामसुंदर के आगमन की इच्छा के विपरीत उनको उद्धव द्वारा (ब्रह्मचर्य एवं वैराग्य के साधनभूत) अजिन (मृग-चर्म) का प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुन यथा—सवैया।

जागती [illegible]
भानु प्रभा [illegible]
यों जिय [illegible]
हाय! [illegible]
—[illegible]

यहाँ भी सायंकाल से कमल-कोश में रुकी हुई भ्रमरी की सूर्योदय होते ही बंधन से विमुक्त हो जाने की अभिलाषा के विरुद्ध उसका प्राण-नाश होना वर्णित है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मन-चींती ह्वैहै नहीं, हरि-चींती ततकाल।
बलि चाह्यो अकास कों, हरि पठयो पाताल॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी दैत्यराज-बलि को स्वर्ग-राज्य-प्राप्ति की इच्छा के विरुद्ध पाताल प्राप्त होने का वर्णन है।

सूचना—स्मरण रहे कि कुछ आचार्यों ने इस 'विषादन' अलंकार को 'विषम' के अंतर्गत ही माना है, किंतु 'विषम' के तीसरे भेद में अभीष्ट के लिये उद्योग करने पर उसके विपरीत अनिष्ट होता है: और यहाँ केवल संभावित (सोचे हुए) इष्ट के स्थान पर अनिष्ट-प्राप्ति का वर्णन होता है।
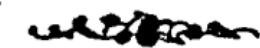
(६७) उल्लास

जहाँ एक के गुण-दोष से दूसरे का संबंध कहा जाय, वहाँ 'उल्लास' अलंकार होता है। इसके चार भेद हैं—

१ प्रथम उल्लास

जिसमें एक के गुण से दूसरे को गुण प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

किंतु संत-संगति तरनि, इतर सुकृत खद्योत।
होत हेम पारस परसि, लोह तरत लगि पोत॥

यहाँ लोहे को पारस एवं पोत (नौका) के संसर्ग से हेम (सुवर्ण) हो जाने एवं तर जाने के गुणों की प्राप्ति का वर्णन है।

२ पुन. यथा—सवैया।

गुञ्जनि के अवतंस लसैं सिखि-पच्छनि अच्छ किरीट बनायौ।
पल्लव लाल समेत-छरी कर पल्लव सौं 'मतिराम' सुहायौ॥
गुंजन के उर मंजुल हार, निकुंजन तैं कढ़ि बाहर आयौ।
आज को रूप लखें ब्रजराज को आज हि आँखिन को फल पायौ॥
—मतिराम।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के रूप गुण के दर्शन करनेवालों को आँखों का फल पाने की गुण-प्राप्ति का वर्णन है।

२ द्वितीय उल्लास

जिसमें एक के दोष से दूसरे को दोष प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सजन! सँदेसे बिपति के, कहौ कहै किमि कोइ?।
पानि परसि कागद, कलम, मसि हु बिरह बस होइ॥

यहाँ प्रोषित-पतिका नायिका का अपने पति के प्रति कथन है कि आपको पत्र लिखते समय कागज, कलम एवं स्याही भी मेरे वियोगाग्नि-विदग्ध-कर-स्पर्श (दोष) से संताप (दोष)-युक्त हो जाती है।

२ पुन यथा—दोहा।

संगति-दोष लगै सबनि, कहे ति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रू संग तें कुटिल बंक गति नैन॥
—बिहारी।

यहाँ भी भ्रुकुटियों के कुटिल-दोष से नेत्रों के भी कुटिलता का दोष प्राप्त होना वर्णित है

प्रथम और द्वितीय का उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

मम उर मूरति राम की, मम मूरति उर-राम।
यहाँ गाढ़ता नरन की, उत तलफत है वाम॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ श्रीहनुमानजी से जगदंबा जानकी का कथन है कि मेरे मन में श्रीरामजी की मूर्ति रहने के कारण पुरुष की तरह धैर्य है एवं उनके चित्त में मेरी मूर्ति होने से स्त्रियों की सी व्याकुलता है; अत: एक के गुण से दूसरे को गुण और एक के दोष से दूसरे को दोष प्राप्त होने के कारण यह उभय पर्यवसायी है।

३ तृतीय उल्लास

जिसमें एक के गुण से दूसरे को दोष प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—छप्पय।

पढ़ि कवित्त कवि पार लहैं संसार-धार को।
कविता सों अति सुगम पंथ कैलास-द्वार को॥
कविता-बल वनिता रिझाइ रस-वस करि लीजिय।
कविता सों वस नृपति विदित जस चहुँ दिसि कीजिय॥
कविवर-मुखेंदु ते श्रवत है सरस काव्य-रस अमिय सम।
समुझत चकोर सज्जन मरम अबुधन-उर उपजत भरम॥

यहाँ छठे चरण में कवि के काव्य-रस गुण से मूर्खों को भ्रम-दोष होने का वर्णन है।

२ पुन यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

चलति महा धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर-नारी॥
—रामचरित-मानस।

तृतीय और चतुर्थ का उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

अनचोरे चोरी लगै, कारे कच-अँधियार।
सेत चिहुर[1] की चाँदनी, चोरौ साहूकार॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ युवा नायिका के काले केशों (गुण) से समीपस्थ साधु पुरुष को भी लांछन (दोष) लगने एवं गत-यौवना स्त्री के श्वेत केशों (दोष) से समीपस्थ दुराचारी पुरुष को भी साधुता (गुण) प्राप्त होने का वर्णन है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'पंचम विभावना' में विलोम कारण से कार्योत्पत्ति होती है; और यहाँ के तृतीय और चतुर्थ भेद में भी उससे मिलते-जुलते उदाहरण होते हैं; किंतु यहाँ एक के गुण से दूसरे को दोष और एक के दोष से दूसरे को गुण प्राप्त होता है।

(२) पूर्वोक्त 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से इस 'उल्लास' अलंकार के प्रथम और द्वितीय भेद मिलते-जुलते हैं; किंतु भिन्नता यह है कि वहाँ कार्य-कारण का, और यहाँ प्राकृतिक गुण-दोष का संबंध होता है।

(६८) अवज्ञा

जहाँ एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त न हो, वहाँ 'अवज्ञा' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम अवज्ञा, गुण से गुण की अप्राप्ति की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मेरे दृग-वारिद वृथा, बरसत वारि-प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह को, तो उर-ऊसर माँह॥
—मतिराम।

[1] केश।

यहाँ देवासुर-जाति से मनुष्य-जाति में निकृष्टता दोष होते हुए भी श्रीकृष्ण महाराज के संयोग रूप उत्कृष्ट गुण को देखकर देवासुर-स्त्रियों की व्रज-गोपिकाएँ होने की इच्छा का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गुरु समाज भाइन्ह-सहित, राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरामजी के रहते हुए उनके राज्य में मरने से उत्तम लोकों की प्राप्ति रूपी उत्कृष्ट गुण के लिये अयोध्या की प्रजा द्वारा मरण रूपी दोष की इच्छा करने का वर्णन है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

द्वारपाल लकुटी सौं मुकुट नहीं पग दे,
देखिए सुरेश भेंट कैसे नाचियतु है।
संपत्ति संचित लै सिंधु देस-बादसाह[1],
ऐसो नरनाथ राजद्वार याचियतु है॥
सादर प्रवेश हो 'मुरार' कविराज जहाँ,
सन्मुख सनेप देखि, कान्ति बाँचियतु है।
सार मान भेट सनमान जसवंत! तेरो,
कुल-कुल आदर यो मन नाचियतु है॥
—[illegible]

१ हैदराबाद (सिंध) के [illegible] [illegible] [illegible] होने से [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई है। [illegible]।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में सम्मान रूपी गुण के कारण कवि-राजा मुरारिदान का जोधपुराधीश महाराजा जसवंतसिंह के यहाँ याचक होने रूपी दोष की इच्छा करना वर्णित है।

(७०) तिरस्कार

हाँ किसी प्रकार का दोष मानकर उत्कृष्ट गुण-वाली वस्तु का भी तिरस्कार (त्याग) किया जाय, वहाँ 'तिरस्कार' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कै धन धनिक कि धनिक धन, तजिहैं अवसि अक्रूर।
तिहि धन लौं त्यागत धरम, तिन धनिकन-सिर धूर॥

यहाँ अस्थिरता रूपी दोष मानकर गुणवाले धन का भी तिरस्कार किया गया है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पद-सामीप्य-जोग जदि पावै। अगुन अननुभव अभव न भावै॥

यहाँ भी गुण-रहित एवं अनुभव-शून्य होने के दोष मानकर उत्कृष्ट गुणवाले अभव (मोक्ष) पदार्थ का भी (श्रीशंकर के पद-सामीप्य-योग के सामने) तिरस्कार करना वर्णित है।

३ पुन यथा—छप्पय।

छिन हू छाँडी नाहिं भोगि, भुगती बहु भूपन।
कुलटा सी यह भूमि लाभ मानत महीप-मन॥

यहाँ भी चंद्र-बिंब के प्रकाश गुण को उसमें पृथ्वी के अंधकार का प्रतिबिंब पड़ने से कलंक का कारण मानकर दोष बतलाया गया है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'व्याजस्तुति' अलंकार में स्तुति के शब्दों से निंदा का या निंदा के शब्दों से स्तुति का तात्पर्य होता है; और यहाँ ('लेश' में) किसी दोष को गुण रूप में या किसी गुण को दोष रूप में किसी अंश में मान लिया जाता है। यथा—'अनहित हू' में शाप को गुण एवं 'आनतमित्र' में बड़े नत्रों को दोष ही मान लिया गया है। इससे इनमें यही अंतर है।

(२) पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त होता है; और यहाँ किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप में कल्पित किया जाता है। यही भिन्नता है।

(७२) मुद्रा

जहाँ प्रस्तुतार्थ-प्रतिपादक शब्दों से किसी अन्य सूचनीय अर्थ का भी बोध कराया जाय, वहाँ 'मुद्रा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—मोतीदाम छंद।

लहौ सुर भोग नरेस [illegible] रहौ सब दूर [illegible]
न जाँचहु आन दिन [illegible] जहाँ [illegible] मोतियदान

यहाँ किसी राजा के प्रति किसी विद्वान् का आशीर्वाद प्रस्तुतार्थ है, इसी के [illegible] 'मोतियदान' शब्दों से [illegible] (१२) [illegible] मोतीदाम छंद होता है यह [illegible] छंद का [illegible] सूचित किया [illegible]।

२ पुनः यथा—दोहा ।

चित पितु-घातक-जोग लखि, भयौ भएँ सुत सोग ।
फिर हुलस्यौ जिय जोयसी, समझ्यौ जारज-जोग ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी किसी ज्योतिषी द्वारा पुत्र-जन्म में जारज-योग रूपी दोष को (पितु-घातक-योग देखकर) गुण मानना वर्णित हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

कोटि विघन दुख मैं सुजन, तजै न हरि को नाम ।
जैसे सती हुतास कों, गनै आपनो धाम ॥
—दीनदयालगिरि ।

यहाँ भी सती का अग्नि दोष को धाम (सती-लोक) गुण समझना कहा गया है ।

२ द्वितीय लेश, गुण को दोष कहने का

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

आ-नखसिख सखि ! स्याम की, सुखमा गई समाइ ।
दीह दृगन को दोष यह, राधा रही लुभाइ ॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के नेत्रों की दीर्घता गुण को श्रीकृष्ण में आसक्त हो जाने से दोषमय बतलाया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं, भू-तम भयो कलंक ।
निज-निरमलता दोष यह, मन मैं मान मयंक ! ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी चंद्र-बिंब के प्रकाश गुण को उसमें पृथ्वी के अंधकार का प्रतिबिंब पड़ने से कलंक का कारण मानकर दोष बतलाया गया है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'व्याजस्तुति' अलंकार में स्तुति के शब्दों से निंदा का या निंदा के शब्दों से स्तुति का तात्पर्य होता है; और यहाँ ('लेश' में) किसी दोष को गुण रूप में या किसी गुण को दोष रूप में किसी अंश में मान लिया जाता है। यथा—'अनहित हू' में शाप को गुण एवं 'आनन्दनिधि' में बड़े नत्रों को दोष ही मान लिया गया है। इससे इसमें यही अंतर है।

(२) पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त होता है; और यहाँ किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप में कल्पित किया जाता है। यही भिन्नता है।

---

(७२) मुद्रा

जहाँ प्रस्तुतार्थ-प्रतिपादक शब्दों से किसी अन्य सूचनीय अर्थ का भी बोध कराया जाय, वहाँ 'मुद्रा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—मोतीदाम छंद।

लहौ सुर-भोग सरीर निरोग। रहौ दिय दुःख सहेनर सोग।
न जोवहु आन दिना द्रवदान। जचौ कवि राज्यन मोतियदान॥

यहाँ किसी राजा के प्रति किसी विद्वान् का आशीर्वाद प्रस्तुतार्थ है, इसी के 'जचौ' एवं 'मोतियदान' शब्दों से 'चार जगण (।ऽ।) का मोतीदाम छंद होता है' यह किसी छात्र को सूचित किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

मेघ देस-देस नटखट आसा पूरि आए,
कान्हर लै गूजरी हिँडोर छवि-छाकी है।
दीप-दीप भैरव भए हैं नारि-वृंदन सौं,
ललित सुहाई लीला सारँग-छटा की है॥
स्यामल तमाल कोस-कोस लौं कुमोद कीन्हौ,
'अंबादत्त' सोहनी त्यौं छाया बदरा की है।
कोऊ सुघरई सौं श्रीकृष्ण कौं जु पाऔं तव,
आली! या कल्यान की बहार बरषा की है॥

—पं० अंबिकादत्त व्यास।

यहाँ भी वर्षा-ऋतु-प्रतिपादक शब्दों से मेघ, देश, नट, खट, आशा, पूरिया, कान्हरा, गूजरी, हिंडोल, दीपक, भैरव, ललित, सूहा, लीलावती, सारंग, श्याम, मालकोश, कौसिया, कामोद, सोहनी, छाया, सुघरई, श्री, अलैया, कल्याण और बहार राग-रागनियों के नाम भी सूचित किए गए हैं।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

सूर-सुखमा को सोई सुंदर चमतकार,
देव सतकार को सनेह सोई सनो है।
गलिन-गलिन रसलीन तैसे देखि परैं,
विमल बिहारी को विभव सोई घनो है॥
रसखानि चाव भरे लूटत रसिक अजौं,
नागरीकिसोरी को तनाव सोई तनो है।
सुजस कहानी ब्रजराज को सुखद सोई,
सोई वृंदावन है बनाव सोई बनो है॥

—पं० कृष्णविहारी मिश्र।

यहाँ भी वृंदावन-वर्णन प्रस्तुतार्थ से सूरदास, देव, रसलीन बिहारी, रसखान, नागरीकिशोरी और व्रजराज इन महाकवियों के नाम भी व्यक्त होते हैं।

यह अलंकार नाटकों और कथाओं के प्रारंभ में (किसी निपुण कवि-निर्मित) एक ही पद्य में आगे कहे जानेवाले समस्त वृत्तांत के सूचित करने में भी देखा जाता है—

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गरल तें भीम के, जु ज्वाला हू तें पाँचहू के,
द्रौपदी के सभा औ बिराट बन तीन बार।
किरीटी[1] के अच्छर[2] के साप तें जुधिष्ठिर कौं,
मारिवे कौं, मरिवे कौं उदै भए असी-धार॥
दुरवासा सापिवे कौं आयौ ताकौं आदि दैके,
'सरूपदास' केते कहैं एक छंद में प्रकार।
तेई मेरे ग्रंथ-आदि मंगल उदय करौ,
एते ठाँ अमंगल कौं मंगल करनहार॥
—बारहठ स्वरूपदास साधु।

यह कवित्त स्वामी स्वरूपदास-कृत 'पांडव-यशेंदु-चंद्रिका' के आदि का है। इस 'मंगलाचरण' में उक्त ग्रंथ का समस्त वृत्तांत भी संक्षेप में बतला दिया गया है।

१ अर्जुन। २ अप्सरा।

(७३) रत्नावली

जहाँ प्रस्तुतार्थ के वर्णन में कुछ अन्य क्रमिक पदार्थों के नाम भी यथाक्रम रखे जायँ, वहाँ 'रत्नावली' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

स्याम के सनेह सौं सिंगार, मुसुकान हास,
साक-कलनारे परे प्यारे दह[1] भोरी के।
रौद्र रतनारे मान रोष तें निहारे नेंक,
वीर सौति-मान-भंग को उमंग जोरी के॥
द्रुमन-दवागि देखि भय भो भयानक सो,
त्यौं विभत्स दीखें अन्य होति घृना गोरी के।
अद्भुत अहेरी एन[2], सांत सुनि ऊधो वैन,
नव रस-ऐन[3] नैन नवल-किसोरी के॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के नेत्र-वर्णन प्रस्तुतार्थ में शृंगारादि नव रसों के नाम भी क्रमानुसार रखे गए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

आन नँदरानी सौं कह्यो है काहू टेरि आज,
माटी खात देख्यौ सुत तेरो या सदन में।
सुनिकै रिसाइ सुत वालि मुख खालि देख्यौ,
एक ब्रह्म दोऊ भेद तीनों देव तन में॥
चारों वेद पाँचों भूत छहों ऋतु सातों ऋषि,
आठों वसु नवों ग्रह दसहूँ दिसन में।
ग्यारहों महेस औ दिनेस वारहो विलोकि,
तेरहो रतन लोक चौदहों वदन में॥
—अलंकार-आशय।

---

१ कालीदह। २ शिकारी मृग। ३ स्थान।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के मृत्तिका-भक्षण प्रस्तुतार्थ के वर्णन में एक से चौदह तक की सख्या का भी क्रमानुसार वर्णन हुआ है।

(७४) तद्गुण

जहाँ अपना गुण त्यागकर अन्य समीपस्थ वस्तु का गुण ग्रहण किया जाय, वहाँ 'तद्गुण' अलंकार होता है।[1]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

चंदन चढ़ाएँ अंग केसर सुरंग होत,
हार पहिराएँ चारु चंपक चमेली तें।
सुखमा सिंगार क्यों सरीर सुकुमार सहै,
पिय-मन-भार हू उठै न अलबेली तें॥
लाज ब्रजराज हू तें आज लौं न जाति जाकी,
रात की कहै न बात साथिन-सहेली तें।
बरसै पियूष जाके दरसें दृगनि क्यों न,
सरसै सनेह ऐसी नायिका नवेली तें॥

यहाँ प्रथम चरण में चंदन एवं चमेली के हारों का अपना श्वेत गुण त्यागकर नायिका की देह-द्युति का पीत गुण ग्रहण करना वर्णित हुआ है।

२ पुन: यथा—सवैया।

कौहर[2] कोल[3] जपा-दल विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोति है।
रोचन रारी रची मेहँदी 'नृपसंभु' कहै मुकता सम पोति है॥

---

१ इस अलंकार के संबंध की सूचना तदनन्तर 'अतद्गुण' अलंकार में देखिए। २ इंद्रायन का फल। ३ लाल कमल।

पाँय धरै ढरै ईंगुर सो तिनमैं मनी पायल की घनी जोति है।
हाथ छ्वै तीन लौं चारिहूँ ओर तें चाँदनी चूनरी के रँग होति है॥
—राजा शंभुनाथसिंह सोलंकी 'नृपशंभु'।

यहाँ भी चाँदनी का अपना श्वेत गुण त्यागकर नायिका के चरणों की लालिमा ग्रहण करना वर्णित हुआ है।

तद्गुण-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

अहि-मुख पर्‌यौ सु बिष भयौ, कदली भयौ कपूर।
सीप पर्‌यौ मोती भयौ, संगति के फल 'सूर'॥
—महात्मा सूरदास।

यहाँ स्वाति-जल-बिंदु का सर्प के मुख, कदली एवं सीप के संसर्ग से क्रमशः विष, कपूर एवं मोती हो जाना वर्णित है; अतः माला है। इसमें रस, गंध और रूप तीनों गुणों का ग्रहण किया जाना कहा गया है।

(७५) पूर्वरूप

जहाँ किसी के गए हुए गुण की पूर्ववत् पुनः प्राप्ति का वर्णन हो, वहाँ 'पूर्वरूप' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम पूर्वरूप

जिसमें वस्तु के अस्तित्व में गत गुण की पुनः प्राप्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुदिननि बिन संपति गए, नगन[2] नगन-समुदाइ[3]।
सुदिननि लहैं पलास[4] पुनि, रहे फूल-फल छाइ॥

१ रूप, रस, सुवासादि। २ पत्रादि से रहित। ३ वृक्षों के झुंड। ४ दलों।

यहाँ वृक्षों के पत्र-पुष्पादि (शिशिरांत में) गए हुए गुणों का (वसंत में) फिर प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुन. यथा—दोहा।

सेत कमल कर लेत ही, अरुन कमल-छवि देत।
नील कमल निरखत भयौ, हँसत सेत को सेत॥
—बैरीसाल।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के हाथों में लेते ही श्वेत कमल का रंग लाल होना, पुनः उनके नेत्रों द्वारा देखे जाने से नीला होना और फिर हँसने से ज्यों का त्यों श्वेत होना वर्णित है।

२ द्वितीय पूर्वरूप

जिसमें वस्तु का विनाश हो जाने पर भी पूर्वावस्था की पुनः प्राप्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मरि सुवरन भस्मी भयौ, गयौ रूप गुन रंग।
बैद-क्रिया तें पुनि नयौ भयौ सहित-सब-अंग॥

यहाँ सुवर्ण का भस्मी होकर नष्ट हो जाने पर भी वैद्य-क्रिया द्वारा पुन पूर्वावस्था को प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुन यथा—दोहा।

नृप-अरि-निस्वासानलहि, सूखे सर-सरितासु।
पुनि नैनन के नीर ते, भे परिपूरन आसु॥
—[illegible]।

यहाँ भी किसी राजा द्वारा पराजित शत्रुओं के निःश्वासों से सरोवर एवं नदियों के सूखकर नष्ट हो जाने पर भी उनके आँसुओं से पुन पूर्ववत् परिपूर्ण हो जाने का वर्णन है।

(७६) अतद्गुण

जहाँ अन्य समीपस्थ वस्तु का गुण ग्रहण न जाय, वहाँ 'अतद्गुण' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अरुन-कंज-हिय हरि-मधुप, गोपिन राखे गोइ
पै न चढ़ै रँग स्याम पै, साँच कहैं सब कोइ

यहाँ गोपिकाओं के अनुराग-रंजित-रक्त-कमल रूपी ह श्रीकृष्ण रूपी श्याम भ्रमर के छिपे रहते हुए भी उनके अ रक्त गुण का श्रीकृष्ण द्वारा ग्रहण न होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

परी! यह तेरी दई, क्यौं हूँ प्रकृति न जाइ
नेह भरे हिय राखिए, तू रूखिए लखाइ
—बिहारी

यहाँ भी नायक के स्नेह (तैल)-पूरित हृदय में ध भी नायिका द्वारा स्नेह गुण ग्रहण न करना बतलाया गया

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'तद्गुण' एवं इस 'अतद्गुण' की परिभाषाओं में दिए हुए 'गुण' शब्द से यद्यपि किसी-किसी अलंकार-ग्रंथ में रंग मात्र ग्रहण किया गया है तथा संस्कृत एवं उदाहरण भी प्रायः रंग-विषयक ही मिलते हैं, तथापि 'कुवलया' प्रायः ग्रंथों में 'गुण' शब्द को रूप रस गंधादि-वाचक लिया है; उदाहरण भी मिलते हैं। यथा—

तद्गुण—

पिय के ध्यान गही-गही, रही वही ह्वै नारि।
आप-आप ही आरसी, लखि, रीझति रिझवारि॥
—बिहारी-सतसई।

अतद्गुण—

विरह-व्यथा-जल-परस-बिन, बसियत मो हिय-ताल।
कछु जानत जल-थंभ-विधि, दुर्योधन लौं लाल॥
—बिहारी-सतसई।

क्यारी करै कपूर की, मृगमद बिरवा बंध।
सर्व सुधा सींचै तऊ, हींग न होइ सुगंध॥
—अलंकार-आशय।

इन तीनों उदाहरणों में क्रमशः रूप, रस (जल) और गंध गुणों का वर्णन है; अतः रंग के अतिरिक्त इनका होना भी उचित है।

(२) पूर्वोक्त 'उल्लास' में एक के गुण से दूसरे का गुणी होना और 'अवज्ञा' में एक के गुण से दूसरे का गुणी न होना बतलाया जाता है; किंतु उन दोनों अलंकारों में 'गुण' शब्द दोष का विरोधी होता है और एक में जो गुण है, वही साक्षात् अन्य में होने या न होने का तात्पर्य नहीं है; प्रत्युत एक के गुण से अन्य का किसी प्रकार गुणी होने या न होने का तात्पर्य होता है, तथा 'तद्गुण' एवं 'अतद्गुण' में 'गुण' शब्द रूप-रस-गंधादि वाची होता है और एक का साक्षात् गुण अन्य द्वारा ग्रहण होने या न होने का तात्पर्य होता है। यही उन दोनों से इन दोनों अलंकारों में विभिन्नता है।

(३) यह 'अतद्गुण' अलंकार पूर्वोक्त 'तद्गुण' अलंकार का ठीक विरोधी है।

(४) यद्यपि यह 'अतद्गुण' एवं पूर्वोक्त 'अवज्ञा' अलंकार दोनों पूर्वोक्त 'विशेषोक्ति' अलंकार रूप हैं, क्योंकि वहाँ कारण के अस्तित्व में कार्य का अभाव होता है, और यही बात इन दोनों में भी है तथापि 'उल्लास' और 'तद्गुण' के विरोधी होने के कारण इनमें [illegible] गुण का संबंध [illegible] से स्वतंत्र अलंकार माने गए हैं।
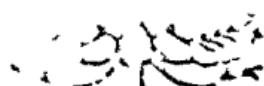
(७७) अनुगुण

जहाँ किसी अन्य के संसग से किसी पदार्थ
पूर्व प्रसिद्ध गुण में उत्कर्ष होने का वर्णन हो, वहाँ '
गुण' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

चोप' भरे 'रघुनाथ' विलोकत दंपति जोन्ह की जोति
पहो सखी ! तेहिं औसर लै गई मैं रचि फूल की माल
आनन की दुति देखी दुहूँन की फैलि रही इतनी
चैत की पून्यो के चंद की चाँदनी चौगुनी चारु भई

—

यहाँ श्रीराधा-माधव के मुख-प्रकाश के संपर्क से चैत्र
की चाँदनी में प्रकाश गुण का अधिक होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गई चाँदनी वनक वनि, प्यारी प्रीतम-पास।
ससि-दुति मिलि सौगुन भयौ, भूषन-वसन-प्रकास॥

—राजा रामसिंह (

यहाँ भी चंद्रमा की चाँदनी के संसर्ग से
नायिका के वस्त्राभूषणों के प्रकाश गुण में उत्कर्ष होना वर्णित

अनुगुण-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

प्यारी के पाँयन पायल की धुनि चौगुनी होति अनौट नियान
राग वजै अनुराग सुहाग भरी वड़भागिन पैंजनियान

१ आनंद।

कंचन की चमकैं दमकै दुति दूनी यौं हीरन की कनियान तें।
गंधन-लोभ लसैं लपटे फनि चंदन-मूल मनो मनियान तें॥

यहाँ प्रथम चरण में अनवटों के शब्द से श्रीप्रियाजी की पायजेब में शब्द गुण का एवं तृतीय चरण में हीरों की कणियों के संसर्ग से सुवर्णमय आभूषणों के प्रकाश गुण का अधिक होना कहा गया है; अतः माला है।

(७८) मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान होने पर एक पदार्थ दूसरे में मिलकर ऐसा विलीन हो जाय कि भिन्नता ज्ञात न हो, वहाँ 'मीलित' अलंकार होता है।[1]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु,
इंद्र को अनुज[2] हेरै दुगध-नदीस[3] कौं।
'भूषन' भनत सुर-सरिता कौं हंस हेरैं,
विधि हेरैं हंस कौं चकोर रजनीस कौं॥
साहि-तनै सिवराज! करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस कौं।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने, निज
गिरि कौं गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस कौं॥
—भूषण।

---

१ यहाँ 'मीलित' का अर्थ छिपा हुआ है, अर्थात् एक वस्तु में दूसरी का छिप जाना विवक्षित है। २ विष्णु। ३ क्षीर सागर।

यहाँ [illegible] की [illegible] है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
—[illegible]

यहाँ भी चाँदनी में मिलकर शुक्लाभिसारिका नायिका की देह-द्युति का पृथक् प्रतीत न होना वर्णित है ।

मीलित-माला १ उदाहरण यथा—दोहा ।

अधर पान, मेहँदी करन, चरन महावर-रंग ।
राखि न परत लखि! सुमुखि के, अंग! अंगों तक अंग ॥

यहाँ श्रीराधारानी की अधर-लालिमा में पान का, हाथों की ललाई में मेहँदी का और चरणों की अरुणता में यावक का रंग विलीन हो जाने के कारण भिन्नता का ज्ञान न होना वर्णित है और ये तीन वर्णन होने के कारण माला है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'तद्गुण' अलंकार में 'गुण' शब्द रूप-रस-गंधादि-वाची होता है और अन्य वस्तु के गुण का ग्रहण मात्र होता है न कि वह विलीन हो जाती है, तथा यहाँ 'गुण' शब्द से सब प्रकार के धर्मों का तात्पर्य है एवं एक का गुण दूसरे में डूब-जाता है अथवा मिल जाता है और उनमें भिन्नता ज्ञात नहीं होता । यही इनमें अन्तर है ।

यहाँ भी उदैपुर के गनगोरोत्सव में देखने को आई हुई जगदंबा पार्वती के धोखे से गणेश के गज-गामिनी स्त्रियों की गोद में जा बैठने एवं श्रीमहादेवजी के बारंबार पुकारने से कि इनमें से हमारी गौरी कौनसी है? उनमें सौंदर्य-गुण-सादृश्य द्वारा अभेद हो जाना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'मीलित' अलंकार में एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु में दूध-पानी की भाँति मिल जाता है; अतः मिलनेवाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है; और यहाँ केवल गुण-सादृश्य से भेद मात्र का तिरोधान (लोप) होता है; किंतु दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते रहते हैं। यही इनमें भिन्नता है।

(८०) उन्मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान हों और एक का गुण दूसरे में विलीन होने पर भी किसी कारण से भेद की स्फुरणा हो जाय, वहाँ 'उन्मीलित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तिय-अंगन लगि मिलि रहे, केसर-सुरभि-सुरंग।
लखियतु परिरंभन पिघरि, जब लगियतु पिय-अंग॥

यहाँ नायिका के अंगों में लगकर केसर की सुगंध एवं रंग में अभेद हो रहा था तथापि नायक के परिरंभण-जन्य सात्विक-भाव से पिघलकर उनका भिन्न भिन्न बोध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न होति लखाइ ।
सौंधे के डारे लगी, अली चली सँग जाइ ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी शुक्लाभिसारिका नायिका के जोन्ह (चाँदनी) में मिलकर अभेद हो जाने पर भी सुगंध के कारण सखी को भिन्नता की स्फुरणा होने का वर्णन है ।

३ पुनः यथा—चौपाई ।

प्रनवउँ परिजन-सहित बिदेहू । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी राजा जनक ने श्रीरामजी के चरणानुराग को योग-भोग में ऐसा छिपा रखा था कि भिन्नता प्रतीत नहीं होती थी; पर उस भिन्नता का श्रीरामजी के दर्शन द्वारा प्रकट होना कहा गया है ।

(८१) विशेषक

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण-सादृश्य होने पर भी किसी कारण से विशेषता की स्फुरणा हो, वहाँ 'विशेषक' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सब विधि सम, कहि सक न कोउ, को चन्द्र को राहु ।
पुनि मुख में लखि सकल ससि, राहु कह्यो तब काहु ।

२ पुनः यथा—दोहा।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाइ॥
—बिहारी।

यहाँ भी शुक्लाभिसारिका नायिका के जोन्ह (चाँदनी) में मिलकर अभेद हो जाने पर भी सुगंध के कारण सखी को भिन्नता की स्फुरणा होने का वर्णन है।

३ पुनः यथा—चौपाई।

प्रनवउँ परिजन-सहित बिदेहू। जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी राजा जनक ने श्रीरामजी के चरणानुराग को योग-भोग में ऐसा छिपा रखा था कि भिन्नता प्रतीत नहीं होती थी; पर उस भिन्नता का श्रीरामजी के दर्शन द्वारा प्रकट होना कहा गया है।

(८१) विशेषक

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण-सादृश्य होने पर भी किसी कारण से विशेषता की स्फुरणा हो, वहाँ 'विशेषक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा

सब बिधि सम, कहि सक न कोउ, को चन्द्रह को राहु।
पुनि मुख मैं लखि सकल ससि, राहु कह्यो सब काहु।

यहाँ भी उदैपुर के गनगोरोत्सव में देखने को आई हुई जगदंबा पार्वती के धोखे से गणेश के गज-गामिनी स्त्रियों की गोद में जा बैठने एवं श्रीमहादेवजी के बारंबार पुकारने से कि इनमें से हमारी गौरी कौनसी है ? उनमें सौंदर्य-गुण-सादृश्य द्वारा अभेद हो जाना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'मीलित' अलंकार में एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु में दूध-पानी की भाँति मिल जाता है; अतः मिलनेवाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है; और यहाँ केवल गुण सादृश्य से भेद मात्र का तिरोधान (लोप) होता है; किंतु दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते रहते हैं। यही इनमें भिन्नता है।

(८०) उन्मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान हों और एक का गुण दूसरे में विलीन होने पर भी किसी कारण से भेद की स्फुरणा हो जाय, वहाँ 'उन्मीलित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तिय-अंगन लगि मिलि रहे, केसर-सुरभि-सुरंग।
लखियतु परिरंभन पिघरि, जब लगियतु पिय-अंग॥

यहाँ नायिका के अंगों में लगकर केसर की सुगंध एवं रंग में अभेद हो रहा था तथापि नायक के परिरंभण-जन्य सात्विक-भाव से पिघलकर उनका भिन्न भिन्न बोध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न होति लखाइ ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाइ ॥

—बिहारी ।

यहाँ भी शुक्लाभिसारिका नायिका के जोन्ह (चाँदनी) में मिलकर अभेद हो जाने पर भी सुगंध के कारण सखी को भिन्नता की स्फुरणा होने का वर्णन है ।

३ पुन. यथा—चौपाई ।

प्रनवउँ परिजन-सहित बिदेहू । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥

—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी राजा जनक ने श्रीरामजी के चरणानुराग को योग-भोग में ऐसा छिपा रखा था कि भिन्नता प्रतीत नहीं होती थी, पर उस भिन्नता का श्रीरामजी के दर्शन द्वारा प्रकट होना कहा गया है ।

(८१) विशेषक

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण-सादृश्य होने पर भी किसी कारण से विशेषता की स्फुरणा हो, वहाँ 'विशेषक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा

[illegible]
[illegible]

यहाँ भी उदयपुर के गनगोरोत्सव में देखने को आई हुई जगदंबा पार्वती के धोखे से गणेश के गज गामिनी स्त्रियों की गोद में जा बैठने एवं श्रीमहादेवजी के बारंबार पुकारने से कि इनमें से हमारी गौरी कौनसी है? इनमें सौंदर्य-गुण-सादृश्य द्वारा अभेद हो जाना वर्णित है।

सूचना—उक्त 'मीलित' अलंकार में एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु में दूध पानी की भाँति मिल जाता है; अतः मिलनेवाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है, और यहाँ केवल गुण सादृश्य से भेद मात्र का तिरोधान (लोप) होता है, किंतु दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न प्रतीत होते रहते हैं। यही इनमें भिन्नता है।

(८०) उन्मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान हों और एक का गुण दूसरे में विलीन होने पर भी किसी कारण से भेद की स्फुरणा हो जाय, वहाँ 'उन्मीलित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तिय-अंगन लगि मिलि रहे, केसर-सुरभि-सुरंग।
लखियतु परिरंभन पिघरि, जब लगियतु पिय-अंग॥

यहाँ नायिका के अंगों में लगकर केसर की सुगंध एवं रंग में अभेद हो रहा था तथापि नायक के परिरंभण-जन्य सात्विक-भाव से पिघलकर उनका भिन्न भिन्न बोध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न होति लखाइ ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाइ ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी शुक्लाभिसारिका नायिका के जोन्ह (चाँदनी) में मिलकर अभेद हो जाने पर भी सुगंध के कारण सखी को भिन्नता की स्फुरणा होने का वर्णन है ।

३ पुन. यथा—चौपाई ।

प्रनवउँ परिजन-सहित बिदेहू । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी राजा जनक ने श्रीरामजी के चरणानुराग को योग-भोग में ऐसा छिपा रखा था कि भिन्नता प्रतीत नहीं होती थी: पर उस भिन्नता का श्रीरामजी के दर्शन द्वारा प्रकट होना कहा गया है ।

(८१) विशेषक

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण-सादृश्य होने पर भी किसी कारण से विशेषता की स्फुरणा हो, वहाँ 'विशेषक' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा

सब बिधि सम, [illegible] सक न [illegible] [illegible] राहु
पुनि मुख मैं [illegible] [illegible] राहु [illegible] राहु

यहाँ वराह एवं राहु में सब प्रकार से सादृश्य होते हुए भी राहु के मुख में पूर्ण चंद्र देखकर[1] विशेषता का बोध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

आई फूलनि लैन कौं, चलौ बाग मैं लाल!।
मृदु बोलन सौं जानिए, मृदु बेलिन मैं बाल॥

—मतिराम।

यहाँ भी प्रस्तुत नायिका के वर्ण एवं सुवास गुण-साम्य द्वारा अप्रस्तुत पुष्पों से अभेद हो जाने पर भी उसके कोमल वचनों के कारण भिन्नता का बोध होने का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'उन्मीलित' के एवं इसके लक्षण में समानता की प्रतीति होती है; किंतु वहाँ एक का गुण दूसरे में 'मीलित' की भाँति विलीन होकर, किसी कारण से पृथक्ता जानी जाती है; और यहाँ दोनों वस्तुओं की स्थिति 'सामान्य' की भाँति भिन्न भिन्न रहकर किसी कारण से पृथक्ता जानी जाती है। यही इन दोनों अलंकारों में भेद है।

---

(८२) उत्तर

जहाँ उत्तर (जवाब) में किसी प्रकार का चमत्कार व्यक्त किया जाय, वहाँ 'उत्तर' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ गूढ़ोत्तर

जिसमें किसी गूढ़ अभिप्राय-युक्त उत्तर हो। इसके भी दो भेद होते हैं—

---

[1] क्योंकि वराह का दाँत द्वितीया के चद्रमा के जैसा होता है।

(क) उन्नीत-प्रश्न

जिसमें विना प्रश्न के ही किसी व्यंग्य (अभिप्राय)-युक्त उत्तर के श्रवण मात्र से प्रश्न कल्पित किया जाय। इसे 'कल्पित-प्रश्न' भी कहते है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सघन सरन में यह जरी, गिरि - गोवर्धन - राह।
जइयौ पै दुपहर, परै, साँझ - सवेर चराह॥

यहाँ किसी पथिक के प्रति कहे हुए स्वयं-दूती नायिका के केवल इस उत्तर-वाक्य से कि यह जडी (बूटी) गोवर्धन गिरि-मार्ग के सघन सरों में है, पथिक का "अमुक बूटी कहाँ मिलेगी" प्रश्न कल्पित किया गया है; और नायिका ने व्यंग्य से संकेत-स्थल सूचित किया है।

२ पुन. यथा—कवित्त।

रहत्यै हू जाम द्वैक लगि जैहैं मग बीच,
बसती के छेहरे सराय है उतारे की।
कहत 'कविंद' मग माँझ ही परैगी साँझ,
खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की।
घर के हमारे परदेस को सिधारे यातें
दया करि बूझत खबरि राहचारे की।
करखै नदी के वर वर के तरे हू बस
चौरें मन चोरी इत पाहरू हमारे की
—उदयनाथ 'कविंद'।

१ किनारा। २ वट-वृक्ष।

यहाँ भी किसी पथिक के प्रति स्वयं-दूती नायिका के चतुर्थ चरणगत उत्तर के द्वारा पथिक के ठहरने का स्थान पूछने की कल्पना हुई है; और व्यंग्य से संकेत-स्थल सूचित किया गया है।

(ख) निबद्ध-प्रश्न

जिसमें कई प्रश्न होने पर बारंबार किसी गूढ़ अभिप्राय से युक्त उत्तर दिए जायँ।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कौन लाभ ? जस जगत में, को बल ? जन-संजोग।
को सुभ धन ? संतोष मन, को सुख ? देह निरोग॥

यहाँ 'कौन लाभ ?' आदि चार प्रश्नों के 'जस जगत में' आदि चार उत्तर उपदेश के अभिप्राय से गर्भित दिए गए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

को इत आवत ? कान्ह हौं, काम कहा ? हित-मान।
किन बोल्यौ ? तेरे दृगनि, साखी ? मृदु मुसुकान॥

—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के चार प्रश्नों के श्रीकृष्ण द्वारा प्रेमोत्कर्ष के अभिप्रायांतर-गर्भित चार उत्तर दिए गए हैं।

२ चित्रोत्तर

जिसमें किसी विचित्रता से युक्त उत्तर हो। इसके भी दो भेद होते हैं—

(क) प्रश्नों के शब्दों में ही उत्तर

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंगन लग्यौ परांगना ? मैन जग्यौ कहुँ रैन ? ।
दूषन-दूषित ह्वै बने, धीरबहू-रँग नैन ? ॥

यहाँ पर-संभोग-दुःखिता नायिका के नायक से प्रश्न हैं—आपने पर-स्त्री के अंगों से आलिंगन किया ?, काम से रात्रि भर जागते रहे ? तथा उक्त दूषणों से ही आपकी आँखें लाल हैं ? इन तीनों प्रश्नों के क्रमशः तीन उत्तर—मैं किसी पर-स्त्री के अंग से नहीं लगा, किसी जगह रात्रि में जागता नहीं रहा और मेरी आँखें दुखने के कारण लाल हैं—प्रश्नों के शब्दों में ही दिए गए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

अलि लोभी-रस को महा ? कोसमान नृप होइ ?।
दिन - संजोगी कोकहै ? रैनि - वियोगी सोइ ॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी तीन प्रश्न हैं—हे सखी ! रस का लोभी कौन है ? नृप के समान कौन है ? और दिन-संयोगी कौन कहलाता है ? । इनके उत्तर इन्हीं शब्दों में यों दिए गए हैं—रस का लोभी भ्रमर है, धन के कोशवाला राजा है और दिन-संयोगी चक्रवाक हैं।

(ख) बहुत से प्रश्नों का एक ही उत्तर

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

एक कह्यौ नीकी सी प्रहेलिका सुनाइ दीजे,
एक कह्यौ कीजै साथ रथ की सवारी जू।
एक कह्यौ कीजिए कपाट बंद, एक कह्यौ,
कुसली दिखैए आजु आप है खिलारी जू॥
एक कह्यौ लूट्यौ रस गोरस गर्बीविनी को,
एक कह्यौ प्यारे आन पूजिए मुरारीजू'।
'जोरी नाहिं भोरी' एक उत्तर निहँसि देत
ब्रज के बिहारी हरो जातना हमारी जू॥

यहाँ श्रीकृष्णजी के प्रति गोपियों के "नीकी सी प्रहेलिका सुनाइ दीजै" आदि छः प्रश्नों के 'जोरी नाहिं' इस एक ही पद द्वारा उत्तर दिए गए हैं—पहेली जोड़ी (रची) नहीं गई है, बैलों की जोड़ी नहीं है, कपाटों की जोड़ी नहीं है, इनकी बराबर की जोड़ी नहीं है, जबरदस्ती से नहीं लूटा गया है और हमारी-तुम्हारी समानावस्था नहीं है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गुरु—पान सड़ै घोड़ो अड़ै, विद्या वीसर जाइ।
रोटो जलै अँगार मै, कहु चेला कँदाइ ? ॥
शिष्य–गुरूजी ! फेर्यौ नाहीं।

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी शिष्य के प्रति गुरूजी के—पान क्यों गलता है ?, घोड़ा क्यों अड़ता है ?, विद्या विस्मृत क्यों होती है ? एवं टिक्कड़ अग्नि में क्यों जलता है ?—चार प्रश्न हैं। इन सबका "फेरा नहीं गया" एक ही उत्तर दिया गया है।

(८३) सूक्ष्म
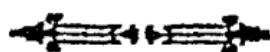
जहाँ किसी की चेष्टा से कोई सूक्ष्म (गूढ़) वृत्तांत जानकर जाननेवाला किसी प्रकार की चेष्टा ही से कोई अभिप्राय-गर्भित उस वृत्तांत का केवल ज्ञान होना प्रकट करे अथवा उसका समाधान भी सूचित करे, वहाँ 'सूक्ष्म' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम-बुलावन समुझि तिय, चित समुचित सखि-सैन।
ताकि तनक पिय-तन, करन, कर धरि मूँदे नैन॥

यहाँ नायिका ने नायक की दूतिका की सैन (चेष्टा) से यह सूक्ष्म रहस्य जान लिया है कि नायक ने मुझे बुलाया है; और समीपस्थ पति की ओर किंचित् देखकर अपने कान पर हाथ रखकर नेत्र मूँदने की चेष्टाओं से ही उस रहस्य को समझ लेना प्रकट किया है, एवं समाधान (उत्तर) किया है कि पति के शयन करने पर आऊँगी।

२ पुनः यथा—सवैया।

बैठी हुती सखियान के बीच पगी रस-चोपर-राग के भारी।
आइ गए तित ही मन-मोहन संग सखान लिए सुखकारी॥
दीठि सों दीठि जुरी दुहुँघाँ करि चातुरी प्रीति-छटा बिसतारी।
मुद्रित कंज सो स्याम कियौ अलकैं मुख पे बिथुराइ जु प्यारी॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी सखियों में बैठी हुई श्रीराधिका को कृष्ण महाराज ने कमल-कलिका दिखाने की चेष्टा से रात्रि में मिलने को कहा है। इसपर श्रीराधिकाजी ने भी अपने मुख पर अलकों के फैलाने रूपी चेष्टा से ही उनका अभिप्राय समझ लेना एवं चन्द्रास्त होने पर मिलना सूचित किया है।

(८४ पिहित

जहाँ किसी का पिहित (छिपा हुआ) वृत्तांत उसके किसी आकार द्वारा जानकर कोई किसी प्रकार की चेष्टा (क्रिया) से उसका अभिप्राय समझ लेना प्रकट करे, वहाँ 'पिहित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अलि अनीठ पति-पीठ-छत, लखि छत्रिनि रिसियानि।
जल अन्हान लौं दै, भरे, लहँगा-ओढ़नि आनि॥

यहाँ किसी क्षत्रिय-स्त्री ने अपने पति की पीठ में घाव (आकार) देखकर उनके स्नान करते समय लहँगा एवं ओढ़नी समीप रख देने (क्रिया) के द्वारा उनके रण से विमुख होकर भाग आने का गूढ़ वृत्तांत ज्ञात होना प्रकट किया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

रात कहूँ रमि कै अनतैं अरु आवत प्रात कियो गिरिधारी।
पीक पगी पलकैं झलकैं छलकै दुति अंग अनंग की भारी॥
आवत दूरि तें देखि उठी अपराध जनाइबे कौ उर धारी।
सेज बिछाइ कलावति बीजनो, पाँय पलोटन कौं गइ प्यारी॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ की नायिका ने अनत रात करके आनेवाले नायक की पीक-भरी पलकें आदि (आकार) देखकर उनके शयन कराने के लिए शय्या बिछाने आदि क्रियाओं से नायक का अपराध ज्ञात होना सूचित किया है।

सूचना—इस 'पिहित' अलंकार को कई प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में 'सूक्ष्म' अलंकार का भेदांतर माना है; किंतु प्राय: आधुनिक आचार्यों ने इसे स्वतंत्र रूप दिया है और हम भी उन्हीं से सहमत हैं।

(८५) व्याजोक्ति

जहाँ छिपे हुए वृत्तांत या किसी आकार द्वारा भेद खुल जाने पर उसको व्याज (बहाना)-युक्त कथन से छिपाया जाय, वहाँ 'व्याजोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

[illegible]—नहिं हमकों मुसुकानी, [illegible] मन मैं [illegible]।
[illegible]—गोपियों-सदन-सुख-भाजन की, [illegible] स्याम उरानी।

२ पुनः यथा—दोहा ।

केसर केसर-कुसुम के, रहे अंग लपटाइ ।
लगे जानि नख अनखली !, कत बोलति अनखाइ ? ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी सपत्नी की नख-रेखा का आकार नायक के अंग में देखकर क्रोध करनेवाली नायिका से नायक की सखी छिपाती है कि ये तो केसर-पुष्प के तंतु लगे हुए हैं, तू क्यों वृथा कोप करती है ? ।

सूचना—पूर्वोक्त 'छेकापह्नुति' में श्लिष्ट शब्द होते हैं और सत्य का गोपन निषेध पूर्वक होता है, पर यहाँ बिना निषेध के गोपन होता है । तथा पूर्वोक्त 'सूक्ष्म' एवं 'पिहित' में क्रिया (चेष्टा) का और यहाँ वचन का संबंध होता है । इससे उक्त तीनों अलंकारों से यही विलक्षणता है ।

(८६) गूढ़ोक्ति

जहाँ जिससे कहना है, उसके प्रति न कहकर (समीपस्थ व्यक्ति न समझे इस आशय से) किसी अन्य के प्रति श्लेष द्वारा कोई वर्णन किया जाय, वहाँ 'गूढ़ोक्ति' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सखि ! सूकर संध्या समय, खात ऊख के खेत ।
हौं रखवारौ [illegible] निसा, तुम मत जाहु संकेत ॥

नायक का तात्पर्य नायिका को संकेत स्थल सूचित करने में रात्रि भर ऊख के खेतों में रहूँगा, किंतु यह बात कहकर निकटवर्ती सखियों से कहता है कि सायंकाल में

(८७) विवृतोक्ति

जहाँ छिपा हुआ रहस्य कवि द्वारा खोला जाय, वहाँ 'विवृतोक्ति'[1] अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विवृतोक्ति, श्लिष्ट शब्दों का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम सघन बरसत जलद, तम सरसत चहुँ पास।
रजनि हु तें रमनीय दिन, सुनि पिय पूरी आस॥

यहाँ 'सुंदर' एवं 'रमण करने योग्य' ये दो अर्थ हैं; इससे 'रमणीय' शब्द श्लिष्ट है जिसमें छिपी हुई नायिका की अभिलाषा का गुप्त रहस्य कवि ने चतुर्थ चरण में प्रकट किया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अब तजु स्याम बराह! बर, बारी-बिहरन-आन।
सुनि सयानि सखि-बचन, चित, समुझे स्याम सुजान॥

यहाँ भी 'स्याम बराह' एवं 'बारी-बिहरन' श्लिष्ट शब्दों में छिपे हुए श्रीकृष्ण और नायिका के प्रेम-रहस्य का "चित समुझे स्याम सुजान" वाक्य द्वारा कवि ने उद्घाटन कर दिया है।

२ द्वितीय विवृतोक्ति, साधारण शब्दों की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अलि! केवल देखें सुनें, लगति बिरह की लाय।
नव निहि लाइ मिलाइ दी, छाती छैल सिराय॥

---

[1] 'विवृत' शब्द का अर्थ 'उद्घाटन किया हुआ' है।

(८९) लोकोक्ति

जहाँ किसी लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसंग में वर्णन हो, वहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्यामा-स्याम-विलास-जस, अरु बरनन रसराज।
बड़े बखानत सो बन्यौ, "एक पंथ दो काज"॥

यहाँ "एक पंथ दो काज" वाली कहावत का वर्णन है।

२ पुनः यथा—सवैया।

रह चारहूँ ओर उदौ मुख-चंद को, चाँदनी चारु निहार लै री।
बलि जो पै अधीन भयौ पिय प्यारो तो एतो विचार विचार लै री॥
कवि 'ठाकुर' चूकि गयो जो गोपाल तुही बिगरी को सँभार लै री।
अब रैहै न रैहै यही समयो "बहती नदी पाँव पखार लै री"॥

—ठाकुर (प्राचीन)।

यहाँ भी "बहती नदी पाँव पखार लै" लोकोक्ति कही गई है।

यहाँ क्रिया-विदग्धा नायिका ने अपने नायक की तरफ मुस्कराने का रहस्य छिपाने के लिये बातों में बहलाने की क्रिया द्वारा अपने समीपस्थ पति एवं सखियों को वंचन किया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

खेलत हैं हरि बागे बने जहाँ बैठी तिया रति तें अति लोनी।
'केसव' कैसे हू पीठ में दीठ परी कुच-कुंकुम की रुचि रोनी॥
मातु-समीप दुराइ भली विधि सात्विक-भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि विलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी॥
—केशवदास।

यहाँ भी श्रीकृष्ण महाराज पर दृष्टि पड़ने से श्रीराधिकाजी ने सात्विक-भाव हो जाने रूपी रहस्य को नेत्रों में कपूर डालने आदि की क्रियाओं से छिपाकर माता को वंचन किया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

तब तो दुरि दूर हि तें मुसुकाइ बचाइकै और की दीठि हँसे।
दरसाइ मनोज की मूरति ऐसी रचाइकै नैनन में सरसे॥
अब तो उर माहिं बसाइकै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निवाहन जानत हे तो सनेह की धार मै काहे धँसे ?॥
—घनआनंद।

यहाँ भी नायिका के वचन में प्रथम चरण में नायक द्वारा नायिका की ओर हँसने का रहस्य छिपाने के लिये अपनी छिपने की क्रिया से अन्यों को वंचन किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'व्याजोक्ति' अलंकार में आकार द्वारा खुली हुई बात का वचन से गोपन होता है, और यहाँ किसी गूढ़ रहस्य का क्रिया से गोपन होता है। यही उससे अंतर है।

(८९) लोकोक्ति

जहाँ किसी लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसंग में वर्णन हो, वहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार होता है[१]।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्यामा-स्याम-विलास-जस, अरु बरनन रसराज[२]।
बड़े बखानत सो बन्यौ, "एक पंथ दो काज"॥

यहाँ "एक पंथ दो काज" वाली कहावत का वर्णन है।

२ पुनः यथा—सवैया।

यह चारहूँ ओर उदो मुख-चंद को, चाँदनी चारु निहार लै री।
बलि जो पै अधीन भयौ पिय प्यारो तो एतो विचार विचार लै री॥
कवि 'ठाकुर' चूकि गयौ जो गोपाल तुही विगरी कों सँभार लै री।
अब रैहै न रैहै यहौ समयो "बहती नदी पाँव पखार लै री"॥

—ठाकुर (प्राचीन)।

यहाँ भी "बहती नदी पाँव पखार लै" लोकोक्ति कही गई है।

३ पुनः यथा—सवैया।

ऊधोजू! सूधो गहौ वह मारग ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहैं ह्याँ इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
ये ब्रजबाल सबै इकसी 'हरिचंदजू' मंडिली ही बिगरी है।
एक जो होइ तो ज्ञान सिखाइए "कूपहि में यहाँ भाँग परी है"॥

—भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र।

यहाँ भी "कूप में भाँग पडना" लोकोक्ति है।

---

१ यहाँ कहावत के शब्द ज्यों के त्यों रखे जाने में काव्य अधिक चमत्कृत होता है। २ शृंगार रत्न।

(६०) छेकोक्ति

जहाँ 'लोकोक्ति' का वर्णन किसी अभिप्रायांतर से गर्भित हो, वहाँ 'छेकोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

गोचारी गोरस हर्यौ, भो व्रज गोप-कुमार।
पै गिरि धार्यौ तब लर्यौ, "तिनके-ओट पहार"॥

यहाँ "तिनके-ओट पहार" लोकोक्ति का वर्णन इस अभिप्रायांतर से युक्त है कि जब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन उठाया, तब सब लोगों को उनके माया-मनुष्य शरीर की ओट में सर्व-शक्तिमान् परमात्मा दिखाई पड़ा।

२ पुनः यथा—सवैया।

तापसै भेट्यौ विभीपन जाइ क्यों ? रावन या अनुमान अरै है।
बोल्यौ प्रहस्त प्रभाव न तू रघुनाथ को जानत जानि परै है॥
या जग में उपखान प्रसिद्ध सही 'लछिराम' कथा बगरै है।
चोर को चोर सुजानै सुजान जती को जती पहिचानि परै है॥

—लछिराम।

यहाँ भी रावण के प्रति मंत्री प्रहस्त के द्वारा चतुर्थ चरणगत 'लोकोक्ति' का वर्णन होना इस अर्थांतर से गर्भित है कि तू दुराचारी और विभीषण सदाचारी है।

(६१) वक्रोक्ति-अर्थ

जहाँ वक्ता के अभिप्राय में श्रोता अर्थ-श्लेष द्वारा अन्यार्थ की कल्पना करे, वहाँ 'अर्थ-वक्रोक्ति' अलंकार होता है

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

लघु भ्रात लख्यौ कहुँ तू निज अग्रज भ्रात अभागे कौ राज लियौ ?।
कल ही गढ़-लंक जो राम-कृपा तें बिभीषन के सिर छत्र छयौ ॥
किहिं भूपति भिच्छुक-वेष भँगी बन भीख ? सिया की कुटी जो गयौ
इमि अंगद राजकुमार को राच्छस-राज तें आज विवाद भयौ ॥

यहाँ अंगद के प्रति रावण के दो प्रश्न श्रीरामचंद्रजी एवं बाली पर और केवल रघुनाथजी पर कटाक्ष-सूचक हैं कि अपने अभागे बड़े भाई का राज्य छीन लेनेवाला छोटा भाई तुमने कहीं देखा है ? और किसी राजा ने भिक्षुक वृत्ति से वन में भीख माँगी है ? इनके अंगद ने और ही अर्थ कल्पित करके "कल ही गढ़-लंक जो राम कृपा तें बिभीषन के सिर छत्र छयौ" एवं "सिया की कुटी जो गयौ" वाक्यों से उलटे रावण पर ही उन्हें घटित कर दिया। यहाँ यदि 'लघु भ्रात' आदि शब्दों के स्थान पर 'अनुज' आदि पर्याय-वाची शब्द रख दिए जायँ तो भी श्लेष बना ही रहेगा अतः अर्थ-श्लेष-मूला वक्रोक्ति है।

२ पुन यथा—कवित्त ।

कहौ कुसुमाली ! [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

यहाँ भी किसी पथिक के पूछने पर बाग-रचिका (मालिन) ने कहा कि मेरे बाग में श्रीफल, सखंभ कदली, अरविंद, कुंद-कलिका एवं आम्र हैं। इन सब शब्दों में उक्त पथिक ने क्रमशः कुच, जंघा, मुख एवं नेत्र, दाँत और ओष्ठ के अन्यार्थ स्थापित किए हैं।

सूचना—'वक्रोक्ति' दो प्रकार की होती है, जिनमेंसे 'शब्द-वक्रोक्ति का वर्णन शब्दालंकारों के अंतर्गत कर आए हैं, और इस 'अर्थ-वक्रोक्ति' में वाक्य एवं शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है तथा इनके पर्याय रख देने से भी अलंकार ज्यों का त्यों बना रहता है।

(६२) स्वभावोक्ति

जहाँ मनुष्यादि जाति के किसी रमणीय स्वभाव के धर्म, क्रिया आदि का वर्णन हो, वहाँ 'स्वभावोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

पाँय दवाइ खुवाइके सोवति साथ, प्रभात हि जागि जगावै।
पथ्य पियूष से स्वादु सदा उनकी रुचि के सुचि पाक बनावै॥
बात कहै कोउ प्रीतम की तो 'कहा कह्यो ?' यों कहि फेर कहावै।
प्रान भए परिछाँहीं फिरैं, पति दीखत ही दृग भेंट चढ़ावै॥

यहाँ स्वकीया नायिका के पति के चरण चाँपने आदि अनेक रमणीय धर्म एवं क्रियाएँ वर्णित हैं।

२ पुन. यथा—कवित्त।

लाभ लहरान लेखि, हानि हहरान पेखि,
पारद-प्रभा पै दग बलि-भा बन्यौ करै।
लोक कुल वेद के विचार को विराव[1] वारि,
संभु-जटा-वारि गंग-धार मैं सन्यौ करै॥
जानि जग पान सो अमान जग मानवनि,
पानि पकरे की कान प्रान पै तन्यौ करै।
वीर बखतावर! सुवीरन की यहै वृत्ति,
सिर पै बनैहै ताको गिरि पै गिन्यौ करै॥

—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश)।

यहाँ भी वीर पुरुषों के बहुत से स्वाभाविक गुणों का वर्णन है।

३ पुन यथा—

जलज अलग जल सों जग रहनौ, गहन ज्ञान जग-त्यागी।
निरत सदा स्वत धरम भजन हरि, सुचि उपकार अनुरागी॥
चिंतित चित्त दुसरन दुख-हित, माया दल मग [illegible]।
मान-मूर्ति नृप देखि उठत नहिं, [illegible] न [illegible]॥

—प० [illegible] (भारत-भक्ति)।

यहाँ भी अयोध्या निवासी ब्राह्मणों के प्रशंसनीय स्वाभाविक धर्म-कर्मों की छवि है।

सूचना—कुछ ग्रंथों में रूप वेष और स्वभाव के वर्णन में 'जाति' नामक अलंकार की भिन्न स्थापना हुई है और कुछ ने 'स्वभावोक्ति' में ही [illegible] किया गया है। [illegible] विचार से इसके [illegible] भिन्न नहीं [illegible] अलंकार माना जाय [illegible] यहाँ [illegible] हैं—

[1] शोर।

जाति १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

पायल अनोट बाँक बिछिया प्रिया के पाँय,
जेहर, जराव-जरी रसना[1] रसीली की।
वलय-वलित कर कंकन कलित तापै,
राजै रुचि चारु चुरियान चमकीली की॥
झूलत हमेल हार, बेसर करनफूल,
माँग-मुकता पै छवि चूड़ामनि नीली की।
स्यामल घटा में ज्यों चमंक चपला की चारु,
नीले दुपटा में त्यों दमंक दुति पीली की॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के पायल आदि आभूषण, नील वस्त्र एवं पीत अंग-द्युति का वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—सवैया।

नृप-द्वार कुमारि चलीं पुर की अँगराग सुगंध उड़ै गहरी।
सजि भूषन अंबर रंग बिरंग उमंगन सों मन माहिं भरी॥
कवरीन में[2] मंजु प्रसून-गुच्छे दृग-कोरन काजर-लीक परी।
सित भाल पै रोचन-बिंदु लसै पग जावक-रेख रची उछरी॥
—पं० रामचंद्र शुक्ल (बुद्ध-चरित्र)।

यहाँ भी पुरवासिनी कुमारिकाओं का अंगरागादि से शृंगार करना वर्णित है।

(६३) भाविक

जहाँ भूत अथवा भावी भाव (घटना) का वर्तमानवत् वर्णन किया जाय, वहाँ 'भाविक' अलंकार होता है। इसके दो भेद है—

१ करधनी। २ वेणियों में।

२ द्वितीय भाविक, भविष्यार्थ-वर्णन का

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

सुनिकै गमन मन-भावन को भादव मैं,
चतुर तिया ने एक बानक बनायौ है।
चित्र लिखे द्वारन दरीचिन दिवारन पै,
बाग स-तड़ाग वृच्छ-बेलिन सौं छायौ है॥
कुसुम-कलीन-लीन भौंर पिक बौरन पै,
सुक-सारिकान को सनेह सरसायौ है।
जैहौ किमि ? भायेमन राउरे रसिक-राज !
सहित-समाज ऋतुराज आज आयौ है॥

यहाँ प्रवत्स्यत्पतिका नायिका द्वारा पति का गमन रोकने के लिये भाद्रपद में बाग आदि के चित्र-लेखन से भावी वसंत-ऋतु को वर्तमानवत् दिखाया जाना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

गज-घटा उमड़ी महा घन-घटा सी घोर,
भूतल सकल मद-जल सौं पटत है।
वेला छाँड़ि उछलत सातौं सिंधु-वारि, मन-
मुदित महेस मग नाचत कढ़त है॥
'भूषन' बढ़त भौंसिला-भुआल को यौं तेज,
जेतो सब बारहौं तरनि मैं बढ़त है।
सिवाजी खुमान-दल दौरत जहान पर,
आनि तुरकान पै प्रलय प्रगटत है॥
—भूषण ।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी के सेना-संचालन द्वारा महा घन-घटा, द्वादश सूर्यों का सताप, सातों समुद्रों का मर्यादोल्लंघन एवं

महारुद्र के नृत्य करने रूपी भविष्यत् प्रल ... प्रत्यक्षवत् संचार होने का वर्णन हुआ है।

(६४) उदात्त

जहाँ किसी पदार्थ का महत्त्व ... वहाँ 'उदात्त' अलंकार होता है ...

१ प्रथम उदात्त

जिसमें समृद्धि की अत्युक्ति ...

१ उदाहरण यथा—...

वहाँ ओर चारों रचा स्वर्ग सा है। ...
बनाया नया कोट श्रीलाल नामी। ...
लसैं लाल ही लाल प्रासाद भारी। ...

यहाँ श्रीबीकानेर-महाराज के ... संपत्ति की अत्युक्ति वर्णित हुई है।

२ पुनः यथा—

हरित मनिन्ह के पत्र-फल ...
रचना देखि विचित्र अति ...
सौरभ-पल्लव सुभग ...
हेम बौर मरकत-घवरि ...

यहाँ भी श्रीराम-जानकी के ... द्वारा राजा जनक की अलौकिक ...

१ नंदन वन। २ लालगढ़। ...
... राजमहलों की सुंदरता को देखकर ...

२ द्वितीय उदात्त

जिसमें किसी महान् पुरुष को अंग-भाव में मानकर उनके चरित्रों से अंगी को महत्व प्राप्त होने का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

यह सरजू सरिता वही, पावनि पूरनि काम ।
पैठि पधारे राम, जिहिं, पुरजन-सह निज धाम ॥

यहाँ श्रीसरयू के वर्णन में श्रीरामचंद्रजी को अंग-भाव से रखकर उनके प्रजा-समेत वैकुंठ-धाम पधारने के उदार चरित्र से अंगी सरयू को महत्व प्राप्त होना वर्णित है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जिहि मार्‌यौ ।
लोक-चतुर्दस-रच्छक 'केसव' पूरन वेद-पुरान विचार्‌यौ ॥
श्रीकमला-कुच-कुंकुम-मंडित पंडित देव-अदेव निहार्‌यौ ।
सो कर माँगन कौं बलि पै करतार हु के करतार पसार्‌यौ ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी श्रीवामन-भगवान् के हाथ के वर्णन में उनको अंग-भाव में मानकर उनके उदार चरित्रों से अंगी दैत्यराज बलि को महत्व प्राप्त होना वर्णित है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

निकसत जीवहिं बाँधिकै, तासौं राखति बाल ।
जमुना-तट वा कुंज मैं, तुम जु दई बन-माल ॥
—मति राम ।

यहाँ भी सखी द्वारा श्रीकृष्णजी से नायिका के विरह-निवेदन में श्रीकृष्ण को अंग-भाव में रखकर उनकी दी हुई माला को महत्व प्राप्त होने का वर्णन है ।

यहाँ भी राजस्थाने के राजा भीमसिंह की युद्ध-यात्रा तथा संग्राम-वर्णन में चतुर्थ चपलोक्त रमणीय असत्य वर्णित है।

३ पुन यथा—कवित्त।

हरि-सुत-श्रौन हरि-श्रौन हरि हैं गहे,[1]
भरी-भरी तोर भनु नद-सननाटे तें।
भेरि रव भूरि भट-भीर-भार भूमि भरि,
भूधर भगेंगे भिंदिपाल[2]-भननाटे तें॥
खप्पर-खनक है न खेटक के खप्पर हों,[3]
खेटकी[4] खिसकि जैहैं[5] खग्ग-खननाटे तें।
चूकि जैहै जान-धर[6] जान को चलान, बान,
बान-धर[7] मेरे पान बान[8]-सननाटे तें॥
—स्वामी गणेशपुरीजी 'पद्मेश'।

यहाँ भी कर्ण के कथन मे उसकी वीरता की अत्युक्ति है।

४ पुन. यथा—सवैया।

दिन द्वै निसि एक जुरी नहिं द्रोन की संधि-उपासन अंजुलिका।
बहु वीरन पांडुन के बरिबे उतरी कोउ अच्छर-आवलिका॥
बरमाल के कारन हेरत ही फिरतें परे पाँयन में फलका।
सुरराज के बाग सु नंदन में कहा पुष्प जहाँ न मिले कलिका॥
—बारहठ स्वरूपदास साधु।

यहाँ भी द्रोणाचार्य के युद्ध-वर्णन में रमणीय असत्य कथन पूर्वक वीरता की अत्युक्ति है।

---

१ अर्जुन और घोड़ों के कानों को भगवान् हाथों से ढाँकेंगे। २ गोफन। ३ खप्पर की खनखनाहट नहीं होगी क्योंकि ढालों के खप्पर होंगे। ४ ढालोंवाले। ५ भाग जायँगे। ६ सारथी। ७ अर्जुन। ८ हाथ का बाण।

२ उदारतात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अधिक एक तें एक भे, अहैं अनेक उदार।
देखे सुने न आन, पै, नाथ! नारि-दातार॥

यहाँ सुदामा को श्रीकृष्ण द्वारा त्रैलोक्य की लक्ष्मी देते देख श्रीरुक्मिणीजी के इस कथन में कि "अपनी स्त्री का दान देने-वाला न देखा न सुना" आश्चर्योत्पादक अतथ्य का वर्णन हुआ है।

२ पुन. यथा—दोहा।

चलत पाइ निगुनी-गुनी, धन मनि मोती-माल।
भेट भए जयसाहि सौं, भाग चाहियत भाल?॥
—बिहारी।

यहाँ भी जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह के द्वारा याचकों को ('भाग चाहियत भाल?' काकुक्ति से) उनके प्रारब्ध में न होने पर भी पर्याप्त द्रव्य प्राप्त होने की अत्युक्ति है।

३ पुन यथा—कवित्त।

दीन्ही द्विजराजन कौं आपुनी पुनीत भक्ति,
अरियन कंपा, 'अनुकंपा'[1] आतुरन कौं।
सेठपनवारे नंदराम! पनवारें[2] सदा,
दीन्हें पनवारे सदाचारी संतजन कौं॥
भारत कौं नगर[3] नवीनो रचि दीन्हौं एक,
न्याय तैं कमायौ धन दीन्हौं नन्दन कौं।
जस दै दिगंतन कौं, तन पंच-भूतन कौं
दीन्हौं तैं उदार मन राधिका-रमन कौं॥
—केडिया-जातीय इतिहास।

---

१ कृपा। २ पत्तल। ३ रतननगर (बीकानेर)।

यहाँ भी ग्रंथकर्त्ता के पितामह सेठ नंदरामजी के अपना सर्वस्व दान कर देने की अत्युक्ति का वर्णन है।

३ सौंदर्यात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गोल-गोल गोरी गरवीली की विलोकि ग्रीव,
संख सकुचाइ जाइ सिंधु मे तच्यौ करैं।
पीक-लीक दीखति गिरत गल गोरे, कल[२]-
कंठ-समता लौं कूकि कोकिला पच्यौ करै॥
विन ही विचारे सुनि सहज उचारे मृदु-
वचन विचारे कवि रचना रच्यौ करै।
भारी भई भीर वा अहीर वृषभानु-भौन,
वीर! वरसाने सामवेद सो वँच्यौ करै॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के गले में गिरती हुई पान की पीक के बाहर से दिखाई पड़नेवाली सुंदरता का अतथ्य वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

वाहि लखै लोयन लगै, कौन जुवति की जोति?।
जाके तन की छाँह-ढिग, जोन्ह छाँह सी होति॥
—विहारी।

यहाँ भी नायिका के शरीर की छाँह के सामने चाँदनी का छाँह की भाँति हो जाने की सुंदरता का मनोहारी अतथ्य वर्णन है।

---

१ तपा करता है। २ सुदर।

प्यारी कौं परसि पौन गयौ मानसर पहँ,
लागत ही औरैं गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयौ,
जल जरि गयौ पंक सूख्यौ भूमि दरकी॥
—गंग।

यहाँ भी वियोगिनी नायिका के देह से स्पर्श करके गया हुआ पवन मानसरोवर को लगने से उस सरोवर तक के सूख जाने की अद्भुत अत्युक्ति है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

'संकर' नदी नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ जाइगी।
दोनों ध्रुव-छोरन लौं पल मे पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी सो बढ़ जाइगी॥
झारैंगे अँगारे ये नरनि तारे तारापति,
जारैंगे, ख-मडल मैं आग मढ जाइगी।
काहू विधि थिधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ जाइगी॥
—प० नाथूराम शंकर शर्मा।

यहाँ भी वियोगिनी नायिका की आह से नद्यादि के जल की भाप बनकर आकाश से ऊँचे चढ जाने आदि की अद्भुत अत्युक्ति है।

५. कीर्ति की अत्युक्ति

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

तोषन रहत कर[*]-कोषन तें विप्र-वृंद,
पोषन कविंद-कुल-कल्प कुपंक मैं।
पाइकै पियूष-वृत्ति पथिक अनाथ रंक,
लाग्रन चकोर होन निरभै निसंक मैं॥

---

* हाथ और किरण।

नासिकै अविद्या-अंधकार, जस को प्रकास,
छायौ सो न मायो तिहुँ लोकन के अंक मैं।
देख्यौ पै न एक अग्रवाल मारवाड़ियों के,
अंक अनुदारता को "मानस-मयंक मैं"॥

यहाँ अग्रवाल मारवाड़ियों के यश का प्रकाश तीनों लोकों में न समाने का विचित्र वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

आजु यहि समै महाराज सिवराज! तुही,
जगदेव जनक जजाति अंबरीक सों।
'भूषन' भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सों॥
चंद-कर-किंजलक, चाँदनी-पराग, उडु-
बृंद मकरंद-बुंद-पुंज के सरीक सों।
कंद सम कयलास, नाकगंग नाल, तेरे,
जस-पुंडरीक को अकास चंचरीक सों॥
—भूषण।

यहाँ म[illegible] रूप श्वेत कमल के अंग—चंद्र-किरण केसर, चाँदनी पराग, तारे मकरंद बूँद, कैलाश कंद, मंदाकिनी नाल और आकाश [illegible] के रूप [illegible] वर्णित हुए हैं जिससे मनो-[illegible] अत्युक्ति है

सूचना—[illegible]

[illegible]

(२) पूर्वोक्त 'असंभवातिशयोक्ति' में कुछ सत्य और कुछ असत्य मिश्रित वर्णन होता है। यही भिन्नता है।

(३) इस अलंकार के उक्त पाँच भेदों के अतिरिक्त 'प्रेमात्युक्ति' आदि और भी कई भेद हो सकते हैं।

(६६) निरुक्ति

जहाँ किसी नाम का किसी योग-वश प्रसिद्ध अर्थ त्यागकर व्युत्पत्ति द्वारा अन्यार्थ कल्पित किया जाय, वहाँ 'निरुक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मोह न राख्यौ मातु मैं, 'मोहन' नाम-प्रभाव।
कहा चली अपनी अली !, अब समुझो यह भाव॥

यहाँ 'मोहन' नाम मोहनेवाले का है, किंतु व्रजवासियों को त्यागकर चले जाने के योग-वश कवि ने व्युत्पत्ति द्वारा 'जिसके मोह न हो' अन्यार्थ कल्पित किया है।

२ पुन यथा—दोहा।

जिन निकसत अरथिन अरथ, मुख-नृप 'मान' नकार।
नाम पितामह रावरो, दीन्हौं बड़े विचार॥

—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी जोधपुर-नरेश महाराजा जसवतसिंह के नामांतर 'मान' का वास्तविक अर्थ 'सम्मान के योग्य' है, जिसका कवि ने उनकी उदारता के योग से, मा = नहीं करना और न = नाँही, अर्थात् "नाहीं न करने" का अन्यार्थ किया है।

निरुक्ति-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

पनघट जाते पन घटै, पनघट वाको नाम।
कहिए पन कैसे रहै?, पनिहारिन के धाम॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ 'पनघट' का 'पानी भरने का घाट' और 'पनिहारिन' का 'पानी भरनेवाली' प्रसिद्धार्थ है; परंतु कवि ने निर्लज्जता का स्थान होने के कारण क्रमशः 'प्रण घटने का' और 'प्रण हरनेवाली' अन्यार्थों की कल्पना की है; अतः माला है।

(९७) प्रतिषेध

जहाँ किसी पदार्थ का निषेध प्रसिद्ध होते हुए भी पुनः अभिप्रायांतर से गर्भित निषेध किया जाय, वहाँ 'प्रतिषेध' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तुम एक हि अघहरन, हौं, बहु अधमन-सिरताज।
द्विरद न जानहु, जाहगी, बरद! बिरुद की लाज॥

यहाँ किसी भक्त की भगवान् से व्यंग्योक्ति है। वह मनुष्य है, उसका द्विरद (गज) न होना प्रसिद्ध ही है किंतु 'द्विरद न जानहु' वाक्य से 'मैं गज से अधिक पापात्मा हूँ' इस अभिप्रायांतर से गर्भित पुनः निषेध किया है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

पद पखारिबे चह्यौ जबहि बैदर्भ-कुमारी।
तबहि सकुचि द्विज कह्यौ नाथ! हम दीन भिखारी॥

अस आदर मम करहु नाथ ! सो कहा मरम गुनि ?।
हम न होहिं सुकदेव, व्यास नहिं गर्ग कपिल मुनि।'
नहिं भृगु नहिं नारद हुते, दुरवासा मत जानिए।
हम तो सुदामा रंक हैं, अजहुँ नाथ ! पहिचानिए॥
—हलधरदास।

यहाँ भी यद्यपि सुदामा का मुनि शुकदेव आदि न होना प्रसिद्ध ही है, तथापि उसने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी द्वारा अपना विशेष आदर होने की अयोग्यता के अभिप्राय से पुनः निषेध किया है।

(६८) विधि

जहाँ विधि-प्रसिद्ध (जिसका पहले ही विधान प्रसिद्ध है) पदार्थ का अभिप्रायांतर से गर्भित पुनः विधान किया जाय, वहाँ 'विधि' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुर-दुरलभ तनु लहि वृथा, खोइ रहे सब कोइ।
हरि भजि भव तरि जात जो, मनुज, मनुज सो होइ॥

यहाँ विधि-प्रसिद्ध 'मनुज' शब्द का हरि भजकर भव तरने के अभिप्रायांतर से गर्भित पुनर्विधान हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

जैसी पावस में सजै, ऐसी अब कछु नाहिं।
केकी है केकी, करै, जब केका ऋतु माहिं॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ)।

यहाँ भी प्रसिद्ध 'केकी' (मयूर) शब्द का वर्षा-ऋतु में उसकी केका (वाणी) अधिक चित्ताकर्षक होने के अभिप्राय से फिर विधान किया गया है।

विधि-माला १ उदाहरण यथा—शार्दूलविक्रीडित।

या राका शशिशोभना गतघना सा यामिनी, यामिनी।
या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी, कामिनी॥
या गोविन्दरसप्रमोदमधुरा सा माधुरी, माधुरी।
या लोकद्वयसाधिनी तनुभृतां सा चातुरी, चातुरी॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ विधान-सिद्ध 'यामिनी' शब्द का "या राका शशिशोभना गतघना" विशेषण पदों से पूर्ण प्रकाशित होने के अभिप्रायांतर से गर्भित पुनर्विधान किया गया है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में भी समझ लेना चाहिए। सब मिलाकर चार विधान हैं; अत: यह माला है।

(६६) हेतु

जहाँ हेतु (कारण) का कार्य सहित वर्णन हो, वहाँ 'हेतु' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम हेतु

जिसमें कारण कार्य का एक साथ वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

ललित-किसोरी ललन की, जुग जोरी के अंग।
सुचि रुचि तें सुमिरें, सकल, हात अमंगल भंग॥

यहाँ श्रीराधा-माधव के युगल-रूप के अंगों का स्मरण करना कारण एवं अमंगल भंग होना कार्य दोनों का साथ वर्णन हुआ है।

प्रथम हेतु-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

दरस किए तें दुख दारिद दलत, पाँय,
परस किए तें पाप-पुंज हरि लेत है।
जल के चढ़ाएँ जम-जातना न पाएँ कभी,
चंदन चढ़ाएँ चित चौगुनो सचेत है॥
कहत 'कुमार' कुंद कुसुम कनीर कंज,
कनक चढ़ाएँ देत कनक निकेत है।
त्रिदल चढ़ाएँ तें त्रिलोचन त्रितापन कों,
त्रिगुनी त्रिवेनी की तरंगैं करि देत है॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ समस्त पद्य में शंकर के दर्शन करने आदि ६ कारणों और दुःख-दारिद्रय के दलन आदि ६ कार्यों का वर्णन है; अतः यह माला है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

पूरव प्रलै के नृत्य-तांडव के पेखिवे की,
इच्छा भै उमा के उर भव पै भनै नहीं।
जानि लागे नाचन नगन ह्वै मगन सिव,
ठाट ठाटैं ठीक-ठीक ठीक पै ठनै नहीं॥
ताकि-ताकि खड-खड ह्वैवो तारा मंडल को,
त्र्यंबक तें तमकि त्रिसूल ह्व तनै नहीं।
पारत बनै न पग पुहुमी पै प्रलै पेखि,
ब्योम बीच वारन बगारत बनै नहीं॥

—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'साहित्य-रत्न'।

३ पुनः यथा—दोहा।

नैननि को आनंद है, जिय की जीवनि जानि।
प्रगटै दर्प कंदर्प को, तेरी मृदु मुसुकानि॥
—मतिराम।

यहाँ भी नायिका की मुसकान (कारण) में नेत्रों का आनंद, प्राणों का आधार एवं काम का गर्व (कार्यों) की एकता का वर्णन हुआ है।

---

(१००) प्रमाण

जहाँ किसी अर्थ का प्रमाण अर्थात् यथार्थ का अनुभव होना (अमुक पदार्थ ऐसा या इतना है) वर्णित हो, वहाँ 'प्रमाण' अलंकार होता है। इसके आठ भेद हैं—

१ प्रत्यक्ष-प्रमाण

जिसमें पाँच इंद्रियों और मन इन छहों में से किसी एक के, एक से अधिक के अथवा इन सबके विषय का यथार्थ अनुभव हो।[1]

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुनि बल, प्रलय-पतंग है, अंबर चढ़्यो उतंग।
सिंधु लाँघि, पुर जारि, सिय-सुधि लायौ बजरंग॥

यहाँ जांबवान् से अपने बल की प्रशंसा सुनकर श्रीहनुमानजी को श्रवणेंद्रिय के विषय का यथार्थ अनुभव होना वर्णित है।

---

१ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और मन के विषय क्रमशः शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध और संकल्प-विकल्प हैं।

२ पुनः यथा—सवैया ।

सखि ! नंद के द्वार सिंगार-सजै सब गोप-कुमार खरे हितकै ।
वह सूरति ईठ निहारन कौं सब दीठि लगाइ रहे चित दै ॥
पुनि खोलत ही पट, मोहन की छवि देखत ही इक बार सबै ।
चहुँ ओर तें ग्वार पुकारि उठे, ब्रज दूलह नंद-किसोर की जै ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी श्रीनंद-नंदन के श्रृंगार-दर्शन से गोप-मंडलों द्वारा नेत्रों के विषय का प्रत्यक्ष-प्रमाण होना वर्णित है ।

२ अनुमान-प्रमाण

जिसमें किसी साधन[1] द्वारा किसी साध्य[2] पदार्थ का निश्चयात्मक अनुमान हो[3] ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

आसन जो देखें तो सुभासन है नंदी, दीप,
देत कोटि सूरज समीप सकुचानी मैं ।
डमरू निनाद हो तें प्रगटे समस्त सब्द,
न्यारे कहौ कौन कैसे बिरद बखानौं मैं ? ॥
सेस ससि गंगा लेन साकृत साज ठौर,
याते एक और उपचार[4] अनुमानों मैं ।
दीनन उधार कै समर्थ हो समर्थन साधु,
देखें नार लेहु प्रभु ! पावन पुरानों मैं ॥

१ जिस वस्तु द्वारा सिद्ध किया जाय । २ जिस वस्तु को सिद्ध किया जाय । ३ जैसे—धुआँ (साधन) से द्वारा अग्नि (साध्य) का ज्ञान होता है । ४ सामग्री ।

यहाँ उत्तरार्द्ध में "शंकर का मन लीन होना" साध्य है, जिसका "उनका मन उमगा दोनों के प्रति दिया जाने" के साधन द्वारा भक्त ने यथार्थ अनुमान किया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुनत पथिक-मुँह माह-निसि, लुएँ चलति उहिं गाम।
बिन बूझे बिन ही कहे, जियति बिचारी बाम॥
—बिहारी।

यहाँ भी प्रोषित नायक ने अपने घर पर अपनी स्त्री के जीवित रहने के साध्यार्थ का उस ग्राम में माघ-मास की रात्रि के समय वियोगाग्नि से संतप्त उसके शरीर के स्पर्श द्वारा लूएँ चलने के साधन से निश्चय किया है।

३ उपमान-प्रमाण

जिसमें उपमान के सादृश्य से ही बिना देखे हुए उपमेय का निश्चय हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सरद-सुधाकर सो सदा, पूरन-कला-निधान।
मुख मंजुल जाको लसत, सो राधिका सुजान॥

यहाँ श्रीराधा-मुख के उपमान 'शरद-सुधाकर' की समानता से ही श्रीराधारानी उपमेय का निर्णय होना वर्णित है।

२ पुन. यथा—दोहा।

मन्मथ सम सुंदर लसै, रवि-सम तेज विसाल।
सागर सम गंभीर है, सो दसरथ को लाल॥
—मतिराम।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दृढ़ भरोस उर, इष्ट हर, अवसि हरहिं भव-भार।
मैं अनन्य-आधार, वे, निरधारन-आधार॥

यहाँ किसी भक्त का अपने इष्ट श्रीशंकर पर आत्मिक विश्वास होने के कारण जन्म-मरण को अवश्य निवृत्त करने के प्रमाण का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

मोहिं भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहिं ब्याहि।
आली! मो अँखियाँ नतरु, इतीं न रहती चाहि॥

—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी श्रीवृषभानु-नंदिनी के श्रीनंद-किशोर से ब्याहे जाने का प्रमाण अपनी आत्मा के विश्वास पूर्वक वर्णित हुआ है।

६ अर्थापत्ति-प्रमाण

जिसमें किसी अर्थ का प्रमाण अन्यार्थ के योग से वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पाँय न जाके दूत को, सब मिलि सके हटाइ।
है ताको यह खेल, तोहि, जीति सियहिं ले जाइ॥

यहाँ रावण के प्रति रानी मंदोदरी के कथन में—"श्रीरघुनाथजी तुमको जीतकर जानकीजी को अवश्य ले जायँगे" इस अर्थ को "उनके दूत (अंगद) का भी पैर तुम सबसे नहीं हिलाया गया" इस अन्यार्थ के योग से प्रमाणित किया गया है।

२ पुनः यथा—रोला छंद।

कैसे हिंदी के कोउ सुद्ध सब्द लिखि लैहैं?।
अरबी-अच्छर बीच, लिखेहुँ पुनि किमि पढ़ि पैहैं?॥

अन्यार्थ के योग से प्रमाणित किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में भी यही अलंकार है; अतः माला है।

सूचना—पूर्वोक्त 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार में भी एक अर्थ के द्वारा दूसरे अर्थ की सिद्धि होती है; किंतु वहाँ सिद्ध किया जानेवाला अर्थ वस्तुतः अकथित होता है और उसका कुछ शब्दों द्वारा केवल निर्देश कर दिया जाता है। जैसे—वहाँ के प्रथम उदाहरण में कर्म, भक्ति और ज्ञान का निर्देश मात्र है; पर यहाँ सिद्ध होनेवाला अर्थ स्पष्टतया वर्णित होता है। यथा—यहाँ के प्रथम उदाहरण में श्रीरघुनाथजी द्वारा रावण को जीतना स्पष्ट वर्णित है। यही इनमें अंतर है।

७ अनुपलब्धि-प्रमाण

जिसमें किसी अर्थ की अप्राप्ति में उसके अभाव का प्रमाण वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

करि नेह चले तजि गेह अबैं अकुलात हैं गात लगे जरने।
बिनु नीर न धीर धरै मछली जिमि नैनन नीर लग्यौ ढरने॥
यह रीति नहीं विपरीत बड़ी करि प्रीति अनीति लगे करने।
कहा सोच करैं दुख-दोस भरैं, विधि-लेख लिखे सो नहीं टरने॥

यहाँ अपने स्वामी के मन में प्रीति-रीति का अभाव होने का प्रमाण प्रोषित-पतिका नायिका द्वारा विधाता के लेख का अमिट होना वर्णित है।

२ पुन यथा—चतुष्पदी छंद।

गुन-गन प्रतिपालक रघु-कुल-बालक बालक ने रनरंना।
दसरथ-नृप को सुत मेरो मारग लवनासुर को हंना॥

कोऊ द्वै मुनि-सुत काक-पच्छ-जुत, सुनियत है तिन मारे।
यहि जगत-जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥

—केशवदास।

यहाँ भी लव-कुश द्वारा शत्रुघ्न का मारा जाना सुनकर उसके न रहने में श्रीरघुनाथजी द्वारा "काल की घटनाओं का कुटिल होना" प्रमाण वर्णित हुआ है।

८ संभव-प्रमाण

जिसमें किसी अर्थ के संभव[1] होने का प्रमाण वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मित्र राहु राकेस अरु, अरि दिनेस बुध होइ।
केतुहिँ जग-हितकर करै, हरि जो चाहैं सोइ॥

यहाँ राहु-चंद्रमा में मित्रता, सूर्य-बुध में शत्रुता तथा धूमकेतु (पुच्छल तारा) में जगत् का कल्याण करने की शक्ति होना हरि-इच्छा द्वारा संभव होने का प्रमाण वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

ना कछु प्रभु! कछु अगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बडवानलहिं, जारि सकइ खलु[2] तूल॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीहनुमानजी के कथन में वाडवाग्नि को रुई द्वारा जलाए जाने की संभवता श्रीरघुनाथजी के प्रताप से प्रमाणित की गई है।

---

१ यहाँ 'संभव' शब्द से कथितार्थ का अवश्य सिद्ध हो जाना अभिप्रेत नहीं है वरन् संभावना के वर्णन से तात्पर्य है। २ निश्चय।

सूचना— ईश्वरादि का निर्णय करने के लिये प्रमाण माने गए हैं, वैशेषिक-शास्त्रकार 'कणाद' मुनि ने एवं बौद्ध-मतावलंबियों ने उक्त आठों भेदों में से प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने हैं, सांख्य-शास्त्र में भगवान् कपिल मुनि ने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं, न्याय-शास्त्रकार महर्षि गौतम ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान चार माने हैं, मीमांसा-शास्त्रकार 'एकदेशी प्रभाकर' ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान और अर्थापत्ति पाँच माने हैं तथा मीमांसकभट्ट एव वेदांत-शास्त्र के भाष्यकारों में से अद्वैतवादियों ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि छः प्रमाण माने हैं।

भगवान् वेदव्यासादि ने पुराणों में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सभव और ऐतिह्य आठ प्रमाण माने हैं। महाराज भोज ने भी 'सरस्वती-कंठाभरण' ग्रंथ में उक्त आठों का उल्लेख किया है। अनुमान होता है कि इसी आधार पर कुवलयानंदकार अप्पय दीक्षित एवं कई भाषा-ग्रंथकारों ने भी आठों का ग्रहण किया है।

यद्यपि चार्वाक (नास्तिक) लोग एक प्रत्यक्ष को ही मानते हैं, और कविराजा मुरारिदान ने 'प्रमाण' अलंकार सर्वथा नहीं माना, तथापि हमारे विचार से आठों ही मानने योग्य है।

प्रायः ग्रथों में 'प्रमाण' अलंकार का अष्टम भेद 'ऐतिह्य' लिखा है; किंतु उसमें 'लोकोक्ति' के अतिरिक्त कुछ भी विशेषता नहीं ज्ञात होती, अत. हमने उसके स्थान पर 'आत्म-तुष्टि' को रखा है। कुछ अन्य अलंकार-ग्रंथों में भी इसका उल्लेख है।

देख्यौ करैं राम के पवित्र चित्र औ चरित्र,
याद मरयाद जासौं जाहि कबहूँ नहीं।
छत्र-पति छत्रिन की छत्र-छाँह माहि रहैं,
तिनको हरैं ते छत्र-छाँह कबहूँ नहीं॥*

यहाँ छः शब्दालंकार पृथक्-पृथक् प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं—(१) श्लेष—'जीवन' का अर्थ जिंदगी और जल एवं 'आप' का अर्थ स्वयं और जल होने के कारण दो श्लेष हैं। (२) यमक—'अधार धार' में 'धार' का और 'याद मरयाद' में 'याद' का इस प्रकार दो यमक हैं। (३) वृत्ति अनुप्रास—"वार कृषिकार जो सँवार" में एवं "पवित्र चित्र औ चरित्र" में। (४) वीप्सा—'वार-वार' में। (५) छेकानुप्रास—'खेतन कौं खाहिं', 'जासौं जाहिं' और 'छत्र-पति छत्रिन' में। (६) लाटानुप्रास—'छत्र-छाँह' का।

२ पुनः यथा—दोहा।

चलिय चखनि पथ पूत करि, हरैं-हरैं धरि पाय।
चाहे मत ही चल, चलत, जहँ-तहँ जीव-निकाय॥

यहाँ भी चकार और पकार के 'छेकानुप्रास', 'हरैं-हरैं' शब्दों से 'वीप्सा' और 'चल' शब्द का 'लाट' ये तीनों शब्दालंकार भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

२ अर्थालंकार-संसृष्टि

जिसमें केवल 'अर्थालंकार' मिले हुए हों।

---

* कुछ दिन हुए, महाराणा-उदयपुर ने अग्रवाल-जाति के दुलहे पर छत्र फिरने का परंपरा प्राप्त अधिकार छीनने का विचार किया था, जिसके विरोध में उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिये यह पद्य बनाया गया था।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

योगिन के अभिमान नहिं, नहिं सतीन के दीठ।
द्रव्य उदारन के नहीं, नहिं वीरन के पीठ॥

यहाँ चार जगह 'नहीं' क्रिया-शब्द होने में 'पदार्थावृत्ति-दीपक' और प्रथम चरण को छोड़कर शेष तीनों में तीन 'प्रथम पर्यायोक्तियाँ' होने के कारण 'पर्यायोक्ति' की माला है। ये दोनों अर्थालंकार अपने-अपने रूप से भिन्न-भिन्न भान होते हैं; अतः अर्थालंकार-संसृष्टि है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कष्ट दियौ प्रह्लाद को, मर्‍यौ दनुज अघ-खान।
सर्वनास करि देत है, साधुन को अपमान॥

यहाँ भी विशेष का सामान्य से समर्थन होने में 'प्रथम अर्थांतरन्यास' और दनुज (हिरण्यकशिपु) का साभिप्राय विशेषण 'अघ-खान' होने में 'परिकर' है। ये दो अर्थालंकार पृथक्-पृथक् स्पष्ट दिखाई देते हैं।

३ शब्दार्थालंकार-संसृष्टि

जिसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिले हुए हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कटत करम, प्राकृत भरम, दुरित द्वैत दुख-दान।
मिटत जनम-जम-जनित भय, हरि-चरनन के ध्यान॥

यहाँ हरि-चरणों का ध्यान करना कारण और कर्मों का कटना आदि कार्य वर्णित होने में 'प्रथम हेतु' (अर्थालंकार) और दकार

एवं जकार की समता के 'वृत्ति अनुप्रास' (शब्दालंकार), दोनों प्रकार के अलंकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, अतः शब्दार्थालंकारसंसृष्टि है।

२ पुनः यथा—पद।

चित जब राम-चरन अनुरागै।
तरुनि-तनय-तन-धन-मय-मायिक,-जगत-स्वप्न तें जागै।
गरुड़ ज्ञान-हित मान त्यागि नित, मानत गुरु करि कागै॥
भक्ति-विवेक-विकास होत हिय, विषय-वासना भागै।
विषय-विषम-विष वलित-लता मैं, अमल अमिय-फल लागै॥

यहाँ भी प्रथम अंतरे में 'रूपक' अंतिम अंतरे में 'पंचम विभावना' ये दो अर्थालंकार हैं। 'छेकानुप्रास' चारों अंतरों में, यमक 'तन' शब्द का और वकार का 'वृत्ति अनुप्रास' अंतिम अंतरे में ये शब्दालंकार हैं। ये सब भिन्न भिन्न भान होते हैं।

---

(२) संकर

जहाँ एक से अधिक अलंकार क्षीर-नीर-न्याय[1], से मिले हुए हों, वहाँ 'संकर' होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ अंगांगी-भाव-संकर

जिसमें बीज-वृक्ष-न्याय[2] द्वारा एक अलंकार अंग-भाव से और दूसरा अंगी-भाव से वर्णित हो।

---

१ जैसे दूध और पानी मिल जाने से उनकी पृथक्ता नहीं ज्ञात होती।
२ अन्योन्याश्रित अर्थात् अंग के द्वारा अंगी की सिद्धि और अंगी से अंग का उपकार हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

बचन-सुधा मुख श्रवत इत, कोकिल-कंठ लजात ।
होत बिरह-बिष-रस अधिक, उत अलि ! स्यामल गात ॥

यहाँ 'बचन-सुधा' एव 'बिरह-बिष' 'रूपक' अंग द्वारा अमृत से विष के वश होना' 'विरोध' अंगी सिद्ध हुआ है; और 'विरोध' ही 'रूपक' मे अत्यंत चमत्कृति का कारण है: अतः इनके परस्पर में अंगांगी-भाव है ।

अंगांगी-भाव-संकर-माला १ उदाहरण यथा—दोहा ।

बदन-सुधाधर प्रगट लख, [illegible] ।
[illegible] कमल-दल-ओठ तें, [illegible] ॥

यहाँ 'बदन-सुधाधर' रूपक अंग से पूर्वार्द्धगत पंचम विभावना अंगी और 'कमल-दल-ओठ' लुप्तोपमा अंग से उत्तरार्द्धगत पंचम विभावना अंगी सिद्ध हुई है, अत माला है ।

२ संदेह-संकर

जिसमें एक से अधिक अलंकारों की एक स्थल पर संदेहात्मक स्थिति हो ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

ऐसी अकुलानी जाकी जानी हू न जाति बानी,
रोवै हँसि धावै ना सुहावै घर-वार है।
दीरघ उसास नैन नीर, प्रतिमा सी भई,
दसम दसा न कहौं नीरस अपार है॥

यहाँ विरहिणी नायिका की दसों दशाओंके वर्णन में "अंग-अरविंद" पद में रूपक और उपमा, इन दोनों अलंकारों में से किसी एक की सिद्धि होने में संदेह है; अतः 'संदेह-संकर' है।

२ पुनः यथा—सवैया।

डील बडो सबतें बल कोऽरु, बड़ाई बडी जग मॉझ करी है।
फोज-सिंगार है तेज अपार, झरै मद सावन की सी झरी है॥
भूपति के हियरा में बनै नित, संपति सागर की सिगरी है।
डारत धूरि रहैं सिर पै सु कहा गजराज! कुटेव परी है॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी यह संदेह होता है कि प्रस्तुत हाथी के वर्णन में समान विशेषणों की सत्ता से केवल एक लांछन-युक्त किसी सर्वगुण-संपन्न महापुरुष के अप्रस्तुत वृत्तांत की प्रतीति होने में 'समासोक्ति' है? अथवा केवल एक लांछन-युक्त किसी सर्वगुण-संपन्न महापुरुष प्रस्तुत को सूचित कराने के लिये अप्रस्तुत हाथी का वृत्तांत वर्णित करने से 'अन्योक्ति' (अप्रस्तुत-प्रशंसा का एक भेद) है? इस प्रकार दोनों अलंकारों की स्थिति संदेहात्मक है।

सूचना—हमारे विचार से संदेह-संकर अर्थालंकारों में ही होता है, शब्दालंकारों में नहीं, क्योंकि शब्दों का चमत्कार बहुत स्पष्ट होता है, अतः वहाँ पर संदेह नहीं हो सकता।

अलंकारों के विषय

प्रायः अलंकारों के लिये कुछ विशिष्ट विषय उपयुक्त समझे गए हैं। यद्यपि इस बात का कोई निराकरण नहीं किया जा सकता कि अमुक अलंकार में अनिवार्य रूप से कोई अमुक विषय ही होना चाहिए और न निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि सदा प्रत्येक अलंकार का कोई विशिष्ट विषय होता ही है, तथापि पाठकों की जानकारी के लिये हम नीचे एक संक्षिप्त सूची देते हैं, जिससे यह पता चल जायगा कि इन अलंकारों में से किस अलंकार का मुख्यतः कौन सा विषय होता है अथवा होना चाहिए।

(१) 'रूपक' में गौणी-सारोपा-लक्षणा होती है।
(२) 'परिणाम' में गौणी-सारोपा-लक्षणा होती है।
(३) 'रूपकातिशयोक्ति' में गौणी-साध्यवसाना-लक्षणा होती है।
(४) 'निदर्शना' के द्वितीय भेद में सारोपा-लक्षणा होती है।
(५) 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' में साध्यवसाना-लक्षणा होती है।
(६) 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' के कारण-निबंधना भेद द्वारा प्रायः विरह-निवेदन होता है।
(७) 'आक्षेप' के तृतीय भेद द्वारा प्रायः प्रवत्स्यत्भर्तृका नायिका का वर्णन होता है।
(८) 'विभावना' के द्वितीय भेद में प्राय विच्छित्ति-हाव होता है।
(९) 'विशेषोक्ति' द्वारा प्राय गुरुमान का वर्णन होता है।
(१०) 'असंगति' के द्वितीय भेद में प्रायः विभ्रम-हाव होता है।
(११) 'समुच्चय' के प्रथम भेद में प्राय किलकिंचित्-हाव होता है।
(१२) 'ललित' में साध्यवसाना-लक्षणा होती है।

(१३) 'विषादन' द्वारा प्रायः अनुशयाना नायिका का वर्णन होता है।

(१४) 'उत्तर-उन्नीत-प्रश्न' द्वारा प्रायः स्वयं-दूती नायिका का वर्णन होता है।

(१५) 'सूक्ष्म' में प्रायः बोधक-हाव और क्रिया-विदग्धा नायिका का वर्णन होता है।

(१६) 'पिहित' द्वारा प्रायः सादरा-धीरा नायिका का वर्णन होता है।

(१७) 'व्याजोक्ति' द्वारा प्रायः मुग्धा नायिका का वर्णन होता है।

(१८) 'गूढोक्ति' द्वारा प्रायः वचन-विदग्धा नायिका का वर्णन होता है।

(१९) 'युक्ति' में प्रायः मोट्टायित-हाव होता है।

(२०) 'स्वभावोक्ति' में प्रायः मौग्ध्य-हाव होता है।

(२१) 'अत्युक्ति' के शौर्य, औदार्य और कीर्ति इन तीन भेदों में प्रायः राज-रति-भाव-ध्वनि होती है।

(२२) 'हेतु' के द्वितीय भेद में गौणी-सारोपा लक्षणा होती है।

(२३) 'प्रत्यक्ष-प्रमाण' द्वारा प्रायः साक्षात्-दर्शन का वर्णन होता है।

(२४) 'अनुमान-प्रमाण' द्वारा प्रायः स्वप्न-दर्शन या लक्षिता नायिका का वर्णन होता है।

(२५) 'उपमान-प्रमाण' द्वारा प्रायः चित्र-दर्शन का वर्णन होता है।

(२६) 'शब्द-प्रमाण' द्वारा प्रायः श्रवण-दर्शन का वर्णन होता है।

(२७) [illegible] द्वारा प्रायः [illegible] नायिका का वर्णन होता है।

ग्रंथ-निर्माण-समय

सवैया ।

सर सिद्धि निधी ससि विक्रम-संवत[1]
माघ को पाछलो पाख सुहायौ ।
गुरुवार वसंत की पंचमी भारती
के अवतार को वासर[2] भायौ ॥
नृप अग्र के वंसज केडिया अर्जुन-
दास ने काव्य-कला-गुन गायौ ।
मन-भावन भाव-नवीन-विभूषित
"भारती-भूषन" ग्रंथ बनायौ ॥

---

१ संवत् १९८५ । २ श्रीसरस्वती का जन्म-दिन ।

अलंकारों की भिन्नता-सूचक सूचनाओं की सूची

अन्य कवियों और ग्रंथों के उदाहृत पद्यों की सूची

नाम — पृष्ठांक

नाम | पृष्ठांक

सूचना—इस सूची में २७५ उदाहृत-पद्य हैं, जिनके कवियों या ग्रंथों के १११ नाम दिए गए हैं। इनमें १८ पद्यों के कवि अज्ञात हैं और 'अलंकार-आशय' के ३१ पद्यों के भी भिन्न-भिन्न कवि हो सकते हैं। इस प्रकार कुल संख्या १६० हुई; पर एक ही कवि के कई पद्य भी हो सकते हैं, अतः मोटे हिसाब से कह सकते हैं कि १२५ कवियों के उदाहरण इस ग्रंथ में आए हैं।
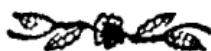
सहायक ग्रंथों की सूची

संस्कृत-ग्रंथ

(१) अग्निपुराण—भगवान् वेदव्यास।
(२) अमरकोष—अमरसिंह।
(३) अलंकार-तिलक—भानुदत्त।
(४) अलंकार-रत्नाकर—शोभाकर।
(५) अलंकार-शेखर—केशव मिश्र।
(६) अलंकार-सर्वस्व—राजानक रुय्यक।
(७) अलंकारोदाहरण—यशस्क।
(८) कवि-कंठाभरण—क्षेमेंद्र।
(९) काव्य-प्रकाश—मम्मटाचार्य।
(१०) काव्यादर्श—दंडी।
(११) काव्यालंकार—रुद्रट।
(१२) काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति—वामनाचार्य।
(१३) कुवलयानंद—अप्पय दीक्षित।
(१४) चंद्रालोक—पीयूषवर्षी जयदेव।
(१५) ध्वन्यालोक—आनंदवर्द्धनाचार्य।
(१६) नाट्य शास्त्र—भगवान् भरताचार्य।
(१७) न्याय-बिंदु—भासर्वज्ञ।
(१८) न्याय-शास्त्र—महर्षि गौतम।
(१९) पिंगल-सूत्र—नागराज पिंगलाचार्य।
(२०) बृहद्वाचस्पत्यकोष—तर्कवाचस्पति तारानाथ।
(२१) मनुस्मृति—भगवान मनु।
(२२) महाभारत—भगवान वेदव्यास।

(२३) महाभाष्य—भगवान् पतंजलि ।
(२४) मीमांसा-वार्तिक—कुमारिल भट्ट ।
(२५) मीमांसा-शास्त्र—अन्यतम आचार्य प्रभाकर ।
(२६) मेदिनीकोप—मेदिनीकर ।
(२७) रस-गंगाधर—पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली ।
(२८) रामरक्षा-स्तोत्र—बुधकौशिक ऋषि ।
(२९) रामस्तवराज—भगवान् सनत्कुमार ।
(३०) वाक्यपदीय ब्रह्मकांड—महाराज भर्तृहरि ।
(३१) वाग्भटालंकार—वाग्भट ।
(३२) वेदांत-परिभाषा—व्येंकटाध्वरि ।
(३३) वैशेपिक-शास्त्र—महर्षि कणाद ।
(३४) श्रीमद्भगवद्गीता—भगवान् वेदव्यास ।
(३५) श्रीमद्भागवत—भगवान् वेदव्यास ।
(३६) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—आदिकवि वाल्मीकि ।
(३७) श्रीशुक्लयजुर्वेद-संहिता—
(३८) सरस्वती-कंठाभरण—भोजराज ।
(३९) सर्वदर्शन-संग्रह—सायण माधव ।
(४०) सांख्य-शास्त्र—कपिल मुनि ।
(४१) साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ ।
(४२) साहित्य-सार—अच्युतराय ।

हिंदी-ग्रंथ

(१) अलंकार-आशय—उत्तमचंद भंडारी ।
(२) अलंकार-दर्पण—राजा रामसिंह (नरवलगढ़) ।
(३) अलंकार-प्रकाश—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।
(४) अलंकार-मंजूषा—लाला भगवानदीन 'दीन' ।

(५) कविता-कौमुदी (प्रथम और द्वितीय भाग)—पं० रामनरेश त्रिपाठी ।
(६) कविप्रिया—केशवदास ।
(७) काव्य-निर्णय—भिखारीदास ।
(८) काव्य-प्रभाकर—बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ।
(९) चित्र-चंद्रिका—काशिराज ।
(१०) जसवंत-जसोभूषण—कविराजा मुरारिदान ।
(११) तर्क-शास्त्र—बाबू गुलाबराय एम० ए० ।
(१२) नवीन पद्य-संग्रह—पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी ।
(१३) भाषा-भूषण—राजा जसवंतसिंह ।
(१४) रसिक-मोहन—रघुनाथ ।
(१५) रामचरित-मानस—गोस्वामी तुलसीदास ।
(१६) रामचंद्र-भूषण—लछिराम ।
(१७) ललितललाम—मतिराम ।
(१८) लाल-चंद्रिका—लल्लूलाल ।
(१९) शिवराज-भूषण—भूषण ।
(२०) शिवसिंह-सरोज—शिवसिंह सेंगर ।
(२१) साहित्य-प्रभाकर—पं० रामशंकर त्रिपाठी ।
(२२) साहित्य-लहरी—महात्मा सूरदास ।
(२३) हिंदी-अलंकार-प्रबोध—अध्यापक रामरत्न ।
(२४) हिंदी-शब्द-सागर—काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ।

—०—

सम्मतियाँ

संस्कृत में—

(१)

सर्वतंत्र-स्वतंत्र, साहित्यदर्शनाचार्य, दार्शनिकसार्वभौम, न्यायरत्न, तर्करत्न, गोस्वामी श्रीदामोदरलाल शास्त्रीजी की सम्मति—

क्षेमास्पदेन मारवल्लनगराभिजनेन केडियोपाख्येन श्रीमता श्रेष्ठि-श्रीमदर्जुनदासगुप्तेन हिन्दीभाषायां निर्मितं साहित्यशास्त्रालंकारनिरूपण-प्रवणं भारतीभूषणाभिधं निबन्धं बहुशालोच्य; निबन्धुः प्रकृतविषयकं वैचक्षण्यं प्रतीय; प्रमाय चोपलभ्यमानेषूक्तभाषायामीदृशपुस्तकेष्वगता-र्थतां; समवधार्य चालंकृतितत्त्वं बुभुत्सूनां फलेग्रहितामितो; गभीरवस्तूप-पादनापरिम्लेच्छिम्न. संस्कृततरभाषासु नैसर्गिकत्वेनातादृशतायामपि नेह कर्तुरादीनवलेशस्याप्युन्मेष. प्रत्युत वस्तुगत्या निर्मातुरलंकर्मीणतया वाढं प्रसाद्यमानमानस कतिपयवर्णमिषेणान्तरनान्तमिव संमदं वदन्ति कादयामिति, शम्।

आषाढसितात्ष्टम्याम्
सं० १९८९

गोस्वामी दामोदर शास्त्री।

(२)

महामहोपाध्याय व्याकरणाचार्य पं० सीताराम शास्त्री, लेक्चरर और प्रोफेसर कलकत्ता-विश्वविद्यालय की सम्मति—

श्रीमता सेठअर्जुनदासकेडियामहोदयेन लिखितं भारती-भूषण नामकं हिन्दीभाषायामलंकार[illegible] पुस्तकं दृष्ट्वा, [illegible]

डिकापरीक्षान्यायेनापाततः पुस्तकमिदं परीक्षितं ततो विज्ञायते प्रकृतं पुस्तकं हिन्दीभाषा, ध्येतृणामतीवोपकारकमनायासतोऽलङ्कारज्ञानसंपादकं सर्वेषामतीवोपकारकं स्यादिति विश्वस्यते।

कलिकाता
६ मार्च १९३० } श्रीसीतारामशास्त्रिणः।

अंग्रेजी में—

(३)

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्-एल्० डी०, वाइस चांसलर प्रयाग-विश्वविद्यालय की सम्मति—

I have looked into 'Bharati Bhusana' by Arjundas Kedia The book appears to have been carefully done and presents before the Hindi reader a fairly correct idea of the principal figures of speech The book deserves to be carefully studied

Allahabad
16 April 1930 } Ganganatha Jha
Vice-chancellor,
University of Allahabad

हिंदी-अनुवाद—

मैंने श्रीयुत अर्जुनदास केडिया-कृत 'भारती-भूषण' नामक ग्रन्थ ध्यान से देखा। पुस्तक विचार पूर्वक लिखी गई है और हिंदी-पाठकों के समक्ष मुख्य मुख्य अलङ्कारों का स्पष्ट भाव उपस्थित करती है। पुस्तक मनन करने योग्य है।

इलाहाबाद
ता० १६ अप्रैल १९३० } गंगानाथ झा।
वाइस चान्सलर प्रयाग-विश्वविद्यालय

हिंदी में—

(४)

आचार्य आनंदशंकर बापूभाई ध्रुवजी प्रोवाइस चांसलर हिंदू-विश्वविद्यालय काशी की सम्मति—

सेठ अर्जुनदास केडिया-विरचित 'भारती-भूषण' नामक ग्रंथ पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आपने अलंकार-शास्त्र में अच्छा परिश्रम किया है और इस ग्रंथ में इसका फल सम्यक्तया प्रतीत होता है। इस शास्त्र के इतिहास के साथ अंतिम समय की अलंकारावलि लेकर प्रत्येक अलंकार का स्वरूप अल्पाक्षर में, किंतु विशद रूप से, बतलाया गया है और उदाहरण प्राचीन, अर्वाचीन और स्वरचित हिंदी साहित्य से लिए गए हैं। हम इतना चाहते हैं कि इस ग्रंथ की प्रस्तावना में काव्य-लक्षण, काव्य में अलंकार-शास्त्र का स्थान, अलंकार-गुण इत्यादि के भेद और अभेद के विषय में पुराने और नवीन आचार्यों के मत, अलंकार सामान्य की और तत्तद् अलंकार विशेष की रमणीयता का बीज—इत्यादि विचारणीय विषयों का विवेचन किया जाय।

आषाढ कृष्ण एकादशी
सं० १९८७

आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव।
प्रोवाइस चांसलर
काशी हिंदू-विश्वविद्यालय

(५)

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, भूतपूर्व संपादक 'सरस्वती' की सम्मति—

पुस्तक देखने से मालूम होता है कि इसके प्रणेता हिंदी के बड़े [illegible]
[illegible]

लिखा है। उदाहरण भी चुन चुनकर समर्पक और सरस उद्धृत किए हैं। यह इस पुस्तक का सबसे बड़ा गुण है।

दौलतपुर
११ अप्रैल १९३० } महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(६)

काव्यतीर्थ पं० सकलनारायण शर्मा, प्रोफेसर संस्कृत-कालेज-कलकत्ता, लेक्चरर कलकत्ता-विश्वविद्यालय एवं संपादक 'शिक्षा' की सम्मति—

हमने 'भारती-भूषण' पढ़कर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की। इसमें अलंकार तथा उनके उदाहरण अत्यंत स्पष्टता से समझाए गए हैं। विशेष-विशेष स्थलों पर टिप्पणियाँ हैं। उनसे ग्रंथकार श्रीयुत सेठ अर्जुनदास केडियाजी की सहृदयता, विद्वत्ता तथा प्रतिभा का परिचय उपलब्ध होता है। यह ग्रंथ हिंदी की उच्च परीक्षाओं में पाठ्य रूप से आदर पाने के योग्य है। इधर के नवीन बने हुए ग्रंथों में इसे सर्वोत्तम कह सकते हैं। छपाई-सफाई मनोहर है।

आशुतोष बिल्डिंग,
कलकत्ता-युनिवर्सिटी
९ मार्च १९३० } सकलनारायण शर्मा।

(७)

साहित्याचार्य पं० शालग्राम शास्त्री की सम्मति—

श्रीयुत अर्जुनदासजी केडिया के बनाए 'भारती-भूषण' नामक हिंदी [illegible] के कई स्थल हमें ग्रंथकार के सुयोग्य पुत्र श्रीशिवकुमारजी [illegible] ने सुनाए और दो-एक हमने स्वयं भी देखे। हिंदी की नवीन मुद्रित [illegible] पुस्तकें इस विषय की हमारे देखने में आई हैं, उन सबकी अपेक्षा इस

समझते हैं, केडियाजी की प्रकृत पुस्तक में अधिक परिश्रम किया गया है। हम आशा करते हैं कि हिंदी-जनता इसका समुचित आदर करेगी और ग्रंथकार के श्रम को सफल करेगी।

यह तो हम नहीं कहते कि अलंकार संबंधी लक्षणों और उदाहरणों का विवेचन इसमें संस्कृत-ग्रंथों के समान परिष्कृत, परिमार्जित और तात्त्विक हुआ है, न हिंदी में वैसा अभी संभव ही है, परंतु जो कुछ है वह हिंदी की वर्तमान स्थिति को देखते हुए गनीमत है। घोर अंधकार में एक दीपक भी बड़े काम की चीज है और निकटों जुगनुओं से बेहतर है। हम आशा करते हैं कि विद्या-विनय-संपन्न विचारशील केडिया महानुभाव यदि उचित समझेंगे तो यथा समय इसमें और भी परिमार्जन करने का यत्न करेंगे।

लखनऊ
वैशाख शुक्ला ४, सं० १९८९ } शालग्राम।

(८)

सुप्रसिद्ध समालोचक पं० रामचंद्र शुक्ल, लेक्चरर हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी की सम्मति—

हिंदी के पुराने साहित्य में अलंकार के ग्रंथों की कमी नहीं है। पर वे ग्रंथ वास्तव में काव्य-ग्रंथ हैं, अलंकार-निरूपण के ग्रंथ नहीं। वे अधिकतर उदाहरण पद्यों के निर्माण की दृष्टि से लिखे गए हैं। अलंकारों [illegible]

परिष्कृत भाषा में समझाए गए हों और उदाहरण भी पर्याप्त दिए गए हों। उक्त अभाव की पूर्ति के ध्यान से जो दो-एक पुस्तकें निकलीं वे दो ढंग की हुईं। कुछ में संस्कृत के प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर पर्याप्त लक्षण और स्वरूप-निर्णय का प्रयास दिखाई पड़ता है; पर हिंदी-कवियों के उदाहरणों की बहुत कमी है। जिनमें हिंदी के उदाहरणों की भरमार है उनमें स्वरूप-निर्णय और शास्त्रीय विवेचन का प्रायः अभाव सा है।

इस दशा में श्रीयुत् सेठ अर्जुनदासजी केडिया के इस नये अलंकार-ग्रंथ 'भारती-भूषण' को देख बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि इसमें उक्त दोनों बातें साथ-साथ पाई जाती हैं—अलंकारों के स्वरूप तथा एक दूसरे से उनके सूक्ष्म भेद भी अच्छी तरह समझाए गए हैं और नये पुराने हिंदी-कवियों के रचित सरस और मनोहर उदाहरण भी प्रचुर परिमाण में रखे गए हैं। सारांश यह कि अलंकार की शिक्षा के लिये हिंदी में जैसा ग्रंथ होना चाहिए था यह वैसा ही हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं। सेठजी ने अपनी विज्ञता, श्रम, समय और धन का जो सुंदर उपयोग किया है इसके लिये वे हिंदी-प्रेमी मात्र के धन्यवाद के पात्र हैं। अलंकार-शास्त्र के अध्ययन के अभिलाषी तथा सरस काव्य के प्रेमी दोनों की पूर्ण तुष्टि इस पुस्तक से होगी, इसका हमें पूरा विश्वास है।

दुर्गाकुंड, काशी
२ अप्रैल, १९३०

रामचंद्र शुक्ल।

(६)

काव्य-मर्मज्ञ सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रणेता 'अलंकार-प्रकाश' एवं 'काव्य-कल्पद्रुम' की सम्मति—

यों तो हिंदी-भाषा में बहुत से अलंकार-विषयक ग्रंथ प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टिगत हो रहे हैं; किंतु प्राचीन ग्रंथों में तो प्राय यह एक

बड़ी भारी त्रुटि है कि उनमें पद्य में लिखे हुए लक्षण और उदाहरणों को समझाने के लिये गद्य में कुछ भी स्पष्टता नहीं की गई है। फल यह हुआ है कि उन ग्रंथों से अलंकारों का यथार्थ स्वरूप समझने में बड़ी कठिनता उपस्थित होती है। अवश्य ही कुछ प्राचीन ग्रंथों पर टीकाएँ उपलब्ध हैं; पर उन टीकाओं ने मूल को और भी जटिल बना दिया है। किसी-किसी ग्रंथ के टीकाकार ने तो बड़ा ही दु:साहस किया है, यहाँ तक कि साहित्य-विषय से स्वयं अनभिज्ञ होकर भी टीका लिखने की अनधिकार चेष्टा की है। खेद है कि ऐसे ग्रंथों से लाभ के स्थान पर पाठकों को हानि हो रही है। अस्तु।

अर्वाचीन ग्रंथ जो वर्तमान लेखकों के लिखे हुए हैं, उनके विषय में भी विवशतया यही कहना पड़ता है कि, वे ग्रंथ भी प्रायः अनधिकारियों द्वारा ही लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। कुछ ग्रंथों की आलोचनाएँ इस क्षुद्र लेखक ने की हैं, जिनके द्वारा ज्ञात हो सकता है कि हिंदी-साहित्य में वर्तमान लेखकों द्वारा अलंकार-विषय की किस प्रकार शोचनीय छीछालेदर हो रही है। किंतु बड़े हर्ष का विषय है कि उपर्युक्त अवस्था के ठीक विपरीत हमारे मरुस्थलीय रत्ननगर के देदीप्यमान उज्ज्वल रत्न कविवर सेठ अर्जुनदासजी केडिया ने 'भारती-भूषण' की स्व-रचना प्रकाशित की है। 'भारती-भूषण' वस्तुतः भारती-भूषण है। इसमें अलंकारों के लक्षण वार्तिक में देकर और पद्यात्मक उदाहरणों का लक्षण से समन्वय गद्य में लिखकर विषय को अच्छी प्रकार समझा दिया है। उदाहरण रूप में जो ग्रंथकर्ता की रमणीय कविता दी गई है, उसे पढ़कर सचमुच तत्काल राजपूताने के प्रसिद्ध महाकवि मिश्रण सूर्यमलजी और स्वामी गणेशपुरीजी आदि की परिमार्जित कविता का स्मरण हो आता है। बड़ा ही अपूर्व आनंद प्राप्त होता है। वस्तुत आदर्श कविता यही उच्च श्रेणी की है। हाँ इस ग्रंथ के विषय में भी यह कहना कि यह सर्वथा निर्दोष है केवल पक्षपात समझा जायगा। बात यह है कि साहित्य-विषय

बड़ा गहन है। एक दूसरे आचार्यों के विभिन्न मतों के विवादों से व्याप्त है। संभव है कि आलोचकों को इसमें भी कुछ दोष प्रतीत हों; पर जहाँ तक हम ध्यान देते हैं इसकी रचना-शैली, काव्य-माधुर्य एवं विषय-विवेचना स्तुत्य और प्रणेता के साहित्य-विषयक ज्ञान के परिचायक हैं। आशा है यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य-संसार में उपादेय समझा जायगा।

मथुरा
वैशाख कृष्णा १२, सं० १९८७ } कन्हैयालाल पोद्दार।

(१०)

सिद्धहस्त समालोचक पं० पद्मसिंह शर्मा, भूतपूर्व सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का पत्र—

प्रिय केडियाजी,

पुस्तक मुझे अच्छी मालूम हुई, परिश्रम और पांडित्य से लिखी गई है। निस्संदेह हिंदी में वर्तमान समय में अलंकार-विषय पर जितनी पुस्तकें अवतक निकली हैं, यह उन सबसे अच्छी है। मुझे आशा है इसका यथेष्ट प्रचार और आदर होगा। इसके लिये हिंदी-साहित्य आपका ऋणी रहेगा। 'भारती-भूषण' पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

काव्यकुटीर
नायकनगला, चाँदपुर (विजनौर)
ता० २१ मई, १९३० } भवदीय—
पद्मसिंह शर्मा।

(११)

साहित्याचार्य लाला भगवानदीन 'दीन' लेक्चरर हिंदू-विश्वविद्यालय, एवं संस्थापक हिंदी-साहित्य-विद्यालय काशी की सम्मति—

श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया-कृत 'भारती-भूषण' नामक अलं-
मैंने मनोनिवेश-पूर्वक पढ़ा। ग्रंथ मुझे बहुत अच्छा जँचा।

लेखन शैली से सेठजी की कुशलता स्पष्ट प्रकट है। गद्यमय परिभाषाएँ बहुत सोच-विचारकर लिखी गई हैं। उदाहरण देकर विवृत्ति-सहित परिभाषा के मर्म से मिलान दर्शाया गया है। उदाहरण प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों के भी हैं और स्वयं सेठजी-कृत भी हैं। प्रसिद्ध और प्रामाणिक संस्कृत-ग्रंथों से पूरी सहायता ली गई है, जिससे प्रामाणिकता में संदेह नहीं रह जाता।

सेठजी ने जिस प्रकार तन, मन और धन तथा अपना भजन का अमूल्य समय लगाकर इस ग्रंथ को तैयार किया है, वैसी ही सुंदर सफलता भी उन्हें प्राप्त हुई है। यह ग्रंथ मुझे तो वर्तमान समय में प्रचलित ग्रंथों से अच्छा ही जँचता है। मैं आशा करता हूँ कि हिंदी-प्रेमी इसे अपनावेंगे। कालेजों के विद्यार्थीगण इस पुस्तक से अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस वृद्धावस्था में भी सेठजी हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं, इस हेतु मैं उन्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ।

साहित्य-भूषण कार्यालय, काशी
२२ मार्च, १९२० } भगवानदीन (दीन)।

(१२)

हास्यरसावतार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, भूतपूर्व सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की सम्मति—

बीकानेर रत्ननगर के रत्न, केडिया कुल कलाधर श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया कृत 'भारती-भूषण' पुस्तक देखकर परम प्रसन्नता हुई। ऐसे समय में जब प्राचीन काव्यालंकार-शास्त्रों पर कुठाराघात हो रहा हो केडियाजी का इधर इस समय में आना दुस्साहस का काम है। इसमें अलंकारों का सोदाहरण विशद वर्णन है। आवश्यकतानुसार यथा-स्थान टीका टिप्पणियाँ भी कर डाली हैं। आशा ऐसा [illegible] है कि इसका

समझ में आ सकती है। प्रतिभापूर्ण विवेचन उनकी विद्वत्ता तथा गंभीर अध्ययन का परिचायक है। वास्तव में केडियाजी ने हिंदी-साहित्य के एक बडे भारी अभाव की प्रशंसनीय पूर्ति की है। यह विद्यार्थियों के काम की वस्तु तथा पाठ्य-पुस्तक होने के योग्य है। ऐसी अच्छी और उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये केडियाजी को बधाई है।

खैरा (मुंगेर)
वैशाख शुक्ला २, सं० १९८७ } जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।

(१३)

कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी की सम्मति—

मैंने यह पुस्तक ध्यान से पढी है। यह पुस्तक अलंकार-शास्त्र का अलंकार है। हिंदी में अबतक जितनी पुस्तकें इस विषय की निकली हैं, मैं उन सबसे इसे अधिक पूर्ण और उपयोगी मानता हूँ। हिंदी में जहाँ कहीं अलंकार-शास्त्र की शिक्षा दी जाती हो, सर्वत्र इस पुस्तक को उपयोग में लाने की सम्मति मैं देता हूँ। इससे विद्यार्थियों को बड़ा लाभ पहुँचेगा। श्रीसेठ अर्जुनदासजी केडिया ने ऐसी सर्वांग-सुंदर पुस्तक लिखकर हिंदी-साहित्य की बहुत बडी सेवा की है। इसमें अलंकारों के जो उदाहरण दिए गए हैं वे बहुत ही सच्चे, सुरुचिपूर्ण और सरल हैं। उनकी जो व्याख्याएँ हैं, उनसे अलंकारों के समझने में बडी ही सहायता मिलती है। फुटनोट और सूचनाओं में सेठजी ने ऐसी बहुत सी नवीन बातें लिखकर पुस्तक की उपयोगिता और बढा दी है, जो हिंदी के अन्य अलंकार-ग्रंथों में नहीं मिलतीं। इनसे लेखक के अलंकार-विषयक प्रचुर ज्ञान का प्रमाण तो मिलता ही है, साथ ही पुस्तक के पाठकों को कितनी ही नई बातें जानने को मिल जाती हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये मैं सेठजी को बधाई देता हूँ।

हिंदी-मंदिर, प्रयाग
३० जनवरी, १९३० } रामनरेश त्रिपाठी।

शुद्धि-पत्र

भूमिका—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१२	दृष्टगत	दृष्टिगत

वक्तव्य—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	१७	अथलंकार	अर्थालंकार
४५	९	तीन	चार
४५	१६	आवश्यतानुसार	आवश्यकतानुसार

मूल ग्रंथ—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९	२३	वृत्तांत	छंद, वृत्तांत
३७	१४	निबारै	निवारै
३९	७	हो तिहै	होति है
४०	१	वीप्सा	वीप्सा
४०	४	वीप्सा	वीप्सा
४०	१६	वीप्सा	वीप्सा
११०	२२	भ्रम	भ्रन
११२	३	फलानी	फनाली
११४	५	पर्थी	पर्थी '
११८	१९	निवृत्त	निवारण
११९	१६	मिलि	नृग
११९	२०	मनुष्या	नृगो
१३०	१८	पाट-सुधाधर	पाट सुधाधर
१४४	१९	जानै	जानै
१४६	[illegible]	गया ।	गया है ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५१	१४	धा-कन	सुधा-कन
१५४	२२	दोनों	दोनों के
२०२	२०	अर्थों के	अर्थों में से किसी के
२२१	७	द्रव्या	द्रव्यों
२२५	२	उनको	उनको
२३८	१०	दरसे	दरसैं
२३८	११	तरसे	तरसैं
२४५	२१	कर	करने
२४९	१४	आधार की	आधार को
२५१	२	भरम	मरम
२५४	१७	बृद	बृंद
२६२	७	धरम	धर्म
२६३	१७	मोह	मोहिँ
२७३	११	उनका	उनको
३०२	११	सच्चात्	साक्षात्
३११	१८	जंसवंत	जसवंत
३१२	६	हाँ	जहाँ
३२४	२	संसग	संसर्ग
३४६	१८	चि	सुचि
३४९	१	भविक	भाविक
५.	५	व्युत्पति	व्युत्पत्ति